वर्ष : 11 • अंक : 41 • जुलाई–सितम्बर 2024 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(International Peer Reviewed Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

रूपेश कुमार चौहान
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक
द्वारा 47, ब्लॉक ए–3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली–43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन
प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।
दूरभाष संख्या–09555222747, 9267944100, 9555666907
Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vsirj.com

प्रकाशनार्थ सूचना

* लेखक से अनुरोध है कि शोध-पत्र वॉकमैन चाणक्य 905 या क्रुतिदेव फॉन्ट में वर्ड या पेजमेकर में टाइप (टङ्कण) कराकर शोध-पत्रिका के ई-मेल पर प्रेषित करें।
* शोध-लेख **हिन्दी अथवा संस्कृत भाषा में** न्यूनतम 1500 शब्द एवं अधिकतम 3500 शब्द तक मान्य है तथा इसके साथ लेखक का पद-नाम के साथ स्वयं की फोटो (छवि-चित्र) अत्यन्त अनिवार्य है।
* प्रकाशनार्थ प्राप्त लेख सलाहकार परिषद् एवम् संपादक मण्डल की अनुमति के पश्चात् स्तरीय होने पर ही प्रकाशित होगा।
* लेख में यदि चित्र का प्रयोग हुआ है तो उसे भी अवश्य प्रेषित करें।
* **'वाक् सुधा'** किसी भी तरह के परामर्श का स्वागत करती है, इसलिए अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें।
* यह स्पष्ट किया जाता है कि शोध पत्र में प्रस्तुत तथ्य शोध लेखक के अपने विचार हैं तथा इसमें सलाहकार परिषद् एवं सम्पादक मण्डल के विचारों की उद्भावना स्पष्टत: नहीं है। अत: इसके लिए शोध-लेखक स्वयं उत्तरदायी है।
* शोध-पत्रिका की किसी भी सामग्री को प्रकाशक एवं मुद्रक की जानकारी के बिना अन्यत्र प्रकाशन अनुचित होगा।
* **आगामी अङ्क में प्रकाशनार्थ लेख आमंत्रित हैं। यदि आप लेख टाइप करा कर भेजने में असमर्थ हैं तो हस्तलिखित प्रति पत्रिका में दिये गये पत्र-व्यवहार के पते पर भेज दें।**
* प्रत्येक अङ्क पत्रिका की वेबसाइट पर अध्ययन हेतु उपलब्ध रहता है।
* अपेक्षित आर्थिक सहयोग अथवा अंशदान के लिए हम आपके अत्यंत आभारी रहेंगे।
* **कृपया लेख के साथ अपनी पासपोर्ट साइज की फोटो अवश्य भेजें।**
* **पत्रिका का वितरण नि:शुल्क किया जाता है एवं विशेष अनुदान के लिए किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रकाशन के लिए कोई भी आवश्यक शुल्क नहीं है।**
* **शोध-पत्र हमारी विशेषज्ञ समीक्षा समिति (Peer Reviewed Committee) के द्वारा द्वि-स्तरीय समीक्षित होकर प्रकाशन हेतु स्वीकृत किया जाता है।**

© सर्वाधिकार सुरक्षित : रूपेश कुमार चौहान

ISSN : 2347-6605

- सभी पद अवैतनिक एवं परिवर्तनीय हैं।
- **'वाक् सुधा'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
- सारे भुगतान मनीआर्डर : चेक/ बैंक ड्राफ्ट **'वाक् सुधा'** के नाम से किए जाएं। कृपया दिल्ली से बाहर के चेक में बैंक कमीशन के 35.00 रुपये अतिरिक्त जोड़ें।

विशेष सूचना : शोध पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गये तथ्यों और इनसे सम्बन्धित किसी भी विवाद का पूर्ण दायित्व लेखक का होगा, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक एवं पत्रिका से सम्बन्धित अन्य किसी भी व्यक्ति का नहीं। प्रेषित स्पष्टीकरण अवश्य प्रकाशित किया जायेगा।

सलाहकार परिषद् :

- **डॉ. एम.एस. चौहान**
(निदेशक, राष्ट्रीय डेयरी शोध संस्थान, करनाल, हरियाणा)
- **प्रो. अरविन्द कुमार पाण्डेय**
(पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा)
- **प्रो. मदन मोहन अग्रवाल**
(पूर्व कला संकाय अध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **महामहोपाध्याय प्रो. वेद प्रकाश शास्त्री**
(पूर्व उप-कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)
- **प्रो. गिरीश चन्द्र पंत**
(अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)
- **प्रो. रामनाथ झा**
(संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. राजवीर शर्मा**
(पूर्व प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. शम्स-उल-इस्लाम**
(प्रधानाचार्य, गया कॉलेज, गया, बिहार)
- **प्रो. राम सरेख सिंह**
(पूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)
- **प्रो. पवन अग्रवाल**
(हिन्दी एवं आधुनिक भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)
- **प्रो. मोहम्मद मंसूर आलम**
(अध्यक्ष, उर्दू विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया)
- **प्रो. आभा त्रिवेदी**
(पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)
- **प्रो. कमला उपाध्याय**
(विभागाध्यक्षा, संस्कृत, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)
- **प्रो. रसाल सिंह**
(प्रोफेसर, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू)
- **डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर**
(राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय दलित साहित्य अकादमी एवं प्रसिद्ध दलित चिंतक)
- **डॉ. विक्रमादित्य राय**
(अध्यक्ष, समाज-शास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, (बी.एच.यू.) वाराणसी
- **प्रो. राजेश रंजन**
(पालि विभाग, नालन्दा नव-महाविहार)
- **प्रो. सत्यदेव पोद्दार**
(इतिहास विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **प्रो. काशीनाथ जेना**
(राजनीति-शास्त्र विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **प्रो. मनीष सिन्हा**
(अध्यक्ष, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)
- **डॉ. एम. रहमतुल्लाह**
(कंसल्टिंग एडिटर, दूरदर्शन न्यूज, भारत सरकार)

Editor
Dr. Rupesh Kumar Chauhan
M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit),
M.A. (History)
Mob : 9555222747, 9540468787,
9267944100

Executive Editior
Dr. Pramod Kumar Singh
M.A., Ph.D. (Sanskrit), M.A. (Philosophy)
Gold Medalist
Assistant Professor,
Department of Sanskrit, Maitreyi College,
University of Delhi
Mob : 9717189242

Sub.- Editor
Dr. Rajesh Kumar
M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit),
Asst. Prof., Department of Sanskrit
PGDAV College, University of Delhi
Mob. 9555666907, 9891526584

Co- Editor
Abhishek Priyadarshi
M.A., Ph.D. (History),
Asst. Prof., History Department
Satyawati College, University of Delhi
Mob. 9971656921

Legal Advisor :
Arun Kumar Shukla
LL.B., LL.M., D.U.
Mob. : 7011474039, 9650088311

Managing Editor
Thakur Prasad Chaubey
Mob. : 9810636082

Office Addresses :
Head Office (Delhi) :
Dharam Pal
I-11, Usha Kiran Building, Commercial Complex, Azadpur, ***Delhi****-110033*
Mob : 9267944100

Branch Office (Bihar) :
Prof. D.S. Chauhan
C/o Late Bindeshwari Singh, Jaiprakash Nagar, Gewal Bigha,
Gaya*-823001*
Mob. : 9263078395

Branch Office (International) :
• **Mrs Kirthee Devi Ramjatton**
Impasse Bois Cheri, Bois Cheri Road,
Moka- 80804 Mauritius
Email: kdramjatton@yahoo.com
Contact no.: +230 57882178

Correspondence Address :
B-11/39, MIG Flats, Near DDA Market,
Sector 18, Rohini, Delhi-110089
Mob : 9555222747
www.vsirj.com

Designer :
Kawal Malik, J.D. Computers
Mob. : 9818455819

सम्पादक मंडल :

- **डॉ. वी.के. यादव**
(एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. शाहिद तस्लीम**
(असिस्टेंट प्रोफेसर, उज्बेक भाषा विशेषज्ञ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)
- **डॉ. कृष्ण लाल**
(सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अरविन्दो कॉलेज (प्रातः), दिल्ली)
- **डॉ. शंकर नाथ तिवारी**
(असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **प्रो. गिरिधर गोपाल शर्मा**
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)
- **प्रो. दिलीप कुमार झा**
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)
- **डॉ. जितेन्द्र कुमार**
(असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अनुग्रह नारायण स्मारक महाविद्यालय, मगध विश्वविद्यालय)
- **डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा**
(असिस्टेंट प्रोफेसर, एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज, एण्ड रिसर्च, एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, नोएडा)
- **डॉ. राजमोहिनी सागर**
(एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. वी.के. तोमर**
(एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. चंद्रशेखर पासवान**
(बौद्ध अध्ययन एवं सभ्यता विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा)
- **डॉ. के.के. झा**
(सीनियर लेक्चरर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट, मोका, मॉरिशस)
- **डॉ. सुधीर कुमार सिंह**
(राजनीति विभाग, दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः), दिल्ली)
- **प्रो. सुभाष कुमार सिंह**
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. चन्द्रशेखर राम**
(प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. नन्दिनी सहाय**
(समाज-कार्य, एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा)
- **Mrs. Kirthee Devi Ramjatton**
(Lecturer, Department of Sanskrit, School of Indological Studies, Mahatma Gandhi Institute, Moka - 80808 Mauritius)
- **डॉ. कुमारी शुभ्रा**
(प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार, दिल्ली)
- **डॉ. लालजी**
(एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

संरक्षक :

प्रो. मदन मोहन अग्रवाल
पूर्व अध्यक्ष एवं संकाय अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. दलवीर सिंह चौहान
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

प्रो. राजवीर शर्मा
पूर्व उपाचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग,
आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय .... *viii*

राष्ट्रीय नागरिक पंजिका : भारत की आंतरिक सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में 1
प्रियंका

तमस का पूर्वाभास और विभाजन 3
अमित कुमार सिंह

वैदिक वाङ्मय में गणितीय अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन 6
आयुष नन्दन / प्रो. दया शंकर तिवारी

भारतीय नवजागरण और टैगोर 11
नरेश सिंह यादव

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में भाषायी चिंतन 15
सुदेश कुमार

सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र 20
अंशु कुमारी

रघुनाथ मंदिर अभिलेख, बांकुड़ा जिला, पश्चिम बंगाल 27
प्रीतम कुमार / अजीत कुमार सिंह

अमरकांत की कहानियों में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएं 31
अखिलेश यादव

प्रवासी हिंदी उपन्यास के विकासक्रम में सुधा ओम ढींगरा का स्थान 35
आसिफ खान

वैदिक और लौकिक साहित्य में आयुष चिन्तन .. 38
डा. प्रसून सेनगुप्त / डा. शङ्कर नाथ तिवारी

'बेटी-वियोग' में चित्रित सामाजिक यथार्थ 43
डॉ. राम किशोर यादव

हरियाणवी लोकगीतों में भारतीय समाज 50
विशाल

फलित ज्योतिष में द्रेष्काण के विविध आयाम 54
डॉ. राघव नाथ झा

विस्रामपुर का संत उपन्यास में व्यक्त राजनीति . 58
अनुज कुमार रावत

मॉरिशस की हिंदी काव्य यात्रा 62
डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार / डॉ. सुनील कुमार मांडीवाल

आपहुदरी : एक अतरंग परिचय 66
कविता सरोज

बेबी कांबले की आत्मकथा-शोषण की व्यथा 70
डॉ. विनीता रानी

सच्चर कमेटी की अनुशंसा पर सरकारी प्रयास - एक अध्ययन 74
शहनाज

देवेन्द्र सत्यार्थी की लोक सम्बन्धी दृष्टि 77
नेहा

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित जीवन की विसंगतियों का समीक्षात्मक अध्ययन
(विशेष संदर्भ : 'चित्तकोबरा' उपन्यास) 83
डॉ. धनंजय कुमार

शिक्षा के मानदंड और महिला शिक्षा की संचित व्याख्या 87
जूली कुमारी

सर्वेश्वर की कविताओं में अभिव्यक्त प्रतिरोध... 90
डॉ. मीना भारती

लोक चिंतक एवं यथार्थवाद के लेखक डॉ. निशंक की कहानी 'नई जिंदगी' में मानवतावादी दृष्टिकोण 94
परमेश्वरी

कोइलवर में बालू उत्खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएं : एक भौगोलिक अध्ययन 100
शाहिद अख्तर

बाणोच्छिष्टं जगतसर्वम् / बाणभट्टस्य रचनाशैली 104
साधना नाई

भवभूति के समानधर्मा आलोचक 111
डॉ. अनिल कुमार

महाभारतकालीन शिक्षा का व्यावसायिक स्वरूप : एक अध्ययन 117
डॉ. जहाँ आरा

सतत विकास और लोकतंत्र 121
शिखा जायसवाल

एक लुभावनी मगर काल्पनिक दुनिया दिखाते विज्ञापन 127
डॉ. अमरजीत कौर

अट्ठारहवीं से उन्नीसवीं सदी के संयुक्त प्रान्त में अकाल और जुलाहा तंत्र 131
हिना

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा 137
डॉ. मंजुला गुप्ता

मिथकीय चेतना के आलोक में 'दिनकर' के काव्य-संसार पर विहंगम दृष्टि 142
शशांक चंद्र शुक्ल / शुभम सिंह

सम्पादकीय

अपने देश भारत को विश्व गुरु के गौरवशाली पद पर फिर से पहुंचाने एवं 'विकसित भारत' बनाने की जिम्मेदारी देश के प्रत्येक नागरिकों की है। उसमें छात्रों की जिम्मेदारी खासतौर पर है। परन्तु देश से लेकर वैश्विक स्तर पर देखते हैं कि आजकल के छात्र में अनुशासनहीनता, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिकता का उन्माद भरा हुआ है। दूसरी तरफ आज पहली कक्षा में पढ़ने वाले छोटे बच्चे से लेकर उच्च शिक्षा और शोधकार्य में लगे छात्र तक आत्मप्रबंधन में असफल और परेशान हैं। कैरियर से लेकर रोजगार तक की उनकी अपनी समस्याएं हैं। पैसे की भूख, तृष्णा, धनलिप्सा, स्वार्थपरायणता इत्यादि के द्वारा भौतिक सुख सुविधा के साधन होने पर भी मानसिक शान्ति नहीं है। इन समस्याओं को चिन्हित करते हुए भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को लागू किया है। हालांकि यह शुरुआती वर्ष है। फिर भी उसकी सकारात्मकता कैम्पस में एवं छात्रों के चिन्तन में देखने को मिल रही है। जहाँ तक छात्र राजनीति का प्रश्न है तो उसको लेकर उच्च शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में नकारात्मक छवि बनी हुई है। जिसका मुख्य कारण छात्रों द्वारा हिंसा और अराजक गतिविधियां में शामिल होना मुख्य है। 2016 में जेएनयू में तत्कालीन छात्र संघ द्वारा किया गया, सुनियोजित हिंसा और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों से हम सभी अवगत हैं। उस तरह के घटना बराबर अलग-अलग संस्थाओं में देखने-सुनने को मिलती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि इस तरह के मामले को विश्वविद्यालय प्रशासन और स्थानीय प्रशासन मिल-जुलकर ठीक कर सकते हैं। यहां मुझे कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि विश्वविद्यालयों का वातावरण राजनीति दलों के कारण अत्यन्त विषाक्त हो गया है। राजनीतिक दल एवं नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए विद्यार्थियों का भरपूर उपयोग करते हैं वहीं अतिमहत्वाकांक्षी छात्र नेता अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए इन दलों और नेताओं के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं।

जहां तक इस बार दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव (डूसू) 2024 का सवाल है तो 27 सितंबर को उसकी वोटिंग हुई लेकिन अभी तक मतों की गिनती नहीं हुई है। वोटिंग के बाद सभी वोटिंग मशीनों (ईवीएम) को कॉलेजों एवं विभागों से लाकर परीक्षा विभाग के स्ट्रांग रूम में सुरक्षित रूप से रख दिया गया है। समूचा मामला दिल्ली हाईकोर्ट में है इसलिए कोई भी टिप्पणी अनुचित है। परन्तु इस बार हमने देखा कि चुनाव प्रचार के नाम पर बहुत ही बेढंगे तरीके से प्रचार किया गया, और सरकारी और सार्वजनिक सम्पत्ति को व्यापक पैमाने पर नुकसान पहुंचाया गया। डूसू चुनाव के परिणाम पर रोक लगाते हुए दिल्ली हाईकोर्ट की टिप्पणी से भी आपको यह आभास हो जाएगा कि अदालत कितने गुस्से एवं आक्रोश में है। अदालत ने कहा कि- ''यह अदालत निर्देश देती है कि चुनाव प्रक्रिया जारी रह सकती है, लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय (छात्र संघ) या कॉलेज चुनावों में तब तक कोई मतगणना नहीं होगी, जब तक कि अदालत इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि पोस्टर, होर्डिंग्स, भित्तिचित्र, स्प्रे पेंट हटा दिए गए हैं और सार्वजनिक संपत्ति बहाल कर दी गई है।'' गौरतलब है कि इस बार के चुनाव में कुल 21 उम्मीदवार हैं। जिसमें से अध्यक्ष के लिए-8, उपाध्यक्ष के लिए-5, सचिव और संयुक्त सचिव के लिए-4-4 उम्मीदवार चुनाव मैदान में हैं। कुल 52 कॉलेजों और विभागों में 145893 मतदाताओं में से 51300 मतदाताओं ने मताधिकार किया है। इस बार अपने युवा शोधकर्ताओं को छात्र राजनीति पर विद्वतापूर्ण आलेख के लिए कवर पेज पर यह चित्र दिया है। अच्छे आलेख की प्रतीक्षा में...

- डॉ. रूपेश कुमार चौहान

प्रियंका

राष्ट्रीय नागरिक पंजिका : भारत की आंतरिक सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में

प्रवास की अवधारणा कोई नयी अवधारणा नहीं है। हिंसा और भय के कारण मनुष्य एक देश से दूसरे देश में प्रवास करते हैं। परन्तु यही प्रवास अगर अवैध शरणार्थी के रूप में हो तो यह किसी भी देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा साबित हो सकता है।

विकासशील देश भारत भी अवैध रूप से आए शरणार्थियों की समस्या का सामना कर रहा है। विगत कुछ वर्षों से भारत मे अवैध रूप से शरणार्थियों की सख्ंया में वृद्धि हुई है जोकि भारत की आंतरिक सुरक्षा के लिए एक चिन्ता का विषय है। भारत विश्व में जनसख्ंया के दृष्टिकोण से दूसरा सबसे विशाल जनसंख्या वाला देश है। जिसकी जनसंख्या लगभग 130 करोड़ है। इसलिए अवैध शरणार्थियों की बढ़ती जनसंख्या भारत के लिए एक संकट है।

भारत स्वतन्त्रता प्राप्ति और विभाजन के बाद से ही अवैध शरणार्थी की समस्या का सामना कर रहा है। वर्ष 1947 में जब भारत पाकिस्तान का विभाजन हुआ तब कुछ लोग असम से पूर्वी पाकिस्तान (बंगलादेश) चले गए लेकिन असम में उनकी भूमि होने के कारण इन लोगों का दोनों देशों में आना-जाना लगा रहा जिसके कारण वर्ष 1951 में राष्ट्रीय नागरिक पंजिका को तैयार किया गया।

वर्ष 1971 में भारत पाकिस्तान युद्ध के बाद पूर्वी पाकिस्तान को बंगलादेश के रूप मे एक नया देश बनाया गया। वर्ष 1971 में भारत पाकिस्तान युद्ध के दौरान लाखों बांग्लादेशी शरणार्थी भारत आ गए और बांग्लादेश बनने के बाद भी भारी संख्या में शरणार्थियों का भारत आना जारी रहा जिसके कारण असम की जनसंख्या में भी वृद्धि देखी गई जिसके परिणामस्वरूप 1980 के दशक में अखिल असम छात्र संघ ने अवैध रूप से आए शरणार्थियों की पहचान कर उन्हें वापस भेजने के लिए एक आंदोलन आरंभ किया। अखिल असम छात्र संघ के 6 वर्षों के आंदोलन रूपी संघर्ष के बाद वर्ष 1985 में असम समझौते पर हस्ताक्षर किए गए।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असम समझौते 1985, राष्ट्रीय नागरिक पंजिका 1951 और भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 को ध्यान में रखकर असम में राष्ट्रीय नागरिकता पंजिका को लागू किया गया जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने असम समझौते के अनुसार दिनांक 25 मार्च 1971 के बाद असम में आए सभी बांग्लादेशी नागरिकों को असम से जाने के लिए कहा।

भारत में अवैध शरणार्थी केवल असम राज्य तक सीमित नहीं है। भारत के सभी राज्यों में अवैध शरणार्थियों की मौजूदगी है। देश की राजधानी दिल्ली, मुम्बई, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में अवैध शरणार्थी (बांग्लादेशी) रह रहे हैं।

भारत में अवैध शरणार्थियों की सख्ंया में होती लगातार वृद्धि की समस्या को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने राष्ट्रीय नागरिक पंजिका को संपूर्ण भारत मे एक नये और दोर्षशोधन प्रारूप को लागू करने का विचार किया। भारत के गृहमंत्री अमित शाह ने भी राष्ट्रीय नागरिक पंजिका के विचार को सकारात्मक रूप से वास्तविक रूप देने की इच्छा देश के समक्ष प्रकट की परन्तु विपक्षी राजनीतिक दलों और विशेष समुदाय विरोध ने राष्ट्रीय नागरिक पंजिका का विरोध आरंभ कर दिया। यह विरोध CAA, NRC, NPR के विरुद्ध किया गया और CAA, NRC,

NPR को एक साथ जोड़कर देखना आरंभ कर दिया गया। CAA, NRC, NPR के विरुद्ध जनता के बीच भ्रम फैलाने का प्रयास किया गया, आम जनता को भ्रमित किया गया जिसके परिणाम स्वरूप सभी राज्यों में विशेषकर राजधानी दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर के राज्यों में CAA, NRC, NPR का विरोध किया गया। विरोध प्रदर्शन हिंसक रूप धारण करने लगे और अनेक हिंसक घटनाएँ देखने को मिलीं जिसमें सार्वजनिक संपत्ति को क्षतिग्रस्त किया गया।

देश की राजधानी दिल्ली में CAA, NRC, NPR के विरोध में हो रहे प्रदर्शन ने एक भयानक हिंसा का रूप धारण कर लिया। पूर्वी दिल्ली में हुए दंगों ने धार्मिक, सांप्रदायिक रूप धारण कर लिया जिसमें 53 लोगों की जान चली गई और लगभग 300 के करीब लोग घायल हो गये। पूर्वी दिल्ली में दंगों के दौरान हुई हिंसक आगजनी की घटनाओं ने सार्वजनिक संपत्ति और आम-जनता की संपत्ति को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाया गया।

हालांकि इन सभी भ्रान्तियों और नकारात्मक दृष्टिकोण से दूर हटकर अगर सकारात्मक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय नागरिक पंजिका का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि राष्ट्रीय नागरिकता पंजिका देश की आंतरिक सुरक्षा को मज़बूती से कायम रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। क्योंकि भाारत एक विकासशील देश है जो लगातार अपने विकास मार्ग पर अग्रसर है। परन्तु अवैध शरणार्थी भारत और भारतीयों के विकास मार्ग में एक समस्या के रूप में अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं। आम जनता के विकास के संसाधन सीमित होने के कारण और भारत की विशाल जनसंख्या के बीच सामंजस्य स्थापित करना एक कठिन कार्य है और इसके ऊपर अवैध शरणार्थी की बढ़ती जनसंख्या भी इस सामंजस्य को कुंठित करने का कार्य करती है जिससे भारतीयों का विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है।

भारत में अवैध शरणार्थी की समस्या केवल जनसंख्या वृद्धि रूपी समस्या नहीं है। बल्कि भारत में बांग्लादेश से आए अवैध शरणार्थी ज्यादातर गैर कानूनी गतिविधियों में शामिल रहते हैं। जिसमें जाली नोटों की तस्करी, मादक पदार्थों की तस्करी और आतंकवाद से इनके संबंध जैसी अवैध और गैर कानूनी गतिविधियों में इनकी भूमिका का पता चलता रहा है, जिससे भारत की आंतरिक सुरक्षा और सीमा सुरक्षा पर संकट उत्पन्न होता है। देश की राजधानी दिल्ली में भी अवैध शरणार्थी (बांग्लादेशी) गैर-कानूनी गतिविधियों में लिप्त पाए गए हैं। जिसमें जाली नोटों की तस्करी और मादक पदार्थों की तस्करी जैसे मामले मुख्य हैं। भारतीय सेना और पुलिस ने अनेक बार ऐसी घटनाओं में लिप्त अवैध शरणार्थी (बांग्लादेशी) को अपराधी के रूप में गिरफ्त में लिया है।

एक प्रकार से अवैध शरणार्थियों द्वारा किए जा रहे गैर कानूनी गतिविधियां भारत की आंतरिक सुरक्षा को संकट में डाल रही हैं। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि जिस प्रकार राष्ट्रीय नागरिक पंजिका को असम राज्य में लागू कर अवैध शरणार्थियों की पहचान की गई है। ठीक उसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय नागरिक पंजिका के एक बेहतर और दोर्षशोधन प्रारूप को संपूर्ण भारत पर लागू किया जाए और अवैध शरणार्थियों की पहचान कर उनके राष्ट्र (बांग्लादेश) वापस भेजा जाए और भारत की आंतरिक सुरक्षा और बाहरी सुरक्षा को और मज़बूत किया जाए।

राष्ट्रीय नागरिक पंजिका की प्रक्रिया में सभी लोगों को कानूनी प्रक्रिया से अपनी नागरिकता को साबित करने के लिए हर संभव अवसर प्रदान किया जाए जिससें सभी वैध नागरिक अपनी नागरिकता को साबित करने में सफल रहें और अवैध रूप से भारत में प्रवेश किए अवैध शरणार्थियों को वापस उनके मूल देश भेजा जाए।

पीएचडी शोधार्थी
राजनीतिक विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर (राजस्थान)

संदर्भ सूची

- https://www.scobserver.in/cases/assam-public-works-v-union-of-india-assams-national-register-of-citizens-background/
- https://byjus.com/free-ias-prep/national-register-citizens/
- https://www.jagran.com/news/national-what-is-nrc-and-npr-23674079.html
- https://www.business-standard.com/about/what-is-nrc

तमस का पूर्वाभास और विभाजन

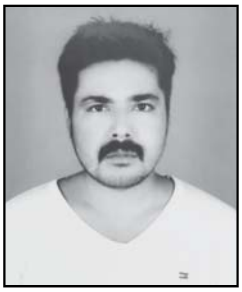

अमित कुमार सिंह

साहित्य की अलग-अलग विधाएं सामाजिक अभिव्यक्ति की पूर्णता प्रस्तुत करने का साधन होने के साथ-साथ समाज में होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया को भी समायोजित व निर्देशित करने का कार्य करती है। समाज में किसी आवश्यकता की अधिकता समय के साथ-साथ एक अनिवार्यता का रूप धारण कर लेती है। यही अनिवार्यता पूरी संरचना को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से गहरे तौर पर प्रभावित करने की शक्ति भी रखती है। आधुनिक भारत के विभाजन में आवश्यकता, अनिवार्यता के रूप में प्रस्तुत हुई। ब्रिटिश शासन और चुनिंदा सांप्रदायिक नेताओं द्वारा पूरे देश में एक डर पैदा किया गया कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद बहुसंख्यक हिन्दू समुदाय अल्पसंख्यक मुसलमानों पर अत्याचार व शासन करेगा। इस डर का मुख्य लक्ष्य था दीन के नाम पर एक सुरक्षित इस्लामिक देश बनाने का जहां से मुस्लिम समुदाय अपने धार्मिक पैगाम को विस्तार दे सके तथा उसका अनुपालन कर सके।

भारत के आधारभूत निर्माण के कारकों में धर्म एक महत्वपूर्ण तत्त्व के रूप में रहा है। दर्शन, कला, राजनीति, लोकाचार आदि धर्म की गोद में ही अपना स्वरूप गढ़ते हुए नजर आते हैं। भारतीय इतिहास में भारत विभाजन प्रथम त्रासदी थी जिसमें धर्म ने कारक से लेकर निर्णायक तक की सभी भूमिकाओं में अपना योगदान दिया। इसमें आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तंत्र आदि सभी धर्म से निचले दर्जे में गिने गए और धर्म के आधार पर देश का विभाजन किया गया। विभाजन के समय एक दूसरे को कमतर दिखाना, अपमानित करना एवं हत्या, बलात्कार जैसे घृणित कार्य करने के उकसावे का रूप धारण किया था। इसकी पृष्ठभूमि जानने के लिए भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में उभर कर आता है।

'तमस' उपन्यास का कथानक सीधा विभाजन से न होकर उसकी पृष्ठभूमि से है। जहाँ हिन्दू, मुस्लिम और सिख समुदाय विभाजन की ओर जा रहा था। उपन्यास में पाकिस्तान की मांग तथा लाहौर कांग्रेस अधिवेशन का जिक्र कई बार आया है। उपन्यास के अंतिम अध्याय में लेखक ने एक दृश्य बुना है जो सहज ही इस उपन्यास के उद्देश्य को रेखांकित करता है। फसाद शांत हो चला है और मुसलमानों के मुहल्ले में रहने वाले हिन्दू और हिन्दुओं के मुहल्ले में रहने वाले मुसलमान अब अपने-अपने घर आधे पौने दामों पर बेच रहे हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:-बाबू पृथ्वीचंद ने पेशीन गोई करते हुए कहा, ''अमर-अमान हो गया तो अपना मुहल्ला छोड़कर कोई नहीं जाएगा।''

''क्या बातें करते हो बाबूजी, अब यह ख्याल ही दिमाग से निकाल दो। अब हिन्दुओं के मुहल्ले में न तो कोई मुसलमान रहेगा और न मुसलमानों के मुहल्ले में कोई हिन्दू। इसे पत्थर पर लकीर समझो। पाकिस्तान बने या न बने, अब मुहल्ले अलग-अलग होंगे, साफ बात है।''[1]

''पुनश्च:- ''पर सवाल पूछते ही आँकड़ा बाबू स्थिति को समझा गया। यदि कोई हिन्दू अब चुनाव के लिए खड़ा होगा तो कांग्रेस के समर्थन की जरूरत होगी, और कोई मुसलमान खड़ा होगा उसे मुस्लिम लीग के समर्थन

की। लोगों के मन में यह बात बैठ गई थी कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है।''[2] किसी भी समाज में मुहल्ले का अलग-अलग हो जाना कहीं-न-कहीं सामाजिक व्यवहार और भाईचारे की भावना के पलायन का संकेत है। साथ ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग के समर्थन तथा विरोध का चित्र राजनीति के साथ जोड़कर स्वार्थी तत्त्वों का खतरनाक प्रयोग है।

भारत विभाजन का कोई भी बयान बिना धर्म के पूर्ण नहीं हो सकता। आज विभाजन के सत्तर से अधिक वर्षो के बाद भी यही महसूस होता है कि विभाजन केवल धार्मिक विश्वासों के द्वन्द्व से उपजी हुई एक त्रासद विभीषिका थी। उपन्यास में कई जगह ऐसे चित्र प्रस्तुत होते हैं जो सामाजिक सौहार्द और धार्मिक विद्वेष के द्वन्द्व की प्रारम्भिक स्थिति और अलगाववाद का स्वरूप प्रस्तुत करती है :- ''मुहल्लों के बीच लीकें खिंच गई थीं, हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमान को जाने की अब हिम्मत नहीं थी, और मुसलमानों के मुहल्ले में हिन्दू-सिख अब नहीं आ-जा सकते थे। आँखों में संशय और भय उतर आए थे। गलियों के सिरों पर, और सड़कों के नाकों पर जगह-जगह कुछ लोग हाथों में लाठियाँ और भाले लिये मुश्कें बाँधे, छिपे बैठे थे। जहाँ कहीं हिन्दू और मुसलमान पड़ोसी एक-दूसरे के पास खड़े थे, बार-बार एक ही वाक्य दोहरा रहे थे 'बहुत बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ है।' इसके आगे वार्तालाप बढ़ ही नहीं पाता था। वातावरण में जड़ता-सी आ गई थी।''[3] वातावरण की यह जड़ता अपना स्वरूपाकार ग्रहण कर रही है। लेकिन अभी यह विष, सम्पूर्ण समाज को निगल नहीं सका है। दंगे शुरू हो गये है। लक्ष्मीनारायण का घर मुसलमानों के मुहल्ले में है और वहाँ जब उन्हें अपनी जान और जवान बेटी की इज्जत खतरे में दिखाई देती है। ऐसे में अपने सगे-सम्बन्धियों को भी सहायतार्थ न बुलाकर अपने मुसलमान दोस्त शाहनवाज को बुलाते हैं। शाहनवाज एक रसूखदार मुसलमान है और वह स्वयं गाड़ी चलाकर लाला जी को सपरिवार सुरक्षित स्थान तक पहुँचा देता है। शाहनवाज अपने प्रिय मित्र रघुनाथ के घर उन्हें पहुँचाता है। रघुनाथ के घर पर जो स्वरूप शाहनबाज का दिखाई देता है वह सुखद एवं सौहार्दपूर्ण है, लेकिन वही शाहनवाज जब लाला लक्ष्मीनारायण के घर पुनः छूटे हुए जेवरात लेजाने आता है उस समय उसका चेहरा थोड़ा आश्चर्यचकित करने वाला है। वह घर के नौकर 'मिलखी' की चुटिया देखकर अचानक भाववेश में आ जाता है। वह सीढ़ी से उतरते हुए नौकर को बेवजह लात मारता है और नौकर सीढ़ी से गिरकर मर जाता है। सिख हरनाम सिंह का घर और उसकी दुकान भी मुसलमान बस्ती में है। सारे गाँव में अकेला घर है जो सिखों का है। हरनाम सिंह और उसकी पत्नी अकेले ही रहते हैं। बेटा कहीं दूसरी जगह जाकर अपनी दुकान खड़ी कर चुका है, तथा एक बेटी जो अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ दूसरे गाँव गई है।

दंगा भड़कने पर बन्तों की विह्वलता पर हरनाम सिंह उसे अपने मुसलमान मित्र 'करीम खान' का दिलासा देता है। ''अब करीमखान से बड़ा मोतबर इस गाँव में और कौन होगा? सारे गांव में एक ही तो सिख घर है। इन्हें गैरत नहीं आयेगी कि हम निहत्थे बूढ़ों पर हाथ उठाएँगे?''[4] और होता भी कुछ ऐसा ही है। लेकिन एक दूसरी घटना भी होती है। उस मुहल्ले की ओर से करीम खान आकर कहता है- ''करीम खान दुकान के सामने आया पर रूका नहीं, न ही हरनामसिंह की ओर मुँह किया, केवल चाल धीमी कर दी और खैखारने के बहाने बुदबुदाया : ''हालत अच्छी नहीं हरनामसिंह, तू चला जा।'' दो-एक कदम जाकर फिर बोला, 'गाँववाले तेरे वल अक्ख वी नहीं चुम्कणगे पर बाहरों लोकों देआण दा डर है। उन्हों नूँ रोकणा सौंडे बस दा नहीं।''[5] अंततोगत्वा होता भी यही है। हरनाम सिंह एवं बंतो गांव छोड़कर खेतों और जंगलों की ओर से भागते हैं और बलवाई आकर उसकी दुकान जला देते हैं और घर लूट लेते हैं। यहाँ से भागते समय पूरी रात चलकर जब वे दूसरे गांव जाकर आश्रय लेते हैं वह घर भी एक मुसलमान का है। घर में उस समय सिर्फ स्त्रियाँ हैं। दो सास बहुएँ। स्त्रियाँ थोड़ी झिझक और डर के बाद इन्हें आश्रय तो देती हैं लेकिन उन्हें भी कुछ वैसा ही डर है जैसा करीम खान ने व्यक्त किया था। ''सुनो जी सरदारजी, मैं तुमसे कुछ छिपाउँगी नहीं।'' घर की मालिकन बोली, ''मेरा घरवाला और बेटा दोनों गाँववालों के साथ बाहर गए हुए हैं। वे अभी लौटते होंगे। मेरा घरवाला तो अल्लाह से डरनेवाला आदमी है, तुम्हें कुछ नहीं कहेगा, पर मेरा बेटा लीगी और उसके साथ और लोग भी हैं। तुमसे वे कैसा सलूक करेंगे, मैं नहीं जानती। तुम अपना नफा-नुकसान सोच लो।''[6] इन उद्धरणों से साफ हो जाता है कि अभी समाज का बँटवारा और हिन्दू-मुस्लिम, सिख

आदि विभिन्न समुदायों के चले आ रहे सह-अस्तित्व एवं साझेपन की मानसिकता का बँटवारा नहीं हुआ था, हालाँकि उसकी शुरुआत हो चुकी थी। उपन्यास 'झूठा सच' और 'आधा-गाँव' पढ़ते हुए दिखाई देता है कि विभाजन को एक आवश्यकता की तरह प्रस्तुत किया गया था। यहाँ एक द्वंद्वात्मक स्थिति बनती हुई प्रतीत होती है। समाज में मानसिक तौर पर बँटवारे की कोई भावना का न होना यह जाहिर करता है कि भारतीय समाज में उसे किसी वर्ग ने अपनी आवश्यकता नहीं समझा था। यकायक इस आवश्यकता के उभर आने के पीछे क्या कारण रहे होंगे? विभाजन की सारी त्रासदी की जड़ों में एक मजबूत जड़ यह भी थी कि एक ऐसी त्रासदी जो इस समाज के किसी मनुष्य की आकांक्षा नहीं थी, उसे जरूरी बनाकर प्रस्तुत किया गया। राजनीति के लिए धर्म का प्रयोग ही सांप्रदायिकता है, जब शहर में सांप्रदायिक दंगे भड़कते हैं तो सामाजिक रूप में हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही इन दंगों की नींद करते हैं। भीष्म साहनी के शब्दों में ''जहां कहीं हिन्दू और मुसलमान पड़ोसी थे और एक-दूसरे के पास खड़े होते, बार-बार एक ही वाक्य दोहरा रहे थे - बहुत बुरा हुआ। बहुत बुरा हुआ।''[7] अतः साम्प्रदायिकता के तत्त्वों की पहचान करते हुए कहा जा सकता है कि सामाजिक समुदायों के साथ-साथ राजनीति भी इसके प्रमुख तत्त्वों में एक है धर्म तथा राजनीति का गठजोड़ भारत के लिए नया नहीं है। इतिहास गवाह है कि जब कभी धार्मिक सम्प्रदाय सम्पन्न हो गये या सत्ता के निकट आए तब तब ऐसा गठजोड़ होता रहा है।

भारत का विभाजन, यह किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित न रहा। इस घटना ने भारत के प्रत्येक प्रान्त को प्रभावित किया है। अतः स्वाभाविक है कि सभी प्रान्तीय भाषाओं में इस घटना से संबंधित साहित्यक, गैर साहित्यिक लेखन कार्य निरंतर चलता रहा। चूँकि भारत के उत्तरी प्रदेशों में अधिकतर मुसलमान जनता थी वहीं पर विस्थापन की समस्या अधिक दर्दनाक दिखाई देती है। भारत के दक्षिणी क्षेत्र आंध्रप्रदेश, तमिलनाडू और कर्नाटक में भी बँटवारे से जुड़ी हुई समस्याएँ उत्पन्न हुई। आज भी यहाँ के समाज में इसकी प्रतिक्रिया दिखाई देती है। भीष्म साहनी के अलावा अन्य साहित्यकारों ने भी अपने उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से इस बात को सिद्ध कर दिया है कि जब देश का विभाजन हो रहा था तब भी राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता को बनाए रखने के निरन्तर प्रयत्न हो रहे थे। निम्न मध्यवर्ग इस साम्प्रदायिकता विरोध चेतना की धुरी रहा है। इस तथ्य को सिद्ध किया गया है।

पीएच.डी., हिन्दी साहित्य
हिन्दी विभाग,
सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय दमुका
ईमेल : akswild@yahoo.com

संदर्भ सूची

1. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 300
2. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 302
3. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 147
4. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 197
5. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 197
6. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 230-231
7. तमस, भीष्म साहनी, पृ. 136

आयुष नन्दन*
प्रो. दया शंकर तिवारी**

वैदिक वाङ्मय में गणितीय अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन

शोध सार

प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक वाङ्मय में गणितीय अवधारणाओं को आधुनिक गणितशास्त्र के सिद्धांतों से तुलनात्मक अध्ययन को दर्शाया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से ऋग्वेद के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के संख्या पद्धति जैसे गणन संख्याओं, प्राकृत संख्याओं और पूर्ण संख्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यजुर्वेद के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के घातांक और घात, सम तथा विषम संख्या एवं समान्तर श्रेणी के सिद्धांतों पर विश्लेषण किया गया है। सामवेद के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के संख्या पद्धति को दर्शाया गया है। अथर्ववेद के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के संख्या संबंधी अवरोही क्रम का विश्लेषण किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के संख्या विधि के प्रयोग को दिखाया गया है। उपनिषदों के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के अनन्त की अवधारणा को बताया गया है। शुल्बसूत्रों के मन्त्रों को लेकर आधुनिक गणित के पाइथागोरस प्रमेय का तुलनात्मक विधि से अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द - 1. वैदिक 2. गणित 3. ब्राह्मण 4. उपनिषद् 5. शुल्बसूत्र

परिचय - संस्कृत साहित्य को सर्वप्रथम दो भागों में विभाजित किया गया है-वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। वैदिक साहित्य के अंतर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदांग माने जाते हैं तथा लौकिक साहित्य के अन्तर्गत काव्य, नाटक, गद्य, कथा, गीतिकाव्य तथा चम्पूकाव्य परिगणित हैं। वैदिक साहित्य के अंतर्गत वेदों की संख्या चार है- 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद एवं 4. अथर्ववेद। वैदिक साहित्य में आध्यात्मिक एवं साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त वैज्ञानिक चिन्तन भी दृष्टिगत होते हैं। वैदिक वाङ्मय में केवल आध्यात्मिक गूढ़ज्ञान ही नहीं है अपितु उसमें शुद्ध विज्ञान एवं गणित के महत्त्वपूर्ण तत्त्व भी दृष्टिगत होते हैं। इन तत्त्वों का वहाँ कोई धूमिल सा संकेत मात्र नहीं है अपितु अनेक गणितीय अवधारणाएँ विशदतया प्राप्त होती हैं। जहाँ तक वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित गणितीय अवधारणाओं का प्रश्न है उसमें संख्या पद्धति (Number System), घातांक और घात (Exponent and Power), सम संख्या (Even Number) विषम संख्या (Odd Number), समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression), गुणोत्तर श्रेणी (Geometric Progression) इत्यादि प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार शुल्वसूत्रों में प्राप्त अनेक रेखागणितीय सिद्धान्त इस प्रकार के हैं, जो आज भी विश्व के वैज्ञानिक व्यवहार का अनिवार्य अंग बने हुए हैं। भारत में गणित का इतिहास प्राचीन काल से ही समृद्ध रहा है। गणित का सामान्य अर्थ गणना करना है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानवीय क्रिया कलापों में गणना करना अर्थात् गिनना, जोड़ना, घटाना, गुणा करना तथा भाग देना इत्यादि कार्यप्रणाली मानव का नैसर्गिक गुण रहा है।

विषय-वस्तु - विश्व के सबसे प्राचीनतम साहित्य 'ऋग्वेद' में गणितीय तथ्यों का विवरण प्राप्त होता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के कुछ मन्त्रों में संख्या लेखन का वर्णन द्रष्टव्य है-

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्र पञ्च क्षितीनाम्।।[1]

इन्द्र जो एक ही जनसमूह पर, सम्पत्तियों पर और पृथ्वी पर रहने वाले पाँच प्रकार के प्राणियों पर राज्य करता है।

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते।
एकमेकं सुशस्तिभिः॥[2]

हममें से प्रत्येक को जो तीन बार सात आहुतियाँ देते हैं, हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर रत्न दें।

ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के प्रस्तुत मंत्र में संख्या लेखन पद्धति तथा जोड़ की पद्धति का स्पष्टतया वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ एक और बीस अलग-अलग लिखा हुआ है परन्तु उसे जोड़कर इक्कीस बताया गया है।

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या
वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः
सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम्॥[3]

अर्थात् वीर इन्द्रदेव ने सुदास (उत्तम जनों) की सहायता के लिए मरुतों को उत्पन्न किया। ये मरुद्गण संग्राम में शत्रुओं को उसी तरह काटते हैं, जैसे युवक दर्भो को काटता है।

इन्द्रदेव ने सुदास की रक्षा के लिए इक्कीस (21) वैकर्णो का वध किया। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सत्ताईसवें सूक्त के पन्द्रहवें मन्त्र में सात (7), आठ (8), नौ (9), दस (10) संख्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के बासठवें सूक्त के सातवें मन्त्र में आठ (8) संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के बहत्तरवें सूक्त के आठवें मन्त्र में आठ (8) संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के इन उपर्युक्त मंत्रों में हमें आधुनिक गणितशास्त्र के प्राकृतिक संख्या (Natural Number) और पूर्ण संख्या (Whole Number) की अवधारणा प्राप्त होती है।

यजुर्वेद के मंत्र संख्या 17.2 में 10^0 से 10^{12} तक के संख्याओं की जानकारी प्राप्त होती है।

निम्न सारणी के माध्यम से यजुर्वैदिककालीन संख्या लेखन पद्धति को स्पष्ट किया गया है-

एक - 1 (10^0), दश - 10 (10^1), शत - 100 (10^2), सहस्र - 1000 (10^3), अयुत - 10000 (10^4), नियुत - 100000 (10^5), प्रयुत - 1000000 (10^6), अर्बुद - 10000000 (10^7), न्यर्बुद - 100000000 (10^8), समुद्र - 1000000000 (10^9), मध्य - 10000000000 (10^{10}), अन्त - 100000000000 (10^{11}), परार्द्ध - 1000000000000 (10^{12})

यहाँ हमें आधुनिक गणितशास्त्र के घात एवं घातांक (Exponent and Powers) की अवधारणा प्राप्त होती है।

जैसे-अयुत - 10000 (10^4) = 10^4 = 10×10×10×10

यहाँ 10 आधार (Base) है और 4 को घातांक (Exponent) कहते हैं। 10^4 को घातांकन (Exponential form) कहते हैं। यहाँ हमें सूचकांक (Indices) का भी दर्शन होता है।

यजुर्वैदिक याग पद्धति में संख्याओं के लेखन पद्धति का स्पष्टतया वर्णन (मंत्र 18.24 तथा 18.25) में प्राप्त होता है -

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[4]

एक, तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सतरह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, उन्तीस, इकत्तीस और तैंतिस प्रभृति अयुग्म साम मुझे यज्ञ से सिद्ध होवें।

अयुग्म संख्या का विवरण निम्न है- (1,3), (3,5), (5,7), (7,9), (9,11), (11,13), (13,15), (15,17), (17,19), (19,21), (21,23), (23,25), (25,27), (27,29), (29,31)

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिश्च मे विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मे चतुर्विंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[5]

चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अठ्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालिस और अड़तालीस प्रभृति

स्वर्गप्रापक युग्म स्तोम मुझे यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवें।

युग्म संख्या का विवरण निम्न है – (4,8), (8,12), (12,16), (16,20), (20,24), (24,28), (28,32), (32,36), (36,40), (40,44), (44,48)

यहाँ हमें उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में आधुनिक गणितशास्त्र के क्रमशः विषम संख्या (Odd Number) एवं सम संख्या (Even Number) का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। साथ ही यहाँ समान्तर श्रेणी (Arithmetic Progression) की भी अवधारणा प्राप्त होती है। गणित में समान्तर श्रेणी अथवा समान्तर अनुक्रम संख्याओं का एक ऐसा अनुक्रम है जिसके दो क्रमागत पदों का अन्तर नियत होता है। जैसे अनुक्रम 4, 7, 10, 13, 16 ... एक समान्तर श्रेणी है जिसका सार्व अंतर 3 है।

अनुक्रम – यदि किसी संख्या समूह को लिखने में एक निश्चित नियम का पालन किया गया हो, उसे अनुक्रम कहते हैं। **पदान्तर** – अनुक्रम मे दो क्रमागत पदों का अंतर पदांतर कहलाता है। यदि किसी समान्तर श्रेणी का प्रथम पद a_1 और सार्व अंतर d है तो श्रेणी का iवाँ पद (a_i) इस प्रकार से लिखा जाता है– ($a_i = id + a_0$) और व्यापक रूप में इस प्रकार लिखा जाता है– $a_n = a_m + (n-m)d$. समान्तर श्रेणी के परिमित भाग को परिमित समान्तर श्रेणी कहते हैं और सामान्यतः केवल समान्तर श्रेणी कहा जाता है। परिमित समान्तर श्रेणी के योग को समान्तर श्रेणी कहते हैं। समान्तर श्रेणी का व्यवहार इसके सार्व अन्तर d पर निर्भर करता है। यदि सार्व अन्तर धनात्मक है तो इसके पद धनात्मक अनन्त की ओर अग्रसर होंगे और यदि ऋणात्मक है तो इसके पद ऋणात्मक अनन्त की ओर अग्रसर होंगे। मन्त्र संख्या 18.25 में चार का पहाड़ा (Table of 4) भी प्राप्त होता है।

सामवेद के पवमान पर्व के 5वें अध्याय के 6वें खण्ड के मन्त्र संख्या 3 में ऋषि पराशर स्तुति करते हुए संख्याओं का उल्लेख करते हैं–

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य
धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति
मतयो वावशानाः॥[6]

यज्ञ में हवि पहुँचाने वाला यजमान (उद्‌गाता) ऋक्, यजु, साम (तिस्रः वाचः) – 3 स्तुतियों का उच्चारण करता है। यज्ञ को धारण करने वाली सोम की कल्याणरूप वाणी का उच्चारण करता है। वृषभ के समीप जिस प्रकार गायें जाती हैं, इसी प्रकार पूछते हुए कामना रखने वाले स्तोता सोम के समीप स्तुति करने के लिए जाते हैं।

अथर्ववेद में गणित

अथर्ववेद की विशेषता गूढ़ ज्ञान एवं शुद्ध विज्ञान (Pure Science) के साथ ही व्यावहारिक विज्ञान (Applied Science) भी है। अथर्ववेद में गणितीय तथ्यों से संबंधित संख्यांक एवं संख्याएँ (Numerals and Numbers), मूल गणितीय संक्रियाएँ (Basic Mathematical operations) जैसे – जोड़ (+) (Addition), घटाव (–) (Subtraction), गुणन (×) (Multiplication) और भाग (÷) (Division) प्राप्त होती हैं।

अथर्ववेद के 'रात्रि सूक्त' के 19वें काण्ड के 47वें सूक्त के मन्त्र संख्या 3 से 5 में 11 का उल्टा पहाड़ा (Reverse Table of 11) इस प्रकार वर्णित किया गया है –

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः॥[7]

हे रात्रि! जो तुम्हारे देखने वाले हैं, वे 99, 88 और 77 हैं। हे रेवति! वे 66 हैं, हे सुम्नयि! वे 55 हैं, हे वाजिनि! वे 44 हैं, 33 हैं। हे रात्रि! वे 22 हैं, वे 11 हैं। वे दिव्यलोक की कन्या रात्रे! आप उन रक्षकों द्वारा इस समय हमें संरक्षण प्रदान करें।

ब्राह्मण ग्रन्थों में गणित की विभिन्न शाखाओं जैसे अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति आदि में उपलब्ध नियमों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें खगोल विज्ञान (Astronomy) का भी विवरण प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण के 10वें काण्ड के अध्याय संख्या 2 के ब्राह्मण संख्या 4 के 5वें मन्त्र में यज्ञ के माध्यम से ऋषि हमें संख्याओं का ज्ञान कराता है–

यद्देवैकशतविधः। सप्तविधमभिसम्पद्यतऽएकशतधा वाऽअसावादित्यो विहितः सप्तस्वृतुषु सप्तसु स्तोमेषु सप्तसु पृष्ठेषु सप्तसु छन्दःसु सप्तेसु प्राणेषु सप्तसु दिक्षु प्रतिष्ठितस्तथैवैतद्यजमान एकशतधात्मानं विधायैतस्मिन्सर्वस्मिन्प्रतितिष्ठति।[8]

एक सौ एक (101) विधि के शरीर का सात (7)

विधियों में परिवर्तन कैसे होता है- यह आदित्य एक सौ एक (101) विधि का है। सात (7) ऋतुओं में, सात (7) स्तोमों में, सात (7) पृष्ठों में, सात (7) छन्दों में, सात (7) प्राणों में, सात (7) दिशाओं में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार यह यजमान भी एक सौ एक (101) विधि का शरीर बनाकर इस सम्पूर्ण संसार में प्रतिष्ठा पाता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् के पंचम अध्याय के प्रथम ब्राह्मण के प्रथम मन्त्र द्रष्टव्य है-

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।[9]

वह ब्रह्म पूर्ण है यह संसार भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से ही यह पूर्ण विश्व प्रादुर्भूत हुआ है। उस पूर्ण ब्रह्म में से इस सम्पूर्ण जगत् को निकाल लेने पर पूर्ण ब्रह्म ही शेष रहता है।

प्रस्तुत मन्त्र में हमें आधुनिक गणितशास्त्र के अनन्त की अवधारणा (Concept of Infinity) प्राप्त होती है। (8-8=8) कल्प अर्थात् यज्ञों का विधान। कल्प के चार भेद हैं - (क) श्रौतसूत्र (ख) गृह्यसूत्र (ग) धर्मसूत्र (घ) शुल्बसूत्र । शुल्बसूत्रों में यज्ञ-निमित्तक वेदी के निर्माण का विवरण है। इनका काल 800-400 ई.पू. के मध्य माना जाता है। शुल्ब का अर्थ है - ''मापने का धागा (सूत)''।

भारतीय ज्यामिति की शुरुआत इन्हीं से होता है। वर्तमान समय में शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध कात्यायनशुल्बसूत्र तथा कृष्णयजुर्वेद के सात शुल्बसूत्र मिलते हैं- बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय, वराह, सत्याषाढ़ तथा वाधूल। कात्यायन शुल्बसूत्र में क्षेत्रफल जानने की एक से अधिक रीतियाँ दी गई है। इसमें वर्ग, आयत, त्रिभुज आदि भौमितिक आकृतियों का विन्यास करने की पद्धतियाँ वर्णित है। बौधायन शुल्बसूत्र में लम्बाई के विभिन्न परिमाणों की सारणी, नित्याग्नियों के माप, विविध प्रकार के यज्ञों के लिए वेदियों तथा मण्डपों के माप, अग्निचिति के क्षेत्रफल, श्येनचिति के माप, श्येन (बाज) पक्षी के शरीर, सिर, पंख और पूँछ के अनुसार बनायी जाने वाली अग्निचिति की रचना का वर्णन, त्रिकोणाकृति दृोणचितियों, श्मशानचिति, कूर्मचिति इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। मानव शुल्बसूत्र में भूमिति की जानकारी, अग्निचिति, मण्डप, वेदि आदि का विन्यास, मण्डपों का नाप, आकार, वर्गाकृति, श्येनचिति का विन्यास, ईंटों का नाप और रचना दी है। आपस्तम्ब शुल्बसूत्र - इसमें भूमिति, गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि का नाप, श्येनचिति का आकार, नाप, अग्निचिति के क्षेत्रफल की जानकारी तथा अन्तिम खण्ड में अश्वमेधीय अग्निचिति के विषय में बताया गया है।

वेदाड्ग के शुल्बसूत्रों के द्वारा हमें त्रिभुज, चतुर्भुज, वर्ग, आयत, समान्तर चतुर्भुज, वृत्त आदि की संरचना के बारे में नियमों की जानकारी प्राप्त होती है। यह सूत्र बौधायन शुल्बसूत्र में निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होता है -

दीर्घचतुरस्रस्याक्ष्णयारज्जुः पाश्र्वमानी तिर्यड.मानी च यत् पृथग्भूते कुरूतस्तदुभयं करोति।[10]

आयत के अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल पार्श्वमानी और तिर्यड.मानियों के अलग-अलग वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के समान होता है। जिसको समकोण त्रिभुज में पाइथागोरस प्रमेय $AC^2 = AB^2 + BC^2$ के द्वारा जाना जाता है। यह प्रमेय पाइथागोरस (580-500 ई.पू.) से पूर्व बौधायन (800 ई.पू.) के द्वारा निर्मित है।

यथा - $3^2 + 4^2 = 5^2$, $12^2 + 5^2 = 13^2$

$15^2 + 8^2 = 17^2$, $7^2 + 24^2 = 25^2$

$12^2 + 35^2 = 37^2$, $15^2 + 36^2 = 39^2$

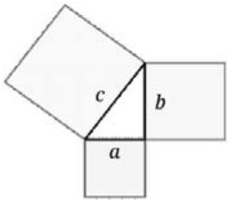

***संस्कृत विभाग,**
दिल्ली विश्वविद्यालय

****संस्कृत विभाग,**
दिल्ली विश्वविद्यालय

सन्दर्भ सूची

1. ऋग्वेद 1.7.9
2. ऋग्वेद 1.20.7
3. ऋग्वेद 7.18.11
4. यजुर्वेद 18.24
5. यजुर्वेद 18.25
6. सामवेद पवमानपर्व 5.6.3
7. अथर्ववेद 19.47.3-5

8. शतपथ ब्राह्मण 10.2.4.5
9. बृहदारण्यकोपनिषद्
10. बौधायनशुल्बसूत्र 1.48

सन्दर्भ ग्रथ सूची

1. शर्मा, श्रीराम (सम्पा.), ऋग्वेद संहिता, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि मथुरा, उत्तर प्रदेश, 2005.
2. शास्त्री, रामकृष्ण (अनुवादक), यजुर्वेद (शुक्लयजुर्वेद), चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, उत्तर प्रदेश, 1999.
3. गौड, पं. रामस्वरूपशर्मा (सम्पा.), सामवेदसंहिता, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, उत्तर प्रदेश, 2015.
4. शर्मा, श्रीराम (सम्पा.), अथर्ववेद संहिता (भाग.1-2), युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि, मथुरा, उत्तर प्रदेश, 2015.
5. सरस्वती, स्वामी सत्यप्रकाश (सम्पा.), शतपथ ब्राह्मण (भाग.1 एवं 2), विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2014.
6. शर्मा, श्रीराम (सम्पा.), 108 उपनिषद् (ज्ञानखण्ड), युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट गायत्री तपोभूमि, मथुरा, उत्तर प्रदेश, 2015.
7. कुलकर्णी, रघुनाथ पुरुषोत्तम (अनु.), चार शुल्बसूत्र, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2003.
8. उपाध्याय, बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित (ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन), विज्ञान भारती, नई दिल्ली, 1971.
9. गुप्त, राधाचरण, प्राचीन भारतीय गणित की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक झलकियाँ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, 1997.
10. 'तीर्थ', भारती कृष्ण, वैदिक गणित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005.
11. द्विवेदी, सुधाकर (सम्पा.), बीजगणितम्, बनारस संस्कृत सीरिज, बनारस, 1927.
12. पाण्डेय, ओमप्रकाश एवं निगम, श्यामसुन्दर (सम्पा.), वेदकालीन प्रौद्योगिकी, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2003.
13. आचार्य, सुद्युम्न, गणित शास्त्र के विकास की भारतीय परम्परा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006.
14. तिवारी, दया शंकर, संस्कृत वाङ्मय में गणितीय परम्परा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, नई दिल्ली, 2020.

शोध-पत्र

नरेश सिंह यादव

भारतीय नवजागरण और टैगोर

यूरोपीय 'रैनेसाँ' के लिए हिंदी में पुनर्जागरण, पुनरुत्थान तथा नवजागरण शब्द प्रचलन में है। ये तीनों शब्द नजदीक होते हुए भी भिन्न प्रवृत्तियों को सूचित करते हैं। भारतीय रैनेसाँ की तस्वीर को समझने के लिए इन शब्दों की पड़ताल करना जरूरी है। सबसे पहले हम 'रैनेसाँ' के अर्थ को समझते हैं।

'Renaissance' अपने मूल अर्थ में 'Re-birth' है, 'पुन: जन्म'। इससे जो ध्वनित होता है वह यह कि पहले किसी चीज की उपस्थिति थी फिर वह लुप्तप्राय: हो गया और अब फिर अपने नए रूप में पुन: जीवित हो गया है। यूरोप के इतिहास को देखें तो वह जिन तीन कालखण्डों में विभाजित है-प्राचीन काल, मध्यकाल, आधुनिक काल। इसमें मध्यकाल यानी 5वीं सदी से 14वीं-15वीं सदी के कालखंड को 'अंधकार काल' की संज्ञा दी जाती है। यह वह समय था जब जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी भी प्रकार के नयेपन का सृजन नहीं हुआ। पूरा समाज धार्मिक रूढ़ियों से जकड़ा हुआ था जिसने संस्कृति और कला की बहती धारा को, मानवीय चेतना को अवरुद्ध कर रखा था। 14वीं-15वीं सदी में सामंतवाद के पतन, पूँजीवाद के उभार, नए भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप विज्ञान का आरम्भ, नगरों का उत्थान आदि वे सब कारण थे जिसने एक हजार साल से अंधकार में डूबे यूरोपीय समाज में उस नई चेतना का प्रवाह किया जो उसे मध्यकाल से खींचकर आधुनिक काल में लेकर आई।

एक समय से दूसरे समय में प्रवेश करना एक अलग नई दुनिया में प्रवेश करना है। जहाँ हर चीज अपरिचित है। हमारे जीवन के हर धरातल में कुछ नया निर्मित हो रहा होता है। समूचे अस्तित्व के साथ हमारा सम्बन्ध, हमारी जीवन-दृष्टि परिवर्तित हो रही होती है। जो मनुष्य इन सबके बीच अपनी आंखें खोलता है वह अपनी पुरानी दुनिया से नितांत भिन्न दुनिया में स्वयं को पाता है। इस दुनिया में मनुष्य ईश्वर को अपदस्थ कर केंद्र में आता है। जीवन की व्याख्या धार्मिक संदर्भों में न होकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक संदर्भों में होने लगती है। आस्था का स्थान तर्क और विवेक ग्रहण करता है। मनुष्य की इस नवीन, वैज्ञानिक, भौतिक चेतना के उदय को 'रैनेसाँ' कहा गया। जिसने नई सामाजिक-संरचना का निर्माण किया।

'रैनेसाँ' के लिए प्रचलित हिंदी शब्द 'पुनर्जागरण' और 'पुनरुत्थान' को वह सर्वस्वीकृति नहीं मिल सकी जो 'नवजागरण' को मिली। जब हम 'पुनरुत्थान' कहते हैं तो उसमें अपने अतीत की प्रतिष्ठा पर अधिक बल होता है, अपनी प्राचीन परम्पराओं की ओर लौटने का भाव निहित होता है जो कि आधुनिक जीवन-मूल्य की विरोधी चेतना है। 'रैनेसाँ' आधुनिक जीवन-मूल्यों से चालित है जबकि 'पुनरुत्थान' में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति एक मोह, जो प्रगतिशीलता की विरोधी है, दिखाई देता है।

'पुनर्जागरण', 'रैनेसाँ' का शाब्दिक अनुवाद है लेकिन यह भारतीय सन्दर्भ में उतना सटीक नहीं है जितना 'नवजागरण'। 'पुनर्जागरण' से जो आशय निकलता है वह यह कि पहले हम जगे हुए थे फिर बौद्धिक चेतना निष्क्रिय मोड़ में चली गयी और फिर पश्चिमी संस्कृति की टकराहट से हम जागे और हमने जीवन के विविध क्षेत्रों में सुधार करना प्रारंभ किया। लेकिन यह अर्थ यूरोपीय समाज के लिए ठीक है क्योंकि वहाँ एक लंबे

समय अंधकार काल रहा। भारतीय जीवन और समाज को देखें तो यहाँ कभी अंधकार काल जैसी चीज नहीं रही। यहाँ कभी ऐसा नहीं हुआ कि सामूहिक चेतना ने कुछ सृजित न किया हो और वह सुषुप्तावस्था में चली गयी है।

इसकी जो सबसे बड़ी वजह रही वह यह कि समय-समय पर भारत से भिन्न सभ्यताएं-संस्कृतियां टकराती रहीं जिसने भारतीय मानस को उर्वर बनाये रखा। 'रामधारी सिंह दिनकर' अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में इसका विस्तृत रूप से जिक्र करते हैं। सबसे पहले आर्य और आर्येतर संस्कृतियों का मिलन होता है जिसने भारतीय संस्कृति को आकार देना आरम्भ किया। जब जीवन एकरस में बहने लगा तो कुछ समय पश्चात बौद्ध और जैन धर्म का उदय हुआ जिसने भारतीय चेतना में उद्वेलन पैदा किया जिससे नए विचार-सूत्र उपजे। कुछ समय पश्चात इस्लाम का आगमन इस भारतीय भूमि पर हुआ, जिससे मिलकर भारतीयता का नया स्वरूप निर्मित होता है। फिर भक्ति आंदोलन से भारतीय मानस में कंपन पैदा होता है और फिर आधुनिक काल में पश्चिम की टकराहट से।[1]

इस तरह भारतीय इतिहास में कहीं पर भी चेतना की शून्यता दिखाई नहीं देती है। इसलिए 'पुनर्जागरण' शब्द भारतीय संदर्भ में उचित नहीं होगा।

'नवजागरण' शब्द में नये तरीके से जागने का भाव निहित है। जागे तो हम पहले से थे अब नये तरीके से खुद को निर्मित करना है। सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन, अपने अतीत की रूढ़ियों को नष्ट करना तथा ज्ञान और विवेक के नये आलोक में अपनी सांस्कृतिक और जातीय अस्मिता की व्याख्या, नवजागरण की चेतना के प्रमुख आयाम थे।

रवीद्रनाथ टैगोर का योगदान

जिसे हम भारतीय नवजागरण कहते हैं। वह बंगाल की भूमि से चारों ओर फैला था। बंगाल की भूमि से जो नये जागरण की लहर उठी थी उसकी शुरुआती बिंदु में खड़े है राजाराममोहन राय और आखिरी बिंदु में गुरुदेव टैगोर। दोनों के बीच एक लंबा फासला है। टैगोर ने राजाराममोहन राय को मानवजाति की सार्वभौमता का आदर्श रखकर भारत को बाकी दुनिया से जोड़ने वाला व्यक्ति कहा था। इसी प्रस्थान बिंदु से रवीन्द्रनाथ टैगोर की खुद की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दृष्टि का निर्माण होता है।[2]

टैगोर के लिए नवजागरण की चेतना से निर्मित सांस्कृतिक जमीन तैयार हो चुकी थी। 1828 में राजाराममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना की गई जिसका नेतृत्व गुरुदेव के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने 1843 में किया। 1829 में विलियम बेंटिक ने 'सती प्रथा' को गैर कानूनी घोषित कर दिया था।

केशवचन्द्र सेन द्वारा महाराष्ट्र में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना की गई थी। 1875 में दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापना बम्बई में की। 'यंग बंगाल आंदोलन' में हेनरी विवियन देरेजियो द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही थी। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'विधवा पुनर्विवाह' के समर्थन में आंदोलन चलाया। आधुनिक शिक्षा देने का प्रयास ईसाई मिशनरियों द्वारा बड़े पैमाने पर किया गया। इसी जमीन पर रवीन्द्रनाथ की चेतना निर्मित हो रही थी और उनकी विचार-सरणी को प्रभावित कर रही थी।

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक की घटनाओं ने भी रवीन्द्रनाथ की चेतना का निर्माण किया। 1905 में बंगाल विभाजन, 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना, 1907 में कांग्रेस का विभाजन और नरम दल-गरम दल के बीच उग्र राष्ट्रवाद का उदय, 1908 में खुदीराम बोस को फांसी, बाल गंगाधर की प्रखरता का उदय, 1909 में मार्ले-मिंटो सुधार के तहत साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति की शुरुआत जैसी कई घटनाएँ घटीं। रवीन्द्रनाथ की समूची विचार-सरणी में 19वीं और 20वीं शताब्दी की पृष्ठभूमि और घटनाएं सम्मिलित हैं।

टैगोर जब आते हैं तो वे कुछ बुनियादी बातों पर चिंतन करते हैं। उनमें प्रमुख हैं-स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद और विश्व मानवतावाद। स्वतंत्रता का जो विशिष्ट विचार राजाराममोहन राय विकसित होना आरम्भ हुआ था उसे टैगोर ने एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की।[3] यहाँ यह समझना जरूरी है कि जब टैगोर मनुष्य की किसी समस्या पर बात करते हैं तो वे मनुष्य को मार्क्सवादियों की तरह केवल राजनीतिक, आर्थिक खाँचे में बाँटकर नहीं देखते, उनके लिए मनुष्य, प्रकृति, सम्पूर्ण अस्तित्व सब आपस में जुड़े हुए हैं।

इसलिए टैगोर के लिए स्वतंत्रता केवल राजनीतिक मुक्ति के लिए नहीं है। बल्कि विश्व के साथ व्यक्ति के मिलन में है। जो आत्म-साक्षात्कार में निहित है। यह

व्यक्ति की आध्यात्मिक स्वतंत्रता है।

परंतु यह ऐसी स्वतंत्रता नहीं है जो व्यक्ति को सांसारिक जीवन से विमुख कर दे।[4] टैगोर सृष्टि को ईश्वर की लीला मानते हैं। अत: संसार से मुँह मोड़कर ईश्वर को पाने का प्रयास व्यर्थ है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन गुरुदेव पर लिखे अपने एक निबन्ध में लिखते हैं-

टैगोर के लिए ईश्वर, मानव और प्रकृति एक में ही समाविष्ट हैं। वे उस दृष्टिकोण को नकारते हैं जो विश्व को कंकालों की घाटी, मुर्दाघर, मिथ्या या झूठा मानता है। टैगोर के लिए समस्त ब्रह्मांड उसी सर्वोच्च सत्ता की अभिव्यक्ति है। ईशावास्यमिदम सर्वम। सभी वस्तुएं आपस में जुड़ी हुई हैं-''सुत्रे मणि-गणा इव।''[5]

राजनीतिक स्वतंत्रता का संकीर्ण दृष्टिकोण एक अच्छे समाज की स्थापना करने में बहुत ज्यादा पर्याप्त नहीं हो सकता। स्वतंत्रता ऐसे नियम स्वीकार नहीं करती जो मनुष्य पर बाहर से थोपे गए हों। आत्म-निर्णय स्वतंत्रता का सार तत्त्व है। यह व्यक्ति में गौरव की भावना का संचार करती है। अत: टैगोर उस स्वतंत्रता के पक्ष में है जो व्यक्ति को उसके गरिमामय आनन्द का आस्वाद कराये। टैगोर की स्वातन्त्र्य की संकल्पना पर टिप्पणी करते हुए अमर्त्य सेन अपनी पुस्तक 'The Argumentative Indian' में लिखते हैं-''लोगों के स्वतंत्रतापूर्वक निर्वाह और तर्क कर पाने को टैगोर बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। उनके राजनीतिक और संस्कृति, राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रवाद, परम्परा और आधुनिकता आदि विषयक को इसी स्वातन्त्र्य भावना की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।''[6]

स्वतन्त्रता की अपनी इस विस्तृत अवधारणा के कारण ही उन्होंने राष्ट्रवाद का प्रखर विरोध किया। एक सच्चे मानववादी के नाते टैगोर ऐसी संस्थाओं और संगठनों को सहन नहीं कर सकते थे जो व्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन करती हों। टैगोर के अनुसार समाज और राष्ट्र की उत्पत्ति, प्रकृति और कार्यों में मौलिक अंतर है। समाज मानव प्रकृति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह सद्भावना और परस्पर सहयोग के आधार पर निर्मित मानवीय संबंधों के समायोजन की संस्था है। इसके विपरीत राष्ट्र मुख्यत: कृत्रिम उपकरण है। वह राज्य का ही परिष्कृत रूप है।

टैगोर ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवाद' पर इसके स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने पश्चिमी भावना को तो स्वीकार किया किंतु पश्चिमी राष्ट्र की आलोचना की। उन्होंने राष्ट्र को राजनीति और वाणिज्य का संगठन माना। वे लिखते हैं कि आधुनिक राष्ट्र में शासक वर्ग अपने विशिष्ट उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जन-मानस में आतंक, जातीय गर्व और दूसरों के प्रति घृणा का संचार करते हैं।[7] उन्होंने राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति को यूरोपीय साम्राज्यवाद का मूल कारण माना है।

अपनी पुस्तक में वे लिखते हैं कि पश्चिम के राष्ट्र ऐसे हिंस्र जंतुओं के दल थे जिन्हें अपने शिकार की तलाश थी। यूरोपीय राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों का राजनीतिक और आर्थिक शोषण तो किया ही साथ ही उनकी आध्यात्मिक शक्ति को भी क्षीण किया।

इसकी विभीषिका यहीं नहीं रुकती, प्रथम विश्व युद्ध का जो महाविनाशकारी रूप प्रस्फुटित हुआ उसके पीछे भी राष्ट्रीय भावना की परस्पर प्रतिस्पर्धा थी। टैगोर राष्ट्रवाद के भयानक स्वरूप को पहचाने चुके थे इसलिए वे भारतीय नवजागरण को उससे दूर रखना चाहते थे।

इसके अभिशाप से मानवता की मुक्ति का उपाय यही है कि राष्ट्रीय भेदभाव की दीवार गिरा दी जाये और मानवीय संबंधों को विश्व स्तर पर सद्भावना, सहृदयता और सहयोग के आधार पर जोड़ दिया जाए। इस तरह उन्होंने मानवीय भावना पर आधारित अंतर्राष्ट्रवाद के विकास का समर्थन किया।

संदर्भ सूची

1. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ 17
2. भारतीय चिंतन परम्परा- के. दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.,
3. राजनीति चिंतन की रूपरेखा-ओम प्रकाश गाबा, नेशनल पेपरबैक्स, संस्करण - 2020
4. समाज-विज्ञान विश्वकोश, खण्ड-1, (सम्पा.) अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, संस्करण - 2013
5. प्रेरणा पुरुष : भारत के महान व्यक्तित्व और उनके विचार- डॉ. राधाकृष्णन, राजपाल प्रकाशन, संस्करण-2014
6. भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति (The Argumentative Indian का हिंदी अनुवाद)- अमर्त्य

सेन, राजपाल प्रकाशन, संस्करण–2019
7. राष्ट्रवाद– रवीन्द्रनाथ टैगोर, अनु.– सौमित्र मोहन, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण–2017

सहायक ग्रन्थ–

1. राष्ट्रवाद– रवीन्द्रनाथ टैगोर, अनु.– सौमित्र मोहन, नेशनल बुक ट्रस्ट, संस्करण–2017
2. भारतीय चिंतन परम्परा– के. दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
3. भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति (The Argumentative Indian का हिंदी अनुवाद)– अमर्त्य सेन, राजपाल प्रकाशन, संस्करण–2019
4. राजनीति चिंतन की रूपरेखा–ओम प्रकाश गाबा, नेशनल पेपरबैक्स, संस्करण–2020
5. प्रेरणा पुरुषः भारत के महान व्यक्तित्व और उनके विचार–डॉ. राधाकृष्णन, राजपाल प्रकाशन, संस्करण–2014
6. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली– डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2016
7. समाज–विज्ञान विश्वकोश, खण्ड–1, (सम्पा.) अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, संस्करण–2013

शोध-पत्र

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में भाषायी चिंतन

सुदेश कुमार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का भाषायी चिंतन उनके भाषणों तथा निबंधों में उभर कर आता है। द्विवेदी जी ने अपने निबंधों में सांस्कृतिक, साहित्यिक और भाषा चिंतन प्रस्तुत किया है। उनका चिंतन संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के गहन चिंतन से परिपूर्ण है। द्विवेदी जी को अतीत के गर्भ से जो कुछ भी मिला है उसका गहन चिंतन करके उसे समाज के सामने प्रस्तुत किया है। भाषा चिंतन की सहजता उनके भाषा विषयक निबंधों में परिलक्षित होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य और भाषा विषयक चिंतन के केंद्र में परंपरा और इतिहास बोध अवस्थित है। उन्होंने परंपरा और इतिहास-बोध की सहायता से समसामयिक भाषा-समस्या को भी सुलझाने के सूत्र अपने निबंधों में दिए हैं।

द्विवेदी जी जब अपने साहित्य में भाषा की बात करते हैं तो उनका भाव अधिकतर 'हिन्दी भाषा' से होता है। क्योंकि उनका का मानना है कि संस्कृति का सम्प्रेषण साहित्य के द्वारा प्रकट होता है उसी तरह साहित्य का सम्प्रेषण भाषा के द्वारा होता है। भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति जितनी अधिक क्षमता के साथ होगी, उतना ही अधिक वह साहित्य व्यक्ति के जीवन पर प्रकाश डालेगा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भाषा की शक्ति को पहचानकर उसे विश्व मंच की भाषा बनाने की बात की है। अपने एक प्रसिद्ध निबंध साहित्यकारों का दायित्व में लिखते हैं ''हिन्दी को संसार के समूचे ज्ञान विज्ञान का वाहन बनना है।''[1] अर्थात् जब देश के बड़े-बड़े अध्यापक यह विचार करेंगे कि हिन्दी उच्चतर ज्ञान विज्ञान की पढ़ाई का माध्यम बने। हिन्दी भाषा को लेकर शिक्षित लोगों के अंदर जो भय और संकोच था, द्विवेदी जी ने उसको सबसे पहले दूर करने का प्रयास किया। जिनके अनुसार ''वे अंग्रेजी बिना स्वयं को अनाथ और हिन्दी के नाम संकोच और हीनभाव से ग्रस्त हो जाते हैं।''[2] द्विवेदी जी अपने साहित्य में भाषा को साध्य नहीं साधन माना है, साध्य तो मनुष्यता की स्थापना है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। इसीलिए संस्कृत भाषा को भी महत्व देते हैं। अतः हिन्दी भाषा में संस्कृत के शब्दों को अपनाने का विचार भी है। द्विवेदी जी ऐसा इसलिए नहीं करते हैं कि संस्कृत वेदभाषा है, बल्कि इसलिए कि संस्कृत भाषा ने अपने ज्ञान से विश्व को चमत्कृत किया है। द्विवेदी जी ने व्यापक दृष्टि से बहुभाषिकता के प्रश्न पर भाषा वैज्ञानिक की तरह चिंतन करते हुए कहा है कि नाना कारणों से इस देश में और बाहर यह बार-बार विज्ञापित किया जाता है कि इस महादेश में सैकड़ों भाषाएँ प्रचलित हैं और इसीलिए इसमें अखंडता या एकता की कल्पना नहीं की जा सकती। इस मिथ का निराकरण करते हुए वे याद दिलाते हैं कि हमारे इस देश ने हजारों वर्ष पहले से भाषा की समस्या हल कर ली थी। हिमालय से सेतुबंध तक सारे भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि विषयों की भाषा कुछ सौ वर्ष पहले तक एक ही रही है। यह भाषा संस्कृत थी। वे याद दिलाते हैं कि भारतवर्ष का जो कुछ श्रेष्ठ है, जो कुछ उत्तम है, जो कुछ रक्षणीय है, वह इस भाषा के भंडार में संचित किया गया है। द्विवेदी लिखते है कि भारतवर्ष की भाषा जो कोई भी हो, हमें

उसका सम्मान करना चाहिए। क्योंकि हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसको भारत में करोड़ों लोग बोलते हैं, अत: हमें उसके माध्यम से इस बात को जानने का प्रयास करना चाहिए कि हिन्दी हमारे बीच की खाई को पाटने का सेतु है, हिन्दी भाषा के रूप में एक ऐसी धारा प्रवाहित हो रही है जो समस्त देशवासियों के विचारों का तथा उनकी वाणी का प्रतिनिधित्व कर सकती है।

द्विवेदी जी ने ''विश्व भाषा हिन्दी'' निबंध में हिन्दी को विश्व भाषा बनाने के लिए हम कौन-कौन से प्रयास कर सकते हैं इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। अत: यह कहा जा सकता है कि आज हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप स्थापित हो रही है। विभिन्न विश्व हिन्दी सम्मेलनों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है। आज हिन्दी को विश्व के रूप में देखने का प्रयास किया जा रहा है यह तभी सम्भव होगा जब देश के बड़े अध्यापक हिन्दी को विश्व स्तर पर लाने के लिए भरसक प्रयास करें। आज हम देखते हैं कि भारतीय स्तर पर बड़े-बड़े जो अधिकारी हैं वे हिन्दी भाषा के महत्व को अभी भी ठीक से नहीं समझ पा रहे हैं। वे आज भी अंग्रेजी भाषा से ग्रसित है। द्विवेदी जी लिखते हैं कि-''मेरा विश्वास है कि जल्दी ही वह स्थिति आने वाली है कि हिन्दी की उपेक्षा करने वाले स्वयं उपेक्षित हो जायेंगे और इस देश की भाषाएँ और उनसे सम्पर्क बनाये रखने वाली प्रमुख भाषा हिन्दी अपना अधिकार प्राप्त करेगी।''[3] स्पष्ट है कि भारतीय जनता समय की मांग को पहचान कर जल्द ही हिन्दी भाषा को विश्वभाषा बनाने की मांग करें। आज हिन्दी विश्व भाषा की बनने की अधिकारिणी बन गयी है। जिन महान लेखकों और कवियों के कारण हिन्दी को यह गरिमा प्राप्त हुई है उनमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का प्रसिद्ध निबंध ''हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ'' भाषा विषयक निबंध है जो भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग अधिवेशन में दिया गया भाषण है।

जिसमें हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के पारस्परिक संबंधों पर चर्चा की गयी थी जैसे हिन्दी और उर्दू का प्रश्न रहा है जिस हिन्दी को हम साहित्यिक हिन्दी कहते हैं वह उर्दू से बनायी है। विदेशी मुसलमानों ने भारत में आने हिन्दी प्रदेश में पड़ी भाषा को खड़ी बनाकर अपने लिए व अपने समाज के लिए उपयोगी बनाया। प्रान्तीय भाषा से उन्हें प्रेम नहीं था उनकी भाषा धीरे-धीरे राष्ट्रभाषा बनने की ओर बढ़ने लगी। परन्तु भारतीय हिन्दू अपने अपने प्रान्तों की भाषा को छोड़ नहीं सके। आचार्य द्विवेदी ने भाषा को भी मनुष्य की दृष्टि से ही देखने पर बल दिया है। भाषा-संघर्ष का मूल इस दृष्टि की उपेक्षा में निहित है। तभी तो हिंदी और उर्दू की लड़ाई भाषा की लड़ाई कम और भाषाई अस्मिता की लड़ाई अधिक है। इसमें संदेह नहीं कि उर्दू का भाषा शास्त्रीय ढाँचा हिंदी के भाषा शास्त्रीय ढाँचे से अलग नहीं है। इतना ही नहीं, द्विवेदी जी तो यह भी स्वीकारते हैं कि जिस हिंदी को आजकल हम साहित्यिक हिंदी कहते हैं, वह उर्दू के पर से बनाई गई है तथा हिंदी, मुसलमानी भाषा है क्योंकि शुरू-शुरू में खड़ी बोली मुसलमानों की भाषा मानी जाती थी।

द्विवेदी जी का कहना है कि हिन्दी भाषा की वास्तविक शक्ति जनता ही है। द्विवेदी जी लिखते हैं कि-''ऐसे साहित्य का निर्माण करना चाहिए जो जनता का वास्तविक कल्याण करे। उसमें उदात्त भावनाओं का संचार करे, उसकी जीवन यात्रा में सहायता पहुँचाने और उसे संसार के किसी देश की जनता के सामने गर्वपूर्वक खड़ा होने का बल दे यही हमारा वास्तविक कार्य है।''[4] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''हिंदी तथा अन्य भाषाएँ'' शीर्षक निबंध में विस्तार से उन सभी विषयों पर प्रकाश डाला है जिन पर विचार करना भाषा-नियोजन की आधारभूत आवश्यकता है, जैसे 1. हिंदी का संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं से संबंध, 2. हिंदी का हिंदीतर प्रदेशों की आधुनिक भाषाओं के साथ संबंध, 3. हिंदी का उसकी जनपदीय बोलियों के साथ संबंध, 4. हिंदी का उर्दू के साथ संबंध और 5. हिंदी और अंग्रेजी का संबंध आदि।[5]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने ''हिन्दी और अन्य भाषाओं का संबंध'' निबंध में संस्कृत, आधुनिक भाषाएँ, हिन्दी प्रदेश की बोलियों और अंग्रेजी के हिन्दी के साथ संबंध की चर्चा की है। हिन्दी भाषा के परिनिष्ठित रूप के लिए संस्कृत भाषा का सहारा बड़ा महत्वपूर्ण है। हम कभी-कभी जाने अनजाने में संस्कृत के व्याकरण की सहायता से अपनी भाषा में व्यवहृत शब्दों का परिनिष्ठित रूप निर्धारित करते हैं। अत: यह कह सकते हैं कि हिन्दी संस्कृत भाषा के शब्दों को अपनाने पर देश की राष्ट्रभाषा होने का गौरव पा सकती है। हिन्दी प्रदेशों के बाहर भी हिन्दी का प्रसार-प्रचार हो रहा है। द्विवेदी जी कहते हैं कि

''हिन्दी को जो राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है वह इसलिए कि देश के बहुसंख्य लोगों ने स्वेच्छा से उसे साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्रियाकलाप का माध्यम बनाया।''[6] अत: भारतीय जनता ने अपनी इच्छा से हिन्दी भाषा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। द्विवेदी जी कृत्रिम साहित्य करने वालों पर कहा है ''मैं उन लोगों को साहित्य का शत्रु मानता हूँ जो शब्दों का हिसाब भाषा को चाहते हैं।''[7]

द्विवेदी जी हिंदी को मनोवृत्ति प्रधान भाषा मानते हैं। उनके अनुसार इसी मनोवृत्ति के आधार पर सभी हिंदी भाषियों के अंतस में यह बात जमी हुई है कि हिंदी वह भाषा है जिसमें कबीर, तुलसी, मीरा आदि ने कविता लिखी थी। ''वे सब बोलियाँ, जिनका मुख केंद्राभिमुख है, अर्थात्जिनके बोलनेवालों की नाड़ियों में मूल केंद्रीय भाषा से संबद्ध बने रहने के संस्कार दृढ़निबद्ध हैं- हिंदी हैं। जो बोलियाँ केंद्राभिमुख न होकर अपने आप में ही केंद्रित हो जाती हैं, और तुलसी और सूर को अपना कवि नहीं मानना चाहतीं, वे टूटकर अलग हो जाती हैं। जिन बोलियों में आत्मकेंद्रित होने की प्रवृत्ति नहीं आई है वे सब केंद्राभिमुखी भाषा परिवार में बनी रहती है और हिन्दी कहलाती है।''[8]

द्विवेदी जी का ''भारतीय लोकतंत्र और संस्कृति: लोकतंत्र और लोकभाषा'' यह प्रसिद्ध निबंध है। भाषा से सम्बन्धित कुछ समस्या कठिन है। हमारे देश के संविधान में चौदह भाषाओं का समावेश है, वर्तमान में बाईस भाषा है। उसमें से संस्कृत भाषा एक है भाषा की समृद्धि नितांत आवश्यक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है- ''भाषा की समृद्धि उत्तम साहित्य से होती है। भाषा की समृद्धि से उसके बोलने वालों का जीवन स्तर ऊँचा उठता है, उनमें कार्य कारण परम्परा को सही समझने की शक्ति विकसित होती है और उनके चरित्र में नैतिक निष्ठा का विकास होता है। राष्ट्र के सामूहिक सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने का यह सर्वोत्तम उपाय है।''[9] द्विवेदी जी ने कहा कि, राष्ट्र के सामूहिक सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठाने का कार्य उत्तम साहित्य से होता है साहित्य से भाषा समृद्ध होती है। हिन्दी देश की समस्त भाषाओं को सांस्कृतिक धरोहर देने में सक्षम है और इससे देशी भाषाओं के विकास को भी दिशा मिलेगी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा के विकास को महत्वपूर्ण माना है और कहा है कि-''स्वराज तभी सार्थक होगा जब स्वभाषा की उन्नति होगी। जिस भाषा के माध्यम से साधारण जनता तक ज्ञान विज्ञान पहुँच सकता है उसकी उपेक्षा करना बहुत हानिप्रद है।''[10]

सन् 1958 ई. में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'अर्थार्षवाक' नाम से बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना के सप्तम् वार्षिकोत्सव समारोह के सभापति पद से व्याख्यान दिया, उसे भी इस निबंध में संकलित कर लिया गया है। द्विवेदी जी ने इसमें हिन्दी भाषा के भारतीयकरण करने पर जोर दिया है। इसमें अग्रेजी का समर्थन करने वालों पर द्विवेदी जी ने टिप्पणी की है और हिन्दी भाषा को कैसे समृद्ध किया जा सकता है इस पर विचार किया है। द्विवेदी जी ने इस निबंध में हिन्दी वर्तनी की चर्चा की है। विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्रश्नपत्रों में भी वर्तनी का द्वन्द्व देखा जाता है। कोई विभक्तियों को मिलाकर छापता है तो कोई अलग करके। कोई सर्वनाम में विभक्ति को मिलाता है, किन्तु संज्ञा शब्दों के साथ नहीं मिलाता। वर्तनी के विभिन्न रूप जैसे, लिखने में हुए, हुवे, हुये इस तरह के सभी रूप प्रश्नपत्रों में खोजे जा सकते हैं। तद्भव रूपों में प्रादेशिक उच्चारणों का महत्व मान्य है, जैसे अंगुली, उंगली, अंगुलि, अंगुरी। हिन्दी में एक शब्द मान्य होना चाहिए। 'श्रुति' के उच्चारित शब्दों के लिखावट में भी एकरूपता चाहिए। 'अनेक' यह शब्द खुद अपने आप में बहुवचन होकर भी' अनेकों' लिखते हैं। इस प्रकार की बहुत सी भ्रान्तियाँ हमारी साहित्यिक भाषा में प्रचलित हैं। अत: वर्तनी के नियम निश्चित करने चाहिए। द्विवेदी जी ने 'अर्थार्षवाक' में व्याकरण के नियमों पर भी विचार अनुकरणीय है। 'भाषा सर्वेक्षण' भाषा सर्वेक्षण सांस्कृतिक सर्वेक्षण की दृष्टि से किये जाने चाहिए, इस संबंध में द्विवेदी जी ने पर्याप्त मार्गदर्शन किया है।[11]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'भाषा सर्वेक्षण' निबंध में कहा है, कि भाषा सर्वेक्षण की बहुत अधिक आवश्यकता है। सर्वेक्षण सावधानी, वैज्ञानिक तटस्थ बुद्धि की आवश्यकता होती है। भाषा सर्वेक्षण में हमें उसकी बोली, उपबोलियों की निश्चित संख्या का बोध होता है। यूरोप में सन् 1878 में डा. काल्ट ने भाषा सर्वेक्षण का पहला प्रयास किया था! सन् 1886 में वियना में 'ओरियण्टल कांग्रेस' की बैठक हुई जिसमें डा. व्हूलर ने यह प्रस्ताव रखा कि भारत में भी भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण कराया जाये। भारतवर्ष में सन् 1894 में भाषा सर्वेक्षण के कदम

उठाये गये। और यह कार्य जार्ज ग्रियर्सन को सौंपा गया था उन्होंने सर्वेक्षण के आधार पर कहा भारतवर्ष में 169 भाषाएँ और 544 बोलियां हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते है ''आवश्यकता है यथाशक्ति, शुभ बुद्धि, निष्पक्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सच्चे ज्ञान के प्रति अटूट निष्ठा की। जिसके भीतर ये बातें होंगी वही इस कार्य को ठीक ठीक कर सकेगा।''[12] द्विवेदी जी कहते है इसलिए भाषा सर्वेक्षण करते समय भाषाविज्ञान के जानकर की नियुक्ति करना आवश्यक है।

द्विवेदी जी का कहना है कि भाषा सर्वेक्षण करते समय कई प्रकार की सावधानियों का ध्यान रखना पड़ता है। भाषा सर्वेक्षण के साथ साथ हमें हमारे संस्कृति का भी सर्वेक्षण करना आवश्यक है क्योंकि सांस्कृतिक सर्वेक्षण से बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलने की सम्भावना होती है। अतः भाषा सर्वेक्षण का यह एक वैज्ञानिक अध्ययन है। भाषा का अध्ययन भाषा विज्ञान के पांच तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है – ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य, और अर्थ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सहज भाषा का प्रश्न' निबंध में सहज भाषा के पक्ष पर जोर दिया है। ये निबंध भी द्विवेदी जी के भाषा चिंतन के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। द्विवेदी जी भाषा शास्त्रियों तथा व्याकरणाचार्यो द्वारा निर्धारित भाषा चिंतन के मानदंडों को नकारते हैं। वे टकसाली भाषा के पक्ष में कभी नहीं रहे। उनकी भाषा सहज भाषा रही है। वे सहज भाषा महत्व देते हैं। इस संबंध में द्विवेदी जी कहते हैं कि ''निःसंदेह मैं सहज भाषा का पक्षपाती हूँ। परन्तु भाषा मैं उसे समझता हूँ जो सहज ही मनुष्य को आहार-निद्रा आदि पशु – सामान्य धरातल से ऊँचा उठा सके। सहज भाषा का अर्थ सहज ही महान बना देने वाली भाषा। वह भाषा जो मनुष्य को उसकी सामाजिक दुर्गति, दरिद्रता, अंध-संस्कार, और परमुखापेक्षिता से न बचा सके किसी काम की नहीं है, भले ही उसमें प्रयुक्त शब्द बाजार में विचरने वाले अत्यंत निम्न स्तर के लोगों के मुख से संग्रह किये गये हो। अनायासलब्ध भाषा को मैं सहज भाषा नहीं कहता। तपस्या, त्याग और आत्मबलिदान के द्वारा सीखी हुई भाषा सहज भाषा है। बाजार की भाषा को, मोटे प्रयोजनों की भाषा को मैं छोटी नहीं कहता, परन्तु मनुष्य को उन्नत बनाने के लिए जो भाषा प्रयोग की जायेगी वह भिन्न होगी। जो लोग सहज भाषा लिखना चाहते हैं, उन्हें स्वयं सहज बनना पड़ेगा। तपस्या और त्याग से मनुष्य सहज होता है और उसी हालत में वह सहज भाषा का प्रयोग कर सकता है।''[13] अर्थात् द्विवेदी जी की भाषा 'सहज भाषा' है वे किसी भी विशेष प्रकार की भाषा के वशीभूत नहीं है किन्तु भाषा उनके इशारे पर अपने आप बदलती जाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते है कि-''भाषा सहज होनी चाहिए, साहित्य सहज होना चाहिए, पर सबके मूल में और सबसे बड़ी बात यह है कि भाषा और साहित्य के साधक को सहज होना चाहिए। सहज हुए बिना परम प्राप्तव्य प्राप्त नहीं हो सकता।''[14] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी सहज भाषा के पक्षधर थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'नई समस्याएँ' शीर्षक निबंध में संस्कृत और हिंदी भाषा के परस्पर संबंधों के सांस्कृतिक एवं जातीय आधार को विशेषतः रेखांकित किया गया है। साथ ही हिंदी और उसकी जनपदीय बोलियों के संबंध तथा हिंदी और उर्दू के संबंध के विविध पहलुओं की भी पड़ताल की गई है। द्विवेदी जी भाषा की जोड़ने के साथ-साथ तोड़ने की ताकत से भी भलीभाँति परिचित थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का 'हिन्दी का वर्तमान और भविष्य' निबंध में भाषा तथा साहित्य की वर्तमान और भविष्य में क्या स्थिति रहेगी इस पर विस्तार से विचार किया है। द्विवेदी जी का यह निबंध भारतीय हिन्दी परिषद के नागपुर अधिवेशन के सभापति पद से दिया गया भाषण है। द्विवेदी जी ने इस निबंध के द्वारा हिन्दी भाषा के वर्तमान और भविष्य पर विस्तार से चर्चा करते हैं और उनसे संबंधित समस्याओं की ओर द्विवेदी आगाह करते हैं कि जल्द ही हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो आगे हिन्दी का वर्तमान और भविष्य कैसा होगा यह अनुमान लगाना मुश्किल है।

द्विवेदी जी ने हिन्दी के वर्तमान और भविष्य स्थिति के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है

1. हिन्दीतर प्रान्तों के अपने शिक्षार्थी छात्र हमारे विश्वविद्यालयों में हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए आ रहे हैं।

2. हिन्दी आन्दोलनों का स्वरूप पहले की तरह नहीं है अब बहुत कुछ बदल चुका है, हिन्दी उर्दू का जो संघर्ष चल रहा था वह भी आज बहुत हद तक कम हो गया है।

द्विवेदी जी कहते हैं कि हिन्दी का साहित्य भी पूर्ण रूप से समृद्ध होना चाहिए। इसके लिए इसके लिए बहुत सी कला, विज्ञान, दर्शन, समाज, विज्ञान आदि पुस्तकों का निर्माण और अनुवाद की योजना बनानी चाहिए। भाषा सहज होनी चाहिए। अत: हिन्दी अंग्रेजी कोश भी तैयार होने चाहिए।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के निबंध उनके ज्ञान के भण्डार है, जिनमें संस्कृति और भाषा आदि की गहन चिंतन धारा बहती है। इनके निबंधों में भारतीय भाषाओं का गहन चिंतन दिखाई देता है। द्विवेदी जी के निबंधों की भाषा बहुत सहज है उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही सहज है। अत: यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी के भाषा से संबंधित निबंधों में संस्कृत भाषा को प्रेरणादायी भाषा मानते हुए हिन्दी भाषा को विश्व की शक्तिशाली भाषा बनाने का लक्ष्य है।

पीएच.डी. (हिंदी)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail – sudeshdu95@gmail.com

संदर्भ सूची

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-10, संपादक बाल मुकुंद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या-101
2. वही, पृष्ठ संख्या-384
3. वही, पृष्ठ संख्या-214
4. वही, पृष्ठ संख्या-228
5. निबंधों की दुनिया : हजारी प्रसाद द्विवेदी, निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या-180
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग-10, पृष्ठ संख्या-218
7. वही, पृष्ठ संख्या-221
8. निबंधों की दुनिया : हजारी प्रसाद द्विवेदी, संपादक निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या-193
9. आलोक पर्व, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्र. लि., पुनर्मुद्रित-1994, पृष्ठ संख्या-135
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग 10, पृष्ठ संख्या-228
11. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समग्र साहित्य : एक अनुशीलन, यदुनाथ चौवे, पृष्ठ संख्या-154
12. आलोक पर्व, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या-186
13. निबंधों की दुनिया : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या-172
14. वही, पृष्ठ संख्या-179

शोध-पत्र

सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र

अंशु कुमारी

सौंदर्यशास्त्र कला की प्रकृति, बनावट में सम्मिलित तत्वों विशिष्ट पक्षों का अध्ययन है। सभी कलाएँ अपनी संरचनात्मक विशिष्टता द्वारा नवजीवन के सृजन का भ्रम रचती है। कलाओं का भिन्न संरचनात्मक स्वभाव ही विभिन्न प्रकार से मानव इन्द्रियानुभूति से संबद्ध होकर इस भ्रम का रचाव करती है तथा मानव को सौंदर्यानुभूति की ओर प्रेरित करती हुई भिन्न प्रकार से सौंदर्यशास्त्र का निर्माण करती है। अत: विभिन्न कलाओं का भिन्न-भिन्न सौंदर्यशास्त्र है। हम यह कह सकते हैं कि ''कला का सौंदर्य मानव सौंदर्य है।''[1]

विभिन्न कलाओं के सौंदर्यशास्त्रीय उपादान द्वारा मानव जीवन के पुन: सृजन के भ्रम का रचाव होता है। प्रत्येक भ्रम में ऐसा जादू होता है, जिससे हम अपनी वर्तमान जीवनगत मन: स्थिति या परिवेश को भूलकर उस कला द्वारा रचित भ्रम में खो जाते हैं। हमें लगने लगता है कि कला में सृजित जीवन सत्य है, कला द्वारा निर्मित आकाश हमारे वर्तमान जीवन आकाश के समान्तर चलकर कुछ क्षणों के लिए अपने आकाश में समाहित कर लेता है तथा जब यह भ्रम खंडित होता है तो पुन: हम अपनी वास्तविक जीवन में आ जाते हैं। यह क्षणिक अनुभूति की गहनता ही महानकला कृति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। कई बार हम इन प्रश्नों से भी गुजरते हैं कि आखिर वे कौन-से कारण रहे, जिनसे कला द्वारा क्षणिक भ्रम का रचाव हो सका? इस प्रश्न से गुजरते हुए हम कलागत उपादानों की थाह से लेकर कलाकार की दृष्टि तक को समझने-जानने की कोशिश भी किया करते हैं। इन्हीं कुछ अध्ययन की दृष्टियों के साथ सौंदर्यशास्त्र कलाओं को समझने की चेष्टा करता है लेकिन यह बात ध्यान देने वाली है कि इन दृष्टियों का आधार दार्शनिक यानि अनुभूतिमूलक है।

साहित्य में, शब्दों के माध्यम से इस भ्रम का रचाव साहित्यकार करता है। किसी भी लिखित साहित्य में शब्द वे प्राथमिक माध्यम हैं, जिनसे मानव दृश्य-इंद्रिय का संपर्क होता है। आँखें, शब्दों को ग्रहण करती है, मस्तिष्क उन शब्दों को ग्रहण कर बिंबों की श्रृंखला कल्पना के माध्यम से बनाती है। इस प्रक्रिया से हमारे मन में हमारे वास्तविक जीवन के समानान्तर काल्पनिक एक ऐसी दुनिया खड़ी हो जाती है, जिसका आधार बाह्य शब्द होते हैं। जैसे-जैसे हम रचना को पढ़ते हुए आगे बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे काल्पनिक दुनिया के प्रति हमारा बौद्धिक हस्तक्षेप बढ़ता जाता है। हम काल्पनिक पात्रों को अपने मन की आँखों के आगे देखने लगते हैं तथा कई बार उनके कृत्यों के प्रति नैतिक-अनैतिक आरोपों का प्रत्यारोपण भी करने लगते हैं। इस तरह साहित्य, शब्दों के माध्यम से मानव-मन का परिष्कार करते हुए भाषागत कला का रचाव करने में सक्षम है।

संगीत में यह रचाव अमूर्त और थोड़ा कठिन होता है। संगीत में इस भ्रम का रचाव स्वरों (षड्ज, ऋषभ, गंधार, पंचम, धैवत, निषाद) के आरोह-अवरोह द्वारा होता है। विभिन्न निर्धारित समयों में गाये जाने वाले राग विभिन्न तरह की अनुभूतियों को जगाने में सक्षम होते हैं। संगीत में स्वरों का सौंदर्यशास्त्रीय विन्यास विभिन्न रागों के निर्माण का आधार है। इन सौंदर्यशास्त्रीय नियमों ने संगीत में व्याकरण का रचाव किया। चित्रकला, नृत्यकला, स्थापत्य-कला आदि कलाएं इसी तरह अपने-अपने उपादानों द्वारा

विभिन्न सौंदर्यशास्त्रीय व्याकरण का रचाव करती आई है। अब तक इन प्राचीन कलाओं में कलाकार तथा कला के उपादानों के बीच का संबंध अविभाजित एवं अमूर्त था, इन दोनों को एकदम से श्रेष्ठ कलाओं में विभाजित नहीं किया जा सकता था। अबतक कोई भी सृजित कला, कलाकार के हस्तक्षेप (प्रतिभा, व्युत्पति, अभ्यास) तथा कलात्मक उपादान दोनों के बीच संपन्न संघर्ष का परिणाम थी। यह संघर्ष उस अज्ञात के प्रति था, जिससे बिल्कुल नयी कलात्मक कृति विकसित हो सके। जिसे रॉबर्ट स्पॉटीबुड ने दूसरे ढंग से व्याख्यायित करते हुए कहा है कि "An artist does more than what he knows"[2]

सभ्यता के बदलते सामयिक बहाव ने कलाकार और कला के उपादानों के बीच अविभाजित एवं अमूर्त संबंध को विभाजित एवं मूर्त करने का अवसर तकनीक और प्रौद्योगिकी द्वारा दे दिया। सिनेमा, तकनीक और प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप से विकसित आधुनिक कला का ऐसा ही स्वरूप है। प्रथम बार कैमरा की कला द्वारा सृजित कलात्मकता ने मानव हस्तक्षेप से अलग अस्तित्व की मांग की। अब तक सीधे-सीधे मानव अपनी कल्पना द्वारा विभिन्न कलाओं के उपादानों द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति कर सकता था, लेकिन पहली बार कैमरा रूपी तकनीक ने मानव हस्तक्षेप का सहारा कमतर रखने की आवश्यकता तकनीक द्वारा प्रकट की। कैमरा रूपी तकनीक स्वयं अपनी भाषा में सौंदर्यशास्त्रीय व्याकरण को रचने के लिए सक्षम था। अब तक सीधे-सीधे मानव अपनी कल्पना द्वारा विभिन्न कलाओं के उपादानों द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति करते आ रहा था लेकिन पहली बार कैमरा रूपी तकनीक मानव का सहारा निम्नतर करते हुए अपना सौंदर्यशास्त्रीय व्याकरण स्वयं गढ़ सकती थी अब तकनीक यानि विज्ञान और कला दोनों प्रत्यक्षत: साथ-साथ थे। यहाँ आकर कला के स्वभाव में अचानक किन्तु महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। यानि तकनीक में यह सामर्थ्य उत्पन्न हो चला था कि वह मानव मनोविज्ञान को अपने अनुरूप ढाल सके। कला के इतिहास में प्रथम बार विज्ञान और कला के सम्मिश्रण ने प्रत्यक्षत: प्रकाश की सहायता से कैमरा रूपी यंत्र का आविष्कार किया। कैमरा की तकनीकी आविष्कार ने पहली बार मानव जीवन की गत्यात्मक छवियों द्वार निर्मित भ्रम को गत्यात्मक समय से काटकर क्षण विशेष को अपनी छायाप्रति में संजोया। इससे पहले चित्रकला में ऐसा किया गया लेकिन उसमें मानव और कलात्मक उपादान के बीच का संबंध अमूर्त था। आधुनिक समय में कैमरे के आविष्कार ने इस अमूर्त संबंध को बिल्कुल नये ढंग से परिभाषित किया। इस समय के कला के स्वभाव में दो मुख्य विभाजन देखने को मिलता है। पहला, या तो मनुष्य अपनी दृष्टि का आरोप तकनीक पर करे यानि मानव जो देखना चाहता है, वही कैमरा द्वारा देखा जाए। दूसरा, मानव अपना हस्तक्षेप निम्नतम करके कैमरा क्या देखना चाहता है को महत्व दें यानि कैमरा सिर्फ रिकॉर्ड करे, का मुख स्थान हो। यानि कैमरा द्वारा निर्मित स्पेश एक भिन्न सौंदर्यशास्त्रीय तकनीकगत विधान का सृजन करे। पहले प्रकार के दृष्टिकोण का आरोप हिन्दी सिनेमा में मिलता है और दूसरा प्रकार मणि कौल के सिनेमा में मुखरित होता है, जिन्हें आगे के अध्यायों में जानेंगे तथा इन्हीं आधारों को ध्यान में रखकर हम सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र का विश्लेषण एवं संश्लेषण करने की चेष्टा करेंगे। लेकिन इससे पहले यह आवश्यक है कि हम सिनेमा की मूलभूत उपादानों को जान लें, जिससे सिनेमा के सौंदर्यशास्त्रीय रचाव को समझ सकें।

'सिनेमा' शब्द की उत्पत्ति 'सिनेमेटोग्राफ' शब्द से हुई है। 'सिनेमेटोग्राफ' शब्द ग्रीक भाषा के शब्द 'KINEMA' (किनेमा) तथा 'GRAPHEIN' (ग्राम) के सम्मिश्रण से बना है।[3] 'किनेमा' का अर्थ है- 'MOVEMENT' यानि गति तथा 'GRAPHIN' का अर्थ है- 'TO WRITE' अर्थात् गति की ऐसी कला जिसमें छायाप्रतियों का सहयोग हो। इसे गहराई से समझने की कोशिश करें तो हम यह कह सकते हैं कि कैमरा द्वारा विकसित एक ऐसा यंत्र जिसमें गत्यात्मक छायाप्रतियों को एक निश्चित अनुपात में तीव्रता के साथ गुजरते हुए कथात्मक भ्रम का निर्माण किया जा सके। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि विज्ञान और कला के योग से निर्मित आधुनिक कैमरा रूप यंत्र की सहायता से गत्यात्मक छायाप्रतियों की श्रृंखला को एक निश्चित अनुपात में तीव्रता के साथ गुजारते हुए कथात्मक भ्रम का निर्माण किया जा सकता है। सिनेमा में इस भ्रम का रचाव मानव इन्द्रियानुभूति तथा सिनेमा की संरचनात्मक स्वभाव दोनों के सहकालिक सहभाव से निर्मित आकाश द्वारा होता है। इस आकाश की निर्मिति में लगने वाला समय तथा कथावस्तु की श्रृंखला द्वारा निर्मित आकाश दोनों दो अलग तत्त्व है, जिसे अमूमन एक मानते हुए लोग रैखिक क्रम में विभाज्य मान लेते हैं। इस भ्रम ने

मानव-मनोविज्ञान पर काफी प्रभाव डाला। इसका सबूत आज के वर्तमान समय में सिनेमा की व्याप्ति को देखकर हमें मिल जाता है ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जहां फ़िल्मों की पहुँच न हो। सिनेमा ने आज के मानव-मनोविज्ञान को काफी प्रभावित किया है। अत: सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र को समझना अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। चूंकि सौंदर्यशास्त्र के स्वरूप के अंतर्गत हम देख आए हैं कि सौंदर्यशास्त्र किस प्रकार मानव के ज्ञानात्मक, संवेदनात्मक, इन्द्रियानुभूति का विधिवत वैज्ञानिक अध्ययन करता है तथा किस तरह यह ज्ञानात्मक, संवेदनात्मक इन्द्रियानुभूति ही सौंदर्याभिव्यक्ति के क्रम में कलाओं के सृजन का आधार बनती है, मानव सृजनकर्त्ता के रूप में कला रूपी भ्रम के निर्माण के क्रम में जिन-जिन मन:स्थितियों से गुजरता है। उनका अध्ययन भी 'सौंदर्यशास्त्र' के दायरे में आता है।

इस शोध का उद्देश्य मणि कौल के सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र को समझना है, किंतु इसके पूर्व सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र को समझना आवश्यक है और सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र को समझने के लिए यह जरूरी है कि सिनेमा के मूलभूत तत्त्वों को समझ लें। जो निम्न प्रकार से है:-

सिनेमाई तत्व

1. कैमरा - जिस तरह साहित्य शब्दों के माध्यम से मानवीय इन्द्रियानुभूति, ज्ञानात्मक संवेदनाओं को जगाने में सक्षम है तथा साहित्यकार शब्दों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करता है तथा पाठक इन अनुभूतियों को साधारणीकरण के द्वारा ग्रहण करता है। उसी तरह सिनेमा, कैमरा की भाषा में मानवीय जीवन के चाक्षुष भ्रम का निर्माण करती हुई मानवीय इन्द्रियानुभूति को जगाने की कला है फ़िल्म निर्देशक कैमरे के द्वारा निर्मित दृष्टि भ्रम का सृजन करता है। हम यह कह सकते हैं कि सिनेमा कैमरे की भाषा मे रचा गया भ्रम है।

2. ध्वनि (Sound) : फ़िल्म में ध्वनि एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जिस तरह नाटक मंचन में संवाद व विभिन्न ध्वनि इकाइयाँ नाटक के प्रभाव को बढ़ा देती हैं, उसी प्रकार सिनेमा में ध्वनि भी एक ऐसा आधारभूत तत्व है जो सिनेमा के प्रभाव को बढ़ा देता है। प्राय: फ़िल्म में जितने भी तरह के साउण्ड ट्रैक इस्तेमाल किये जाते हैं, उसे चुनने का काम फ़िल्म का संगीतकार करता है। मुख्यत: तीन तरह के साउण्ड होते हैं:-

(क) फ़िल्म में दिखाग्र जाने वाली कहानी के वातावरण को प्रभावपूर्ण बनाने वाली ध्वनियाँ, जिससे फ़िल्म की कथा दर्शक पर ज़्यादा प्रभाव डाल सके।

(ख) फ़िल्म में कुछ ध्वनियाँ वैसी होती हैं जो कथात्मक प्रभाव से अलग हट कर फ़िल्म को प्रभावोत्पादक बनाती हैं।

(ग) कई बार फ़िल्मों में दो भिन्न तरह की ध्वनियों को मिश्रित कर ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है, जिससे किसी पात्र द्वारा व्यक्त चरित्रगत आंतरिक पक्षों को उभार मिलें। सिनेमा या नाटक में कई परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनका उभार संवादों द्वारा किया जाना मुश्किल होता है। अत: ऐसी परिस्थितियों के कथ्य को इस तरह की ध्वनियों द्वारा व्यक्त किया जाता है।

3. प्रकाश व्यवस्था (Lighting) : जिस प्रकार मानव आँखें प्रकाश के परावर्तन के नियमानुसार देख पाती हैं वैसे ही कैमरा में छायाचित्रों का निर्माण प्रकाश के परावर्तन के कारण ही हो पाता है। अत: सिनेमा में प्रकाश का बड़ा महत्त्व है। फ़िल्म में प्रकाश का महत्त्व मुख्यत: तीन कारणों से है :-

(अ) प्रकाश, फ़िल्म जिस मूड (Mood) या मनोदशा की है, को व्यक्त करने में सक्षम होती है।

(ब) फ़िल्मों में दृश्यों के चुनाव व व्यवस्था में भी प्रकाश की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(स) प्रकाश के कारण ही हम अभिनेता-अभिनेत्री के अभिनय को देखकर फ़िल्म को अनुभूत कर सकते हैं।

फ़िल्म का सौंदर्यशास्त्र दृश्य कला रूप का एक उदाहरण है। दृश्य कलाएँ हमारी ज्ञानेंद्रियों को भी प्रभावित करती हैं, जिससे अनुभूति का स्तर अन्य कला रूपों से भिन्न होता है। ये ज्ञानेंद्रियाँ विशेषकर हमारी आँखें फ़िल्मों के प्रकाश नियोजन से काफ़ी प्रभावित होती हैं।

फ़िल्म में नियोजित प्रकाश व्यवस्था के प्रकार

- निम्न प्रकाश व्यवस्था (Low-Key-Light) - इस प्रकाश व्यवथा का उपयोग फ़िल्म निर्देशक शार्ट् में मुख्य सबजेक्ट को महत्त्वपूर्ण दिखाने के लिए करता है ताकि दर्शक अमूक शॉट् में जो सबजेक्ट है उससे तल्लीना स्थापित कर लें यहाँ निर्देशक एक कलाकार के रूप में अपनी फ़िल्म विधागत निपुणता एवं रचनात्मकता का परिचय देता है। प्रकाश और छाया को परस्पर एक साथ दिखाते हुए विभिन्न चरित्रों की छायाप्रतियों द्वारा शॉट् संयोजन निम्न प्रकाश व्यवस्था

के अंतर्गत की जाती है-

निम्न प्रकाश व्यवस्था का एक उदाहरण मणि कौल कृत 'आषाढ़ का एक दिन' फ़िल्म से

- **उच्च प्रकाश व्यवस्था (High- Key- Light) :** इस प्रकाश व्यवस्था का उपयोग फ़िल्म निर्देशक सजीव, स्पष्टोक्तिपूर्ण दृश्य प्रदर्शन के लिए किया जाता है। जैसे-

उच्च प्रकाश व्यवस्था का एक उदाहरण मणि कौल कृत 'दुविधा' फ़िल्म

जब प्रकाश, अभिनेता के किसी विशेष ऐंगल से शरीर के किसी एक हिस्से पर पड़े तो उसे साइड लाईट व्यवस्था कहलाती है। जैसे-

साईड लाईट प्रकाश व्यवस्था का एक उदाहरण मणि कौल कृत 'आषाढ़ का एक दिन' फ़िल्म से

- फ्रंट प्रकाश व्यवस्था : ऐसी प्रकाश व्यवस्था जो अभिनेता के सामने से की जाए ताकि अभिनेता के भाव कांतिमय ढंग से दिखाया जा सके। जैसे-

फ्रंट प्रकाश व्यवस्था का एक उदाहरण मणि कौल कृत 'नज़र' फ़िल्म से

प्रकाश और रंगों का गहरा संबंध है। प्रकाश की सहायता से रंगों को उभारा जा सकता है।

4. **सेट (SET)** - सेट उस स्थान को कहते हैं जहाँ फ़िल्म की शूटिंग के लिए कृत्रिम दृश्यों का निर्माण किया जाता है। सेट कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकते हैं जो मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं :

   * इनडोर शूटिंग - फ़िल्मांकन का वह हिस्सा जिसे घर के भीतर हिस्से में फ़िल्मांकित किया जाए।

   * आउटडोर शूटिंग - फ़िल्मांकन का वह हिस्सा जिसकी शूटिंग बाहर किसी भी स्थान पर किया जा सकता है।

5. **फ़िल्मांकन सामग्री (PROPS) :** अभिनेता/अभिनेत्री द्वारा या संपूर्ण फ़िल्म निर्माण में इस्तेमाल में लायी जाने वाली सामग्री को फ़िल्म की भाषा में 'प्रॉप्स्' कहते हैं। जिस तरह से इन प्रॉप को अभिनेता उपयोग में लाता है, उससे अभिनेता के चरित्रगत विशेषताओं में निखार आती है।

6. **पोशाक :** पात्र द्वारा फ़िल्म की थीम को ध्यान में रखकर परिधान/मुख-सज्जा/केश सज्जा आदि का उपयोग पोशाक के अन्तर्गत होता है। पोशाक चरित्र और फ़िल्म की थीम के अनुसार होनी चाहिए।

7. **अभिनय :** अभिनय ही फ़िल्म को सही दिशा प्रदान करता है। अत: फ़िल्म निर्देशक अपना सही चुनाव अभिनेता के रूप में करता है। अभिनेता की शारीरिक

बनावट, मुखाभिव्यक्ति, आवाज, प्रतिक्रिया, भावाभिव्यक्ति द्वारा फ़िल्म के थीम को मजबूती मिलती है।

8. सिनेमा निर्माण के लिए आवश्यक मुख्य दल

* **प्रोडक्शन डिज़ाइनर :** संपूर्ण फ़िल्म निर्माण के प्रारूप का निर्धारण प्रोडक्शन डिज़ाइनर ही करता है। प्रोडक्शन डिज़ाइनर फ़िल्म निर्माण में लगने वाले लागत का अनुमान लगाता है। फ़िल्म से संबंधित विभिन्न छोटे-बड़े तंतुओं को स्थापित एवं समन्वित करता है। जैसे :- फ़िल्म-सेट का निर्माण कैसे होना है? वस्त्रसज्जा, मेकअप आदि की व्यवस्था कैसे करनी है? फ़िल्म में उपयोग की जाने वाली फ़िल्मांकित सामग्री कैसे नियोजित एवं सुरक्षित रखनी है? इसी तरह निर्माण को संयोजित रखने जैसी महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान प्रोडक्शन डिज़ाइनर करता है।

* **स्टोरीबोर्ड कलाकार :** स्टोरीबोर्ड कलाकार का काम फ़िल्म के लिए हस्तनिर्मित चित्रों की वैसी श्रृंखला का निर्माण करना है, जिसके आधार पर यह योजना की जा सके कि प्रत्येक शॉट की श्रृंखला कैसी दिखनी चाहिए।

* **फोटोग्राफी इकाइयाँ (Photography Units) :** छायांकन इकाइयां यह निर्धारित करती है कि कैमरा की गति कैसी होगी? कहाँ कैमरा केन्द्रित करना है? शॉर्ट का फ्रेम क्या रखना है? ज्यादा-से-ज्यादा अच्छा चित्रांकन दृश्य में हो सके इसके लिए प्रकाश का कैसा संयोजन होना चाहिए? यह सब देखने का कार्य फोटोग्राफी इकाई का होता है।

* **ध्वनि इकाइयाँ :** इस इकाई का काम शूटिंग के समय सेट पर संवाद रिकॉर्डिंग तथा ध्वनि-प्रभाव को देखना होता है तथा साथ-ही-साथ फ़िल्म संपादन के समय ध्वनि नियोजन का होता है।

* **संपादक :** सिनेमा के क्षेत्र में संपादक के लिए अंग्रेज़ी भाषा का शब्द 'एडिटर' प्रचलित है। एडिटर का काम निर्देशक की रुचि को ध्यान में रखते हुए शॉट को जोड़कर दृश्य निर्माण करना है।

सिनेमाई तकनीक

(क) शॉट : जिस प्रकार शब्द, वाक्य और भाषा की सार्थक सबसे लघुतम इकाई है, उसी प्रकार सिनेमा में शॉट सबसे लघुतम इकाई है। एक बार कैमरा जितना घूमकर रिकॉर्ड कर सकता है, शॉट कहलाता है। कई शॉट मिलकर एक सीन का निर्माण करती है तथा कई सीन जुड़कर संपूर्ण फ़िल्म का निर्माण करती है। शॉट को संगठित करने से सीन की घटनाओं का विवरण मिल जाता है। शॉट की संरचना में मुख्य भूमिका निर्देशक व छायाकार की होती है जो कैमरा स्थिति, कैमरे की गति, लेंस एवं कैमरे का घुमाव पात्रों की भूमिका तथा अभिनय आदि निश्चित करते हैं।[4]

(ख) फ्रेम : फ़िल्म में निर्देशक यह निर्धारित करता है कि शॉट को किस तरह, कहाँ से फ़िल्माना है, उस निर्धारित फ्रेम में क्या, किस तरह आना चाहिए और क्या नहीं आना चाहिए, शॉट किस विषयवस्तु पर केन्द्रित करना है, फ्रेमिंग कहलाता है। उदाहरण के लिए एक चित्रकार अपनी पेंटिंग कैनवास में क्या पेंट करना चाहता है, यह चित्रकार की दृष्टि पर निर्भर करता है, उसी प्रकार एक फ़िल्म निर्देशक प्रत्येक शॉट को किस तरह सजाना चाहता है, यह उसकी शॉट फ्रेमिंग की दृष्टि पर निर्भर करता है। कैमरा फ्रेमिंग के निम्नलिखित मुख्य तरीके प्रचलित है:-

* **क्लोजअप :** मिड-क्लोजप और एक्सट्रीम क्लोजप के बीच क्लोज-अप शॉट आता है, जो सर्वाधिक भावात्मक विषय केन्द्रित शॉट माना जाता है। इसमें अमूमन अभिनेता का सिर तथा गले तक का भाग दिखाया जाता है, जो मुखाभिव्यक्ति तथा भाव प्रदर्शन के लिए श्रेष्ठ माना जाता है।

'सतह से उठता आदमी' फ़िल्म का एक शॉट

* **मीडियम शॉट :** यह कैमरा फ्रेमिंग लांग और क्लोजप-शॉट के बीच की अवस्था होती है। जिसमें हम अभिनेता के शरीर के कमर से ऊपरी भाग को देख सकते हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' फ़िल्म का एक शॉट

*** लाँग शॉर्ट :** विषय को कुछ दूर से दिखाने को लांग-शॉर्ट् कहते हैं। लांग शॉर्ट् में अभिनेता का संपूर्ण शरीर दिखया जाता है ताकि शारीरिक हावभाव दिखया जा सके।

'आषाढ़ का एक दिन' फ़िल्म से लाँग शॉर्ट का एक दृश्य

(ग) कट (CUT) : जब फ़िल्म एक चित्र से बदलकर दूसरे चित्र पर ठहरता है, तो इस समय अत्यंत सूक्ष्म अंतराल का निर्माण होता है, इसे ही कट कहते हैं।

(घ) कैमरा कोण : शॉर्ट् लेते वक्त कैमरा किस कोण पर रखें ताकि विषयवस्तु अधिक से अधिक स्पष्टता के साथ अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके। यह कैमरा कोण भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

(ङ) कैमरा गति : शूटिंग के दौरान कैमरा जिस गति से शॉर्ट् को शूट करता है, उसे कैमरा की गति कहते हैं। कैमरा-गति निम्न प्रकार के होते हैं-

*** पैन शॉट :** जब कैमरा शॉट लेने के दौरान दाएँ से बाएँ क्षैतिज गति से चलाया जाता है तो इस शॉट को पैन शॉट कहते हैं।

*** टिल्ट शॉट :** जब कैमरा एक स्थान पर स्थिर रखकर ऊपर से नीचे की ओर गति करवाया जाता है तो उसे टिल्स अप या टिल्स डाउन शॉट कहते हैं।

*** जूम शॉट :** जब कैमरा एक निश्चित स्थान से सीधे रैखिक क्रम में अभिनेता की ओर या विषय वस्तु की ओर धीरे-धीरे बढ़ता है, तो उसे जूम शॉट कहते हैं।

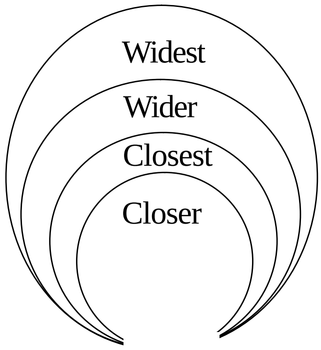

(च) संपादन : फ़िल्म संपादक निर्देशक की दृष्टि अनुसार फ़िल्म को शॉट दर शॉट संपादित करता है। (कुलदीप सिन्हा की किताब से, पृ०सं०-41)

(छ) मीज़ान्सेन (Mise-en-Scene) : सिनेमा में दृश्य-रचना की तकनीक जिसके अंतर्गत शॉट की संरचना में आवश्यक विभिन्न सिनेमाई तत्त्वों को संयोजित रूप सम्मिलित किया जाता है। मीज़ान्सेन कहा जाता है। कैमरा के सामने प्रयुक्त सभी सिनेमाई तत्त्व जिससे एक संपूर्ण शॉट का निर्माण हो सके। जैसे:- प्रकाश कैसा हो? फ़िल्म रंगीन या सफेद बननी है, पात्र दृश्य में कहाँ रहेगा? कैमरा कहाँ रहेगा? किस कोण से शॉट को फ़िल्मांकित किया जाना है? दृश्य-सज्जा कैसी होगी? अभिनेता का अभिनय कैसा होगा? अभिनेता की श्रृंगार व्यवस्था, वस्त्र सज्जा कैसा रहेगा? इत्यादि का ध्यान रखकर विभिन्न शॉट का निर्माण करना, मीजान्सेन कहलाता है।

इन सिनेमाई तत्त्वों द्वारा सिनेमा का निर्माण किया जाता है। इन तत्त्वों का संयोजन क्या हो और किस प्रकार हो? यह किसी भी निर्देशक की प्रकृति पर निर्भर करता है। किसी भी निर्देशक के लिए सिनेमा निर्माण में इन तत्त्वों की क्या भूमिका हो सकती है? इन सिनेमाई तत्त्वों द्वारा कोई भी फ़िल्मकार किन तथ्यों, किन विषयों को अपने फ़िल्म में प्रदर्शित कर रहा है। निर्देशक द्वारा फ़िल्म में दिखाई जाने वाली विषयवस्तु को किस ढंग से दिखाया गया है? निर्देशक ने अपनी कला द्वारा सिनेमाई तत्त्वों का किस नये ढंग से समायोजन किया है? फ़िल्मकार की स्वयं की दृष्टि सिनेमा के संदर्भ में क्या है आदि बातों को सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र में समझने का प्रयास किया जाता है।

निष्कर्षत: सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र व्यापक अवधारणा है जो काफी हद तक सिनेमा के तकनीक तत्त्वों पर आधारित है। एक निर्देशक उन तत्त्वों को अपनी कल्पना द्वारा कैसे नवीन चेतना प्रदान करता है। इनके विभिन्न पक्षों का अध्ययन सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र की परिधि में आती है। आगे के अध्याय में हिंदी सिनेमा के संक्षिप्त इतिहास को समझने की कोशिश करेंगे ताकि भारतीय सिनेमा के सौंदर्यशास्त्र का गठन किस तरह हुआ है तथा मणि का सिनेमा इन संदर्भों में किस प्रकार भिन्नता रखता है।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची
Email : anshukumaribhu321@gmail.com

संदर्भ सूची

1. वर्मा निर्मल, 'कला का जोखिम', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-11002, संस्करण-1, 2018, पृ॰सं॰-55
2. Kaul Mani 'An Interview in Indian Super Bazar, January, 1982
3. Cinematography, Wikipedia, https://en.m.wikipedia. org/wiki/cinematography
4. सिन्हा कुलदीप, 'फिल्म निर्देशन', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-110051, संस्करण-4, पृ॰सं॰-115

रघुनाथ मंदिर अभिलेख, बांकुड़ा जिला, पश्चिम बंगाल

प्रीतम कुमार*　　अजीत कुमार सिंह**

शोध-सारांश :

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में कैथी लिपि का एक महत्वपूर्ण अभिलेख, जो रघुनाथ मंदिर के बाहरी दीवार पर उत्कीर्णित है, लिप्यांतर व उसके महत्व को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। उक्त मंदिर अभिलेख की अवस्थिति बांकुड़ा जिला, पश्चिम बंगाल होने से कैथी लिपि का भौगोलिक विस्तार व इसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। इस अभिलेख में अंतर्निहित तिथ्यांकन पद्धति, अभिलेख जारी करने का उद्देश्य, प्रयुक्त भाषा, व्यक्तिक नाम, शासकीय नाम आदि बिंदुओं को भी समायोजित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द :

कैथी लिपि, रघुनाथ मंदिर, अभिलेख, बांकुड़ा, पश्चिम बंगाल, तिथि, नाम आदि।

भूमिका :

कैथी लिपि उत्तरी-पूर्वी भारत में प्रचलित एक महत्वपूर्ण लिपि है। जिसका इतिहास सहस्त्रावधि वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। कैथी लिपि मुख्यत: पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, झारखंड आदि क्षेत्रों में मध्यकाल से लेकर 20वीं सदी तक निरंतर प्रयोग में लाई जाती रही है।[1] इन प्रदेशों की क्षेत्रीय भाषाओं व विविध स्थानीय बोलियों से संबंधित कथा, लोकगीत, पत्र लेखन, डायरी लेखन, भूमि रिकॉर्ड आदि लिखने हेतु कैथी लिपि का प्रयोग किया जाता था। सामान्य पढ़े-लिखे लोग व विशेषकर महिलाओं अपने दैनांदिकी लेखन कार्य में कैथी लिपि का प्रयोग मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका, अवधी, भोजपुरी, उर्दू, बांग्ला, हिन्दी आदि भाषाओं के लिए करते थे। इस लिपि को कैथी या कायथी या कायस्थी लिपि के रूप में भी जाना जाता है।[2] जो संस्कृत के कायस्थ शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के संदर्भ में देखा जाये तो कायस्थ समाज में एक व्यवसायिक या पेशेवर उत्कीर्णक समुदाय के रूप में प्रतिष्ठित था।[3] इसी वर्ग से कैथी लिपि की संबद्धता स्थापित की जाती है।

कैथी लिपि की प्राचीनता :

कैथी लिपि की सहस्त्रावधि वर्ष से अधिक प्राचीन है। हालांकि कैथी लिपि या यूं कहें तो उत्तर भारत की अधिकांश क्षेत्रीय लिपियाँ जैसे महाजनी, मोडी, गुजराती, राजस्थानी, मिथिलाक्षर, भैक्षुकी की ऐतिहासिकता, महत्व व उसके अध्ययन, संवर्धन हेतु विरले ही कार्य हुए हैं और जब इन लिपियों की लिपिशास्त्रीय व अभिलेखीय अध्ययन की बात करें तो अभी किसी विद्वान का ध्यान आकृष्ट नहीं हो पाया है।

कैथी लिपि की ऐतिहासिकता को सत्यापित करने की कोशिश करें तो सर्वप्रथम पूर्वमध्यकाल के तमाम राजवंशों के शासकों के ताम्रपत्रों के उत्कीर्णक का नाम कायस्थ्य, करणिक, ठाकुर आदि पदवी से शुरू होता है।[4] इसका सबसे अच्छा उदाहरण गहड़वाल शासक गोविंदचंद्र का प्रसिद्ध कमौली से प्राप्त अनेक ताम्रपत्राभिलेख है जो वर्तमान लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। पूर्वमध्यकाल से नागरी एक महत्वपूर्ण लिपि के रूप में सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रयुक्त होनी शुरु हुई। यह नागरी लिपि एक बड़े क्षेत्र में

प्रचलित होने के कारण अपना विविध क्षेत्रीय स्वरूप को धारण करती गई। जिसमें नंदीनागरी, जैननागरी, कैथनागरी, देवनागरी आदि प्रमुख प्रकार हैं।[5] हमें पश्चिम भारत के बहुसंख्यक अभिलेखों में कैथनागरी लिपि का उल्लेख होता है।[6] कालान्तर में ये सभी लिपियाँ स्वतंत्र रूप से प्रयोग की जाने लगी। जिसके बहुतायत पांडुलिपि व अभिलेख प्राप्त होते हैं।

हमें कैथी लिपि का स्पष्ट सबसे प्राचीनतम प्रमाण 16वीं सदी में सुर राजवंश के प्रसिद्ध शासक शेरशाह सुरी (1486–1545) द्वारा अधिकारिक भूमि रिकॉर्ड के सन्दर्भ में मिलता है।[7] अभी हाल ही में श्रीनगर, मधेपुरा जिला, बिहार से कैथी लिपि के सबसे प्राचीन अभिलेख को चिन्हित किया गया है। जिसमें मगरधज जोगी 100 उल्लेखित है।[8] इस लघु शिलालेख की तिथि 12वीं–13वीं सदी निर्धारित की गई है जो तत्कालीन नागरी शैली से कफी प्रभावित दिखाई देती है। ब्रिटिश काल में बंगाल के सुप्रीम कोर्ट ने 1850 में कैथी लिपि को आधिकारिक लिपि स्वीकार किया।[9] तद्नांतर बाबू वीर कुंअर सिंह का पत्र व चंपारण के प्रसिद्ध किसान नेता राजकुमार शुक्ल की डायरी भी कैथी लिपि के अहम धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

कैथी लिपि की सामान्य विशेषताएं :

कैथी लिपि एक स्वतन्त्र लिपि के रूप में स्थापित है। इस लिपि का आधिकारिक मान्यता प्राप्त लिपि पंजीयन ISO15924 kthi(317) है। जबकि यूनिकोड रेंज U+11080–U+110CF निर्धारित है।

कैथी लिपि के संबंध में महामहोपाध्याय पंडित गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने कहा है कि यह लिपि मुख्यत: नागरी का किंचित परिवर्तित रूप है।[10] आगे उन्होंने लिखा है कि जिस प्रकार मैथिल लिपि का संबंध बांग्ला लिपि से है उसी प्रकार कैथी का संबंध नागरी से।[11] परंतु लिपिशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो कैथी, मिथिलाक्षर, बांग्ला व नागरी ये चार स्वतंत्र व समृद्ध लिपियाँ हैं। हालांकि मिथिलाक्षर, बांग्ला के साथ व कैथी, नागरी लिपि के साथ साम्यता जरूर रखता है पर इसमें बहुत सी भिन्नताएं भी हैं–

कैथी लिपि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसके अक्षरों का सिरोरेखा रहित होना है। जब कैथी अक्षरों को एक समतल, सपाट कागज या अन्य सतह पर उत्कीर्ण किया जाता है तो इस लंबी क्षैतिज रेखाओं के मध्य रखा जाता है ताकि पंक्ति सीधी हो साथ ही अक्षर भी स्पष्ट दिखाई दे। इस सीधी क्षैतिज समानांतर रेखा को सिरोरेखा के रूप में कतई नहीं देखा जाना चाहिए। प्रस्तुत अभिलेख में भी इसी समानान्तर रेखीय लेखन पद्धति का प्रयोग किया गया है।

कैथी लिपि में 35 व्यंजन वर्ण, 10 स्वतंत्र स्वर वर्ण, 9 स्वतंत्र स्वर मात्राएं व 0–9 अंक निर्धारित है।[12] इसके अतिरिक्त इसमें भी विराम चिन्ह, हलंत, विसर्ग, अनुस्वार, चंद्रबिंदु, नुक्ता आदि चिन्हों का प्रयोग किया जाता है।

कैथी लिपि के लगभग 14–15 वर्ण नागरी लिपि से भिन्न हैं जिसमें अ, आ, ओ, औ, ख, च, झ, ण, ड, ध, फ, र, ल अक्षरों का उल्लेख किया जा सकता है।

कैथी लिपि प्राय: साधारण पढ़े-लिखे लोगों के द्वारा प्रयोग में लाया जाता रहा है साथ ही यह एक अनौपचारिक व्यक्तिक संवाद लेखन में ज्यादा प्रयुक्त हुआ है। अत: इस लिपि के साथ इ-ई मात्राएं, उ-ऊ मात्राएं, ए-ऐ मात्राएं व-ब वर्ण आदि के प्रयोग में व्याकरणीय विधान को ध्यान में नहीं रखा जाता है।

कैथी लिपि का प्रयोग वृहत क्षेत्रों तक होने के कारण इसमें विविध क्षेत्रीय शैलियों भी विकसित हुई। जो मुख्यत: तीन तिरहुत क्षेत्र की, भोजपुर क्षेत्र की व मगध क्षेत्र की कैथी है।[13]

वर्तमान में कैथी का कंप्यूटर फोंट तैयार किया गया है जो एक अन्य प्रकार वर्तमान कैथी लिपि के रूप में जाना जाता है।[14]

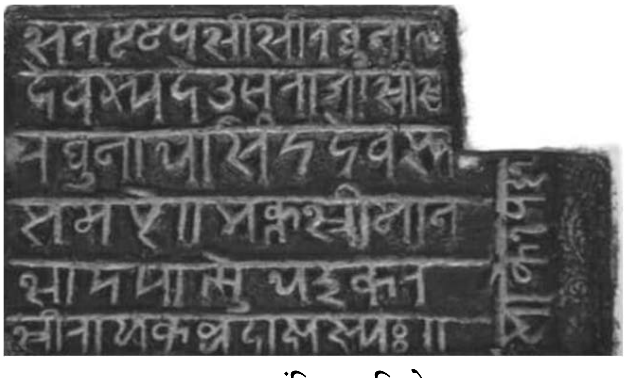

रघुनाथ मंदिर अभिलेख

1. सन 945 सी सी रघुनाथ
2. देवस्य देउस राजा स्री स्रि

3. रघुनाथ सिंह देवस्य
4. समेए ।। भक्त श्रीमान
5. साह पोत्सुथईकर
6. स्री राय कन्जदासस्यः ।।
7. साके 1561

अभिलेख का संक्षिप्त परिचय :

रघुनाथ मंदिर के बाहरी दीवार पर वर्गाकार साथ पंक्तियों में कैथी लिपि व संस्कृत भाषा में उत्कीर्णित है। यह अभिलेख वर्तमान बांकुड़ा जिला पश्चिम बंगाल से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख की सूचना लेखक को अरविंद चट्टोपाध्याय (सहायक प्राध्यापक, बांकुड़ा विश्वविद्यालय) से प्राप्त हुई। उन्होंने इसकी छाया प्रति लेखक को मेल के माध्यम से उपलब्ध कराया।

इस अभिलेख का मुख्य उद्देश्य रघुनाथ देवता यानी भगवान राम का मंदिर निर्माण का है। जो तत्कालीन स्थानीय मल्लवंशीय शासक रघुनाथ सिंह देव (1626–1646) के शासनकाल में भक्त श्री कंजरायदास के द्वारा निर्माण किया गया। संभवतः रघुनाथ नामक इस शासक के द्वारा प्रस्तुत अभिलेख प्रथम मंदिर अभिलेख है। क्योंकि इस शासक का चार अन्य मंदिर अभिलेखों का उल्लेख मिलता है।[15] जो बाद के वर्षों के हैं। इस अभिलेख की महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें दो संवतों का प्रयोग किया गया है। एक मल्लब्ध संवत 945 जबकि दूसरा शक संवत् 1561.

अभिलेख का तिथि निर्धारण :

अभिलेख की पहली पंक्ति ही मल्ल सन 945 से शुरू होती है। जिसे प्रारंभ करने का श्रेय 1603 ईसवी में वीर साह को जाता है।[16] अभिलेख में उल्लेखित मल्ल सन् 945 में 694 जोड़ने पर ईसवी सन् 1639 आता है। वही सबसे अन्तिम पंक्ति जो दाएं ओर से ऊर्ध्वाधर साके 1561 का उल्लेख करता है। हमें मल्ल शासकों के अभिलेखों में यह विशेषता देखने को मिलती है कि मल्ल संवत के साथ शक संवत् का प्रयोग हुआ है। शक संवत् 1561 में यदि 78 (शक संवत् की शुरुआत 78 ईसवी स्वीकार की जाती है।) जोड़ा जाए तो ईसवी सन् 1639 आता है। यदि ईसवी सन् 1639 में मल्ल संवत 945 घटाया जाये तो 694 आता है अर्थात् मल्ल संवत का गणना वर्ष 694 है।[17]

निष्कर्ष :

रघुनाथ मंदिर का यह अभिलेख काफी मायने में महत्वपूर्ण हो जाता है। बंगाल के क्षेत्र से मध्यकाल में राम मंदिर का दुर्लभ अभिलेखीय साक्ष्य है। संस्कृत भाषा में उत्कीर्णित विशुद्ध कैथी लिपि का यह पहला अभिलेख है। कैथी के अभिलेख अब तक संस्कृत भाषा में प्राप्त नहीं हुआ था। इस भाषा में भी कैथी लिपि की संभावनाएं इस अभिलेख के माध्यम से दिखता प्रतीत होता है। विशुद्ध कैथी लिपि का अब तक ज्ञात सबसे पुराना अभिलेखीय साक्ष्य है। इसके अलावा शक संवत के साथ मल्ल संवत का प्रयोग भी रघुनाथ मंदिर के इस अभिलेख को विशिष्ट बनाता है।

*** शोध-छात्र,**
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)-221005।
Email- bansalbhu1996@gmail.com
****परास्नातक छात्र,**
इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी (उ.प्र.)-221005
Email- ajitkumarsinghhistory@gmail.com

संदर्भ सूची

1. कुमार प्रीतम, कैथी लिपि का वैशिष्ट्य, बिहार इतिहास परिषद् (कार्य विवरणिका), भागलपुर, 2022, पृ. 87.
2. कुमार, ध्रुव, कैथी लिपि : एक परिचय कॉम्ब, टेक्नोलॉजिज, गुरूग्राम, 2019, पृ. 14
3. हॉबेल, ए.एफ. रूडोल्फ, ऐ कंप्रीहेंसिव ग्रामर ऑफ द गौडियन, (आर्यो इंडियन) लैंगवेजेज, ट्यूबर एंड कं, लंदन, 1880, पृ. 1
4. श्रीवास्तव, वी.एन. केटॉलॉग ऑफ कॉपर प्लेट इन द स्टेट म्यूजियम लखनऊ, डायरेक्टर स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, 2005, पृ. 68–72
5. पाण्डेय, अंशुमान, प्रपोजल टू इनकोड द कैथी स्क्रीप्ट इन ISO/IEC10646, UC बर्कले, कैलिफोर्निया 2007, पृ. 14
6. पाण्डेय, 2007, पृ. 19
7. श्रीवास्तव, के.पी. (संपा.) मुगल फामर्स, (1540

AD-1706 AD) स्टेट अर्काइव, लखनऊ 1974, पृ. 2
8. तिवारी, जलज कुमार, आर्कोलॉजिकल रिमेंस एण्ड कैथी इपिग्राफ फ्राम श्रीनगर, मिथिला भारती, भाग 9, अंक 1-4, मिथिला साहित्य संस्थान, पटना, 2022, पृ. 77
9. कुमार, 2019, पृ. 129
10. ओझा, पं. गौरीशंकर, हीराचंद, भारतीय प्राचीन लिपिमाला, मुंशीराम मनोहलाल, नई दिल्ली, 2011, पृ. 130
11. ओझा, 2011, पृ. 131
12. पाण्डेय, 2007, पृ. 3
13. ग्रियर्सन, जे.ए. ए हैंडबुक टू कैथी कैरेक्टर, ठक्कर, स्प्रिंक कंपनी, कलकत्ता, 1899, प्लेट 2
14. पाण्डेय, 2007, पृ. 5
15. चट्टोपाध्याय, ए.के., बंगाल इन्सक्रिपसन (1500 AD - 1800 AD) नीरज पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 2011, पृ. 192, भाग-2
16. भट्टाचार्य, 2011, पृ. 16, भाग-1
17. भट्टाचार्य, 2006, पृ. 60, भाग-1

अखिलेश यादव

अमरकांत की कहानियों में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएं

प्रस्तावना

कहानी विश्व साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है जो दुनिया के हर समाज में सभ्यता के आरंभिक काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान है। मानवीय संस्कृति को निर्मित व संरक्षित करने में जिन साहित्यिक विधाओं ने सर्वाधिक योगदान दिया है, उनमें कहानी को अति महत्वपूर्ण माना जाता है। कहानी वह है जिसमें जीवन के अंग का चित्रण हो, घटनाओं को परस्परबद्ध करके उसके विकास में तीव्रता, रोचकता, स्वाभाविकता और संक्षिप्तता हो जो जीवन की वास्तविकता और मनोवैज्ञानिकता अपने में समेटे हुए हो। हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार प्रेमचंद का कहानी के संदर्भ में मानना है कि–

''सबसे उत्तम कहानी वह होती है जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो।''[1]

हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं में कहानी का अत्यंत सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा है। 'गुलेरी', 'प्रेमचंद', 'प्रसाद' आदि से आगे बढ़ते हिंदी कहानी परंपरा अमरकांत तक पहुंचती है। हिंदी कहानी की संपूर्ण परंपरा में अमरकांत उन कहानीकारों में है जिन्होंने कथ्य और अभिव्यक्ति शैली दोनों ही स्तरों पर अपना अक्षुण्ण निजता निर्मित करती है।[2]

आलोचक मधुरेश के शब्दों में–

''अमरकांत की कहानियों का रचना संसार अपने आसपास के जीवन से निर्मित है और जीवन का वैविध्य, उसकी ताजगी और अनगढ़ता ही उनकी कहानियों का सबसे बड़ा आकर्षण भी है। यही कारण है कि अपने समय के संदर्भों की जैसी पहचान अमरकांत में दिखाई देती है वह उनके किसी भी दूसरे समकालीन कहानीकार के यहां विरल है।''[2]

अमरकांत की कहानियां जिन्दगी की तस्वीर पेश करती हैं। प्रेमचंद के बाद हिंदी का कोई दूसरा कहानीकार ऐसा नहीं दिखाई पड़ता जो जिन्दगी की वास्तविकता को इतनी विश्वसनीय ढंग से पाठकों के सामने पेश करता है। अमरकांत की कहानियां द्वंद्वात्मक दृष्टि से परस्पर विरोधी स्थितियों का समाहार कर पाने की शक्ति से रचित है। आजादी के बाद मध्यवर्गीय जीवन में हो रहे बदलावों, स्त्री–पुरुष संबंधों के बदलते आयाम एवं युवा पीढ़ी की सोच एवं उसके समक्ष बड़ी चुनौती को जिस प्रमाणिकता के साथ उन्होंने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है वह उनकी रचनात्मक सामर्थ्य का प्रमाण है। मध्यवर्ग की विडंबना को चित्रित करने में वे बेजोड़ हैं। उनकी कहानियों का कथ्य अपने समय एवं समाज की सच्चाई का प्रतिबिंब है। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं–

''अमरकांत अचूक और गंभीर व्यंग्य पटुता का स्त्रोत, विचार और दृष्टि के प्रति गहरा विश्वास करते हैं। उनके पात्र जानवर जैसा आचरण करते हैं और फिर मनुष्य के रूप में आ जाते हैं। अमरकांत के निम्नवर्गीय पात्रों की विडंबना अधिक तीव्र है क्योंकि इनकी स्थितियों के द्वंद्व में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग की अधिक तीव्रता है। अमरकांत का रचना संसार महान रचना संसारों जैसा विश्वसनीय है उस विश्वसनीयता का कारण है स्थितियों का अचूक चित्रण जिससे व्यंग्य और मार्मिकता का जन्म होता है।''[4]

किसी भी व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार, परिवेश,

शिक्षा आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अमरकांत को अपनी कई कहानियों की प्रेरणा परिवार के सदस्यों के द्वारा ही प्राप्त हुई। अमरकांत का साहित्य और रचना संसार का फलक काफी विस्तृत और व्यापक है। अमरकांत टूटते हुए मध्यवर्ग के कथाकार हैं, वे कठोर व्यंग्य से शोषक वर्ग पर गहरी चोट करते हैं। वे अपनी कहानियों की कथावस्तु साधारण जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और स्थितियों से चुनते हैं। अमरकांत अपनी कहानी के पात्रों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझते हैं और उन्हीं के साथ जीते है।

अपने निष्पक्ष समीक्षीय दृष्टिकोण के साथ प्रख्यात समीक्षक 'डॉ. नामवर सिंह' कहते हैं-

''अमरकांत ने अपनी कहानियाँ मध्यवर्गीय परिवार से उठाई हैं और इस तरह हमारी आंखों पर से जिंदगी के न जाने कितने पर्दे उठ गए हैं। इस क्षेत्र में अमरकांत की कहानियाँ किसी भी नए लेखक के लिए चुनौती है।''[5]

मध्यवर्ग बहुप्रचलित एवं परिचित शब्द है। इस शब्द के सुनने से यह बात समझ में आने लगती है कि समाज का एक ऐसा समूह जो ना तो बहुत अधिक धनी होता है और ना ही बहुत गरीब। इस वर्ग के उदय के पीछे सबसे बड़ी भूमिका है कि यह वर्ग अपने आप को सामाजिक आदर्शों एवं लक्ष्य से अपने आप को बांधकर रखता है।

महान कथाकार यशपाल ने लिखा है-

''मध्यम श्रेणी अनिश्चित स्थिति के लोगों की अद्भुत पंचमेल खिचड़ी है। कुछ लोग मोटरों और शानदार बंगलों का व्यवहार करते हैं और विनय से अपने आप को इस श्रेणी का बताते हैं। दूसरे लोग मजदूरों सी असहाय जिंदगी में रहकर भी केवल सफेदपोश और शिक्षित होने के बल पर इस श्रेणी का अंग होने का दावा करते हैं।''[6]

अमरकांत के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्वरूप के जिस चित्रण को हम पाते हैं, वह पूरी तरह से मध्यवर्गीय समाज के ताने-बाने को सामने लाता है। इनका कथा साहित्य कस्बाई तथा गँवई जिंदगी को ज्यादा प्रश्रय देता है। अमरकांत ने मध्यवर्गीय समाज के उस हिस्से को ही अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है, जो समाज के पाखंड, कूपमंडूकता, रूढ़िग्रस्तता तथा अंधविश्वास को सामने लाने में मदद करता। अमरकांत ने मध्यवर्ग के पारिवारिक संबंधों के बिखराव के धरातल का यथार्थवादी स्वरूप अंकित किया है। कहानी 'दोपहर का भोजन' निम्न आय परिवार की आर्थिक लाचारी के धरातल पर लिखी गई झूठी बाह्य प्रतिष्ठा पर चोट की कहानी है। जहां माँ परिवार को टूटने से बचाने के लिए स्वयं प्रतिपल टूटती रहती है। उसका खाली पेट पानी पी लेना और फिर मूर्छित हो जाना, एक दूसरे से सारे परिवार को जोड़े रखना तथा झूठ बोलकर एक दूसरे में विश्वास जगाना और स्वयं अंत में आधी रोटी खाकर ही अधभूखे बच्चों के लिए आंसू बहाना आदि उसकी चिंत्य मनोवृत्ति का परिचायक है।

''मोटी-भद्दी और जली उस रोटी को जूठी थाली में रखने जा रही थी कि अचानक उसका ध्यान आचार्य प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लड़कों को कुछ देर तक एकटक दिखा, फिर रोटी को दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर दिया। तदुपरांत एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ गई। उसने पहला ग्रास मुंह में रखा और तब न मालूम कहां से उसकी आंखों से टप-टप आंसू चूने लगे।''[7]

क्या कारण है कि 'दोपहर का भोजन' कहानी का प्रकरण कृत्रिम दुःख नहीं जान पड़ता बल्कि यह हर उस निम्न मध्यवर्गीय कहानी का दुःख मालूम होता है, जिनके परिवार में संघर्ष है नौकरी ढूँढने का, दो जून की पर्याप्त रोटी का प्रबंध करने का, भर पेट महसूस करने का। यह संघर्ष हमारे स्वयं का है, यह अमरकांत की लेखकीय शक्ति ही है, जो संघर्ष का साधारणीकरण कर देती है, राजेन्द्र यादव एक कहानीकार के इसी सामर्थ्य पर लिखते हैं-

''शक्तिशाली कहानी लिखने का सीधा सम्बन्ध लेखक की अपने विषय से आत्मीय और लेखकीय-सामर्थ्य से ही है।''[8]

आजादी के बाद भी विकास के पूंजीवादी पथ पर लगातार बढ़ते रहने के कारण जो स्थिति उपजी है, उसका अत्यंत सजीव, मार्मिक और यथार्थवादी चित्रण 'दोपहर का भोजन' में प्रस्तुत हुआ है।

''अमरकांत की ताकत है - उनकी लेखकीय ईमानदारी और मूल्य चेतना। इन गुणों का ताल्लुक प्रतिभा से नहीं होता बल्कि उस प्रतिबद्धता से होता है जो व्यक्ति के बाहर निकलकर व्यक्ति के संकुचित उबाऊ परिवेश से मुक्त होकर समाज को देखने समझने में प्रवृत्त होती है और जिसके लिए परिवेश की सच्चाई ग्रहण करना जीवन का केंद्रीय प्रयोजन होता है।''[9]

पूंजीवादी मूल्य व्यवस्था में समृद्ध होती आकांक्षाओं के मोहजाल में मध्यवर्ग फँसता गया। महत्वाकांक्षी जन

अपेक्षित सुविधाओं, शक्ति और सामर्थ्य के अभाव में विशिष्ट और उच्चवर्गीय जीवन अभिलाषाओं की पूर्ति हेतु खून पसीना एक करते रहे। इन्हीं महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने की कोशिश अमरकांत की 'डिप्टी कलेक्टरी' कहानी में दिखती है। शकलदीप बाबू का एकमात्र सपना है कि उनका बेटा नारायण किसी तरह से डिप्टी कलेक्टर बन जाए। बेटे की डिप्टी कलेक्टर के रूप में देखने की उनकी इच्छा इतनी प्रबल है कि वह अपनी तरफ से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ना चाहते। नारायण के परीक्षा देने जाने से एक दिन पहले वे भगवान को प्रसाद चढ़ाते हैं और गाड़ी चलाने पर दौड़कर नारायण के हाथ में थमा देते हैं-

''उन्होंने डिब्बे के सामने पहुंचकर उत्सुक तथा चिंतित मुद्रा में डिब्बे से सिर निकालकर झांकते हुए नारायण के हाथ में एक पुड़िया देते हुए कहा बेटा इसे श्रद्धा के साथ खा लेना, भगवान शंकर का प्रसाद है।''[10]

इन समस्त क्रियाकलापों के बावजूद शकलदीप बाबू की आशा-आकांक्षा की पूर्ति स्वप्न में ही हो पाती है, यथार्थ में नहीं। उनकी आकांक्षा-आशंका तथा उनकी आशा-निराशा के द्वंद्व को अमरकांत ने बड़ी सजीवता से इस कहानी में उभारा है।

डॉ. परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार-

''डिप्टी कलेक्टरी एक साधारण परिवार की असाधारण बल्कि मिथ्या आकांक्षा और निराशा की कहानी है। आकांक्षा में एक पूरे परिवार का जीवन टंगा रहता है- नए आकस्मिक क्षण की प्रतीक्षा में जो परिवार के जीवन स्तर को उच्च अभिजात समृद्धि से जोड़ देगा, पर होता यह है कि निराशा औसत सुख को भी प्रतीक्षा के क्रम में नपा कर देती है।''[11]

आर्थिक विपन्नता मनुष्य को इतना मजबूर कर देती है कि मनुष्य इसके बीच बेबस, मजबूर जिंदगी जीने के लिए विवश हो जाता है। उसके दलदल से चाहकर, अथम श्रम करके भी बाहर नहीं निकल पाता है। मध्यवर्ग की इसी बेबसी को 'मूस' कहानी चित्रित करती है।[12]

कहानी का नायक मूस बचपन में ही मां-बाप के प्रेम से वंचित चाचा-चाची के छाये में पलकर बड़ा हुआ है। उसने जन्म से लेकर अब तक केवल समस्याओं से जूझते हुए ही जीवन व्यतीत किया है। अपनी पत्नी 'परवतिया' द्वारा डांटने फटकारने पर भी वह चुपचाप सुन लेता है। हाड़ तोड़ मेहनत के बाद भी उसे दो जून भर भोजन नहीं मिल पाता। उसका वर्णन कहानीकार ने कुछ इस प्रकार किया है-

''मूस का जीवन उस मरियल बैल की तरह था, जो चुपचाप हल में जुतता है, चुपचाप मार सहता है और चुपचाप नींद में भूसा खाता है। उसको देखकर यह कहना मुश्किल था कि उसकी कोई इच्छा या अनिच्छा भी है। उसके मुख पर कोई भाव नहीं था और वह ऐसी पुरानी मशीन की तरह लगता है जो वर्षों से काम करते रहने पर भी खराब नहीं।''[13]

अमरकांत की कहानियों में परिवेश की विविधता है। यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक यथार्थ को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है। स्वाधीनता के पश्चात देश का जिन-जिन परिस्थितियों से साक्षात्कार हुआ उन बदलते परिवेश की तलाश उनकी कहानियों में परिलक्षित हुई है, उनमें विपन्नता से त्रस्त लोगों के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त हुई है।

अमरकांत जी न सिर्फ एक सदाशय इंसान और कथाकार है बल्कि अपार धीरज के साथ कथा नायक 'मूस' की मूस जैसी जिंदगी के अतल में उतरते हैं बल्कि वहां भी जो सुख-दुख, राग और आकर्षण है उनकी कोमल परतों को अपने शब्दों में उतारकर दिखा देते हैं।[14]

अमरकांत की कहानी 'छिपकली' कार्यालयी व्यवस्था की आंतरिक प्रतिस्पर्धा, सिंबल तथा प्रमोशन की राजनीति और बॉस को संतुष्ट रखने के तिकड़म के साथ मजबूर-विवश जिंदगी को ढोते, विज्ञापनों से चिपके रामजीलाल के जीवन के यथार्थ की कहानी है।

रामजीलाल के कनिष्ठ विभिन्न तिकड़मों से आगे चला जाता है लेकिन वह रामजीलाल अपनी टेबल को नहीं बदलवा पाता। बेहतर जिंदगी के सपने और उसे क्रियान्वित करने की आशा को भी घिसटती जिंदगी में छोड़ नहीं पाता। छिपकली उसकी इसी मन:स्थिति का प्रतीक है। किस तरह रामजीलाल कल्पनाओं से जीवन में उत्साह और उत्तेजना बनाए रखता है उसका वर्णन लेखक करता है-

''.... इस तरह परिश्रम करने पर उसको सफलता क्यों नहीं मिलेगी? फिर दुकानदार ही उसके पास दौड़ते हुए आएंगे। इसके बाद तेजी से उसके माल की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल जाएगी। फिर एक बड़े से कार्यालय की जरूरत पड़ेगी जिसमें सैकड़ों लोग काम करेंगे-उत्साह से उसकी आंख अंधेरे में चमक रही थी।''[15]

अमरकांत की विशेषता रही है कि वह अपनी कहानियों में उसी कथ्य और पात्र को ले आते हैं जो काल्पनिक नहीं है बल्कि यथार्थ और सामाजिक है तथा जिसे उन्होंने बहुत ही करीब से देखा और परखा है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक यथार्थों को केंद्र में रखकर मानवीय संवेदना और सहानुभूति उत्पन्न करने वाली कहानियों की रचना की और कथा संसार से देवता एवं राजा को अपदस्थ करके दीन, हीन, दलित, शोषित, प्रताड़ित, सामान्य मनुष्य को नायक पर प्रतिष्ठित किया।

''अमरकांत की कहानियों का धरातल उनके सामान्य और उपेक्षित चरित्रों के कारण उन्नत और समृद्ध है। आशा की किरण उनकी प्रत्येक कहानी में किसी न किसी रूप में मौजूद है और इसलिए देखा जाए तो अमरकांत एक आशावादी और प्रगतिशील संवेदना के रचनाकार के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं और इसी रूप में वे प्रासंगिक है।''[16]

इस प्रकार हम पाते हैं कि अमरकांत उन कहानीकारों में से हैं जिन्होंने कहानी को जिंदगी के लिए जरूरी चीज का दर्जा दिया है और स्पष्ट शब्दों में वह निकट जीवन संघर्ष का हथियार रही है। अमरकांत ने अपने साहित्य में इतिहास और वर्तमान को जोड़ने का प्रयास तो किया ही है साथ ही नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को दिखाते हुए युवाओं को उससे प्रेरणा दिलाने का कार्य किया है। एक संवेदनशील साहित्यकार की तरह अमरकांत ने समाज को अपने नजरिए से देखकर उसे अपने अंदाज से प्रस्तुत किया है। लेकिन यहाँ कहानीकार अमरकांत की साहित्यिक दृष्टि ऐसी मालूम नहीं होती कि वह अपने निजी जीवन या निजी विचार को प्रकट कर रहे हों बल्कि वे निष्पक्ष होकर अपने लेखकीय धर्म को निभाते हैं, रचना रचने के पश्चात ना तो उनका कोई प्रभाव उस पर दिखाई देता है ना थोपे गए विचार बल्कि वे समाज की थाती साबित होते हैं-

''कहानी ना ''मैं'' की व्यक्तिगत डायरी है, और ना परिस्थिति की निर्वैयक्तिक रिपोर्टिंग, आज की कहानी व्यक्ति और परिवेश का वह सम्बन्ध-क्षण है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में युग की एक-एक नब्ज छूता है...''[17]

निष्कर्ष

अमरकांत का कथा साहित्य युग का साहित्य है। इसमें समकालीन युग चिंतन की अभिव्यंजना है। अतः कहा जा सकता है कि अमरकांत की कथा कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता है समकालीन जीवन का यथार्थपूर्ण अंकन एवं सूक्ष्म संवदेनाओं की सार्थक अभिव्यक्ति। इसी कारण से अमरकांत हिंदी साहित्य में एक अविस्मरणीय कथाकार है जिनका साहित्य सदैव प्रासंगिक रहेगा।

पीएचडी शोधार्थी हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई-मेल- akhilyadavkmc@gmail.com

संदर्भ सूची

1. कहानी : नई कहानी- नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-1973, पृष्ठ 12
2. नई कहानी और अमरकांत- डॉ. निर्मल सिंह
3. नई कहानी पुनर्विचार- मधुरेश, नेशनल पब्लिशिंग हॉउस, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ 150
4. कुछ कहानियां : कुछ विचार- विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ 15-16
5. कहानी: नई कहानी- नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण - 1973, पृष्ठ 50
6. दादा कॉमरेड- यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण - 2001, पृष्ठ 20
7. अमरकांत की प्रतिनिधि कहानियां; संपादक राजकमल प्रकाशन
8. एक दुनिया : समानान्तर- संपादक राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ 40
9. शब्द शिखर पत्रिका- रामनिहान गुंजन सिंहय संपादक - आनंद प्रकाश त्रिपाठी, अंक 9, भोपाल, वर्ष - 2009 - 2010; पृष्ठ 199
10. अमरकांत की प्रतिनिधि कहानियां; संपादक राजकमल प्रकाशन
11. प्रेमचंद की द्वंद्वात्मक दृष्टि और अमरकांत- डॉ. विश्वनाथ तिवारी
12. नई कहानी और अमरकान्त- निर्मल सिंहल; राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - 1999
13. अमरकांत की प्रतिनिधि कहानियां; संपादक राजकमल प्रकाशन
14. नई कहानी और अमरकान्त- निर्मल सिंहल; राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - 1999
15. अमरकांत की प्रतिनिधि कहानियां; संपादक राजकमल प्रकाशन
16. नई कहानी और अमरकांत- डॉ. निर्मल सिंह
17. एक दुनिया : समानान्तर- संपादक राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ 28-29

शोध-पत्र

आसिफ खान

प्रवासी हिंदी उपन्यास के विकासक्रम में सुधा ओम ढींगरा का स्थान

भारत का विश्व से संपर्क प्राचीन काल से ही रहा है। व्यापार से लेकर धार्मिक सांस्कृतिक प्रसार तक भारत और विश्व के बीच आदान प्रदान की प्रक्रिया भी चलती रही है। मिस्र जैसी प्राचीन सभ्यता के साथ भी संपर्क के कई प्रमाण मिलते हैं। सम्राट अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म के वैश्विक प्रसार और विभिन्न देशों में उसकी स्थापना इसी संपर्क का परिणाम रही है। स्थानांतरण की इस प्रक्रिया में कई भारतीय न केवल विदेश गए बल्कि उनमें से कई वहीं बस गए। विदेशों का यह प्रवास और वहां पर बसना यह एक स्वतंत्र प्रक्रिया थी। कालांतर में वैश्विक स्तर पर कुछ राष्ट्रों द्वारा अन्य देशों पर अधिकार कर उन्हें उपनिवेश बनाने का खेल शुरू हुआ। इसी प्रक्रिया के तहत भारत को भी उपनिवेश बनाने की कोशिश की गई जिसमें फ्रेंच, डच, ब्रिटिश आदि कंपनियों ने अपने सभी पैंतरे आजमाए।

अन्ततः अंग्रेजों को इसमें सफलता मिली। औपनिवेशीकरण की इस प्रक्रिया के अंतर्गत न केवल आर्थिक शोषण होता था बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक अपहरण की भी बाकायदा रणनीति तैयार की जाती थी। ऐसी ही रणनीति के तहत भोले-भाले किसानों को बहला फुसलाकर मॉरिसस, फिजी, गयाना, त्रिनिदाद और टोबैगो आदि देशों में मजदूरी के लिए ले जाया गया। ''इंडिया इंडेनचर्ड लेबर सिस्टम''[1] अर्थात् शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत एक परमिट को क्षेत्रीय भाषा में गिरगिट कहके पुकारा जाने लगा और बाद में यही मजदूर गिरमिटिया मजदूर कहलाए। इस प्रकार से हजारों की तादाद में गिरमिटिया मजदूरों को मद्रास और कोलकाता के बंदरगाहों से भेड़ बकरियों की तरह ठूंस कर एक अनजान जमीन पर पहुंचा दिया गया। इस नई धरती पर न ही लोग अपने थे और न ही वहां की प्रकृति। स्वजनों से बिछड़ने की पीड़ा गुलामी की ठोकरों के बीच सिर्फ अपनी मिट्टी की यादें और उनमें बसे संस्कार ही रह गए थे।

यह भारतीय अपने साथ बहुत कुछ तो नहीं ले जा सके थे फिर भी उनके हाथों में तुलसीदास की रामचरितमानस और अन्य ग्रंथ जैसे हनुमान चालीसा और रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथ जरूर थे। इन्हीं ग्रंथों की छाया में उन्होंने अपने अस्तित्व और संस्कृति को जिलाए रखा। यह ग्रंथ ही गोरे मालिकों की क्रूरता, बर्बरता और अत्याचार सहने की शक्ति देते थे। दिन भर के अमानवीय श्रम के बाद एक-दूसरे की सहनशक्ति और एक-दूसरे के साथ आत्मीयता बनाए रखने का आधार उनके यही सांस्कृतिक ग्रंथ थे। उन्होंने अपने कष्टों और यातनाओं को अपनी सांस्कृतिक भाषा में पिरोते हुए गीतों, कविताओं, कहानियों और उपन्यासों के जरिए उसे दर्ज किया है।

प्रवासी हिंदी साहित्य में कहानी की तुलना में उपन्यास कम लोकप्रिय विधा रही है। इसका कारण स्पष्ट है कि उपन्यास का फलक कहानी की तुलना में अत्यंत विस्तृत होता है। जीवन के किसी एक या एक से अधिक पहलू को समग्रता से प्रदर्शित करने की क्षमता केवल उपन्यास में ही है।

इसलिए उपन्यासकार को उपन्यास लेखन के लिए समय के साथ-साथ विषय की समझ, संयम, एकाग्रता इन सभी गुणों से लैस होना अत्यंत आवश्यक है। प्रवासी हिंदी उपन्यास पर अगर निगाह डालें तो इसका विकास प्रवासी कहानी के बहुत बाद में हुआ है। गिरमिटिया देशों में जो साहित्य रचा जा रहा था वहां उपन्यास विधा बहुत देर से

अस्तित्व में आयी। कमल किशोर गोयनका ने मॉरीशस का प्रथम उपन्यास ''पहला कदम'' 1960 में प्रकाशित किया, जिसके रचियता कृष्ण लाल बिहारी थे। मॉरीशस की प्रसिद्ध हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' जिससे अधिकतर गद्य विधाओं की शुरुआत हुई, सीमित पृष्ठों के कारण उपन्यास विधा को कभी प्रकाशित नहीं कर पायी, मॉरीशस में उपन्यास के विकास में अगर किसी का नाम लिया जा सकता है तो केवल अभिमन्यु अनत का।

हालांकि अभिमन्यु अनत ने केवल उपन्यास विधा को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्रवासी हिंदी साहित्य को विश्व में एक अलग पहचान दिलायी है, इसलिए मॉरीशस के हिंदी साहित्य को ''अभिमन्यु अनत युग''[2] से उद्‌बोधित भी किया जाता है लेकिन प्रवासी हिंदी उपन्यास साहित्य में भी अभिमन्यु अनत का योगदान कम नहीं है। प्रवासी हिंदी उपन्यास के इतिहास में अकेले अभिमन्यु अनत ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने कुल 30 से अधिक उपन्यासों के रचना की है। कुछ के नाम इस प्रकार हैं- चौथा प्राणी, लाल पसीना, अपनी अपनी सीमा, हम प्रवासी आदि।

इनको मॉरीशस की धरती पर भारतीय गिरमिटिया मजदूरों के साथ हुए अत्याचारों के इतिहास को विभिन्न संदर्भो का सहारा लेकर लिपिबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त वहां रह रहे भारतवंशियों का अपनी मातृभूमि और अपने पूर्वजों की मातृभूमि के नजरिए को रामदेव धुरंधर वर्तमान परिस्थितियों के आईने में बड़ी गहराई से चित्रित करते हैं। मॉरीशस के अन्य उपन्यासकारों में दीप चांद बिहारी, विष्णुदत्त मधु, दानिश्वर शाम आदि उपन्यासकार भी शामिल हैं लेकिन अभिमन्यु अनत जैसी गंभीरता और निरंतरता इनके उपन्यासों में नहीं है। गिरमिटिया देशों में फिजी का नाम मॉरीशस के बाद दूसरे स्थान पर आता है लेकिन वहां हिंदी साहित्य का विकास उस रूप में नहीं हुआ जैसे मॉरीशस में हुआ है।

फिजी के उपन्यासकारों में जोगिंद्र सिंह ''कंवल'' का नाम विशेष तौर पर लिया जाता है जिनके चार उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। जिनके नाम इस प्रकार से हैं-करवट, सबरा, धरती मेरी माता, सात समंदर पार। इसके अतिरिक्त डॉ. सुब्रमणी के डउका पुराण एवं फिजी में लिखे गए प्रवासी हिंदी उपन्यासों का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। गिरमिटिया देशों में सूरीनाम का भी अपना एक अलग स्थान है। सूरीनाम के भारतवंशी हिंदू संस्कृति के प्रति बेहद सजग और जागरूक माने जाते हैं। इसका चित्रण पुष्पिता अवस्थी के उपन्यास छिन्नमूल में भी दिखता है, जो सूरीनाम के भरतवंशियों की संघर्ष गाथा का यथार्थ दस्तावेज है। गिरमिटिया देशों के अलावा विश्व के अन्य महाद्वीपों, अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, यूरोप में हिंदी का प्रचार-प्रसार काफी बढ़ा है। अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया में भी हिंदी लिखने वालों की संख्या अब नजर में आने लगी है लेकिन हिंदी के प्रति जितना प्रेम अमेरिका और ब्रिटेन में मिलता है उतना और कहीं नहीं। मॉरीशस के बाद अगर सबसे ज्यादा कहीं उपन्यास लिखे गए हैं तो अमेरिका में। अमेरिका और ब्रिटेन में स्त्रियां लेखन क्षेत्र में अधिक सक्रिय दिखाई पड़ती हैं।

उपन्यास जैसी विधा में भी स्त्रियों हस्तक्षेप साफ परिलक्षित होता है। जैसे हंसादीप, दिव्या माथुर, इला प्रसाद, अर्चना पैन्यूली शैलजा सक्सेना आदि एक नाम प्रमुख रूप से 2016 के बाद लगातार चर्चा में बना हुआ है वह है सुधा ओम ढींगरा जी का 'नक्काशीदार कैबिनेट', उनका पहला उपन्यास आया जिसका विषय नारी संघर्ष था, भारत के लेखकों में नारी संघर्ष विषय कोई नई बात नहीं है लेकिन प्रवासी लेखक द्वारा ऐसी संघर्ष भरी गाथा लिखना नया और अनोखा अनुभव लगता है लेकिन शैली में या भाषा में कहीं आप कमी नहीं पाओगे, सुधा जी स्वयं कहती हैं, ''उपन्यास लिखना एक चुनौती है। उपन्यास लिखने के लिए बेहद प्रतिबद्धता, अनुशासन की जरूरत होती है। जरूरी नहीं हर एक कहानीकार उपन्यास लिखता है या लिख सकता है। कई कहानीकारों ने एक भी उपन्यास नहीं लिखा और कई हैं जिन्होंने कहानियां कम और उपन्यास अधिक लिखे हैं, हालांकि उपन्यास में हम वृहत स्तर पर अपनी बात कह सकते हैं, कई कहानियां तथा उनमें छिपे किस्से साथ-साथ बता सकते हैं। लेकिन उपन्यास जिस एकाग्रता और समय की मांग करता है, वह सब नहीं कर सकते या करना नहीं चाहते। हर लेखक का अपना 'कंफर्ट जोन' होता है। कई कहानियां लिखने में महारत हासिल कर लेते हैं और वे उसी 'कंफर्ट' में रहना चाहते हैं, और कई उपन्यास लिखने में।

सुधा जी के उपन्यास की समीक्षा कई मंचों और पत्र-पत्रिकाओं मं हुई।और अलग-अलग लोगों से अपने-अपने दृष्टिकोण से की। इनके उपन्यासों को न सिर्फ प्रवासी साहित्य में बल्कि भारत के लोगों ने भी खूब सराहा एवं आलोचना, टिप्पणी, समीक्षाएं की। एक समीक्षक ने कहा ''सुधा ओम ढींगरा का अमेरिका में रहते हुए अपने देश भारत और प्रांत (पंजाब) से गहराई से जुड़े रहना इस बात को सिद्ध करता है, कि उनके भीतर भारत की मिट्टी की

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

महक उसके दर्द, पीड़ा और संवेदनाएं जिंदा हैं। उनका उपन्यास 'नक्काशीदार केबिनेट' मूल रूप में पंजाब प्रांत के एक परिवार और उसके साथ परिवेश के बनते-बिगड़ते रिश्तों की कथा है, जिसमें नारी संघर्ष बड़े प्रभावशाली रूप में उभरा है। नारी संघर्ष में सोनल और मीनल की कहानी बड़े मर्मस्पर्शी रूप में उपन्यास के पृष्ठों पर रूपायित है। इस संघर्ष में सोनल जैसी लड़की का साहस और धैर्य पाठक के हृदय को छू लेता है। इसके साथ ही पंजाब से विदेश की ओर आकर्षण जाल में फंसी नारियों के विवाह के चक्रव्यूह को उपन्यासकार ने बड़ी सच्चाई से उतारा है। ऐसी संवेदनाएं विदेशी हो जाने के बाद, प्रवासी कहलाने के बाद इस तरह को संवेदनाएं आपको सुधा जी के उपन्यास में देखने को मिलेगी।''[4]

नशाखोरी, आतंकवाद और खालिस्तान जैसी समस्याओं में, संवेदनाओं के मध्य गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंद सिंह जैसे महान गुरुओं के हिंदू धर्म की रक्षा के लिए बलिदान की कहानी रोचक ढंग से लेखिका ने सुनाई है। उपन्यास में डॉ. संपदा और सार्थक पति-पत्नी हैं। अमेरिका में 'हरीकेन' और 'टॉरनेडो' तूफान पूरी शक्ति के साथ उनके प्रांत में आ जाते हैं, जिसके कारण बारिश और चक्रवात उनके निवास के स्थान पर जबरदस्त क्षति पहुंचाते हैं। उनके घर में पानी घुस आता है और पेड़ टूट कर उनका घर तोड़ देते हैं। इसी प्रकार जहां अनेक नुकसान होते हैं वहीं नक्काशीदार केबिनेट रोज वुड से बना हुआ (मध्ययुगीन कला का सुंदर नमूना) क्षतिग्रस्त हो जाता है। वह पानी में औंधा पड़ा होता है। उसमें वर्षों की यादें थीं। इसमें एक काले रंग वाली डायरी भी थी जिसे फुर्सत में लेखिका पढ़ती जाती है और स्मृतियों में बसी कहानी डायरी शैली में उपन्यास पर उतरती जाती है। कहानी वर्तमान से अतीत की ओर, फिर अतीत से वर्तमान में आ जाती है। यह सब लिखा गया और एक प्रवासी हिंदी लेखक ने इसे लिखा आप इनको पढ़कर समझ सकते हैं कि इनके भीतर कितना मोह भारत के लिए है।

इसी तरह से कोरोना काल की त्रासदी के ऊपर एक उपन्यास सुधा ओम ढींगरा का 2021 में प्रकाशित हुआ। जिसका नाम, 'दृश्य से अदृश्य तक का सफर' जब मैं ये उपन्यास पढ़ रहा था तो मेरी आंखों के सामने वह कोरोना काल का दृश्य चलने लगा, भावुक हो गया और पाठक होने के नाते मुझे बहुत लगाव हुआ सुधा जी के उपन्यास से और इनकी रचना शैली से। सुधा जी ने बिंब बनाने का जो प्रयास किया वह बहुत साफ-साफ पढ़कर महसूस किया जा सकता है-''जानवर सीमित क्षमताओं के साथ पैदा होता है और अपनी हर जरूरत के लिए प्रकृति पर निर्भर होता है, किन्तु उसके पास किसी प्राकृतिक विपदा को भांपने की अनूठी क्षमता होती है, उस विपदा के आने से पहले वह जान बचाकर भाग खड़ा होता है और अगर नहीं भाग पाता है तो खुद को हालातों के हवाले सुपुर्द कर देता है। रिश्तों के मायने भी जानवरों के लिए मनुष्य से अलग होते हैं।''[5]

आप सोच रहे होंगे कि भारतीय लेखकों को भाषा और उनकी शैली में यह किसने लिख दिया तो उपरोक्त सभी पंक्तियां सुधा जी के उपन्यास से ही हैं उनकी लेखनी में यही गुण है कि वह पाठक को बांध देती है। कई पुरस्कारों से सम्मानित सुधा जी वास्तव में हृदय से बहुत ही भावुक, संवेदनशील और जीवन को प्रभावित करने वाले ढंग से जीने वाली लेखिका हैं। निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि प्रवासी हिंदी साहित्य में वर्तमान और भविष्य में सुधा जी का नाम बड़े फलक के लेखक के रूप में लिया जाएगा। सुधा जी का स्थान निश्चित तौर पर प्रमुख और अद्वितीय है। प्रवासी जगत के लोगों में उनके लेखन पर बहुत सकारात्मक चर्चाएं सुनने को मिलती हैं। भविष्य के लिए पाठकों को सलाह है प्रवासी साहित्य में बहुत अलग, अनोखे, और एक परिपाटी से चलते हुए विषयों से नए विषय बनाने की शैली और सृजनात्मकता बची है।

शोधार्थी, हिंदी विभाग
डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
दिल्ली

संदर्भ सूची

1. वर्मा, विमलेश कांति, प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 35
2. कोल्हारे, डॉ. दत्ता, प्रवासी हिंदी साहित्य (स्वरूप और अवधारणा), भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 67
3. ढींगरा, सुधा ओम, नक्काशीदार कैबिनेट, शिवना प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 90
4. ढींगरा, सुधा ओम, दृश्य से अदृश्य तक का सफर, शिवना प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. 105
5. वही, पृ. 81

शोध-पत्र

वैदिक और लौकिक साहित्य में आयुष चिन्तन

डा. प्रसून सेनगुप्त* डा. शङ्कर नाथ तिवारी**

सार संक्षेप - संस्कृत विश्व में सभी भाषाओं की जननी है। यह वैज्ञानिक विवेचन से सिद्ध है। वैज्ञानिक जगत् में संस्कृत की उपादेयता के साथ प्राचीन संस्कृत साहित्य में चिकित्साविज्ञान अर्थात् आयुर्वेदीयविषय कतिपय विकीर्णस्वरूप में प्राप्त होते हैं। विश्व के समग्र ज्ञान का अधिष्टान संस्कृत है यथा वेद। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं और विश्व में इनसे प्राचीन कोई साहित्य नहीं है। समस्त भारतीय वाङ्मय में वेदों का पुज्य एवं पवित्र स्थान है। आयुर्वेद भी शाश्वत, पुण्यतम और अभ्युदय तथा नि:श्रेयसप्रद वेदाङ्ग है। अनादिकाल से आयुर्वेदविज्ञान चलता चला आ रहा है वेद का ही उपवेद या उपाङ्ग है। चरक एवं सुश्रुत की संहिताएं आयुर्वेद के आकर ग्रन्थ रूप में समावृत हैं।

कुन्जी - आयुर्वेद, उपादेयता, वैज्ञानिक, पुज्य, वेदाङ्ग, पुण्यतम।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा में संस्कृत साहित्य का योगदान सर्वविदित है, बिना संस्कृत साहित्य के भारतीयता अथवा भारतीय ज्ञान की कल्पना ही असंभव है। सर्वप्रथम संस्कृत वाङ्मय से क्या तात्पर्य है? ये जान लेना अति आवश्यक है। सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से संस्कृत शब्द सिद्ध होता है। वैदिक संस्कृत साहित्य का लौकिक साहित्य से अनेक प्रकार का भेद पाया जाता है। वैदिक साहित्य शुद्धत: धार्मिक है तथा इसमें सभी लौकिक तत्त्वों का बीज समाहित है। लौकिक संस्कृत साहित्य प्रधान रूप से धार्मिक धर्मनिरपेक्ष है। धर्म में इसे लोक-परलोक से ही सम्बन्धित कहा जा सकता है। इस साहित्य मे महाकाव्य, पुराण, अलंकारशास्त्र, दर्शन, सूत्र, वास्तुशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, गणीतशास्त्र और अन्य विभिन्न विद्याओं का शाखाएं भी प्राप्त होती हैं। ऐसी भाषा जो विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इसी भाषा में विश्व वाङ्मय के गौरवरूप वेद आदि ग्रंथ विराजमान हैं। संस्कृत साहित्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य। संस्कृत का वैदिक रूप संस्कृत भाषा की प्राचीनतम आकृति को धारण करता है। उसके इसी रूप में समस्त वैदिक वाङ्मय विराजमान हैं। लौकिक रूप इसके वैदिक रूप की अपेक्षा अधिक परवर्ती है। इसके इसी रूप में रामायण से लेकर आधुनिक संस्कृत साहित्य तक का समस्त कलात्मक और शास्त्रीय साहित्य इसमें निहित है। यह रूप पाणिनि मुनि के द्वारा नियन्त्रित है, इसीलिये इसमें भाषागत परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता किन्तु वैदिक भाषा की अपेक्षा इसमें अन्य भाषाओं के शब्द अधिक पाये जाते हैं। संस्कृत वांगमय समस्त भारत वर्ष का प्रतिनिधित्व करता है उसके किसी प्रान्त, जाति अथवा वर्ग को नहीं। मानव जाति के स्वास्थ्य से संबंधित इसी वाङ्मय के एक अंग वेदों में आयुर्वेद शास्त्र की उपयोगिता को दर्शाया गया है।

वेदों में आयुर्वेद - चरकसंहिता में बताया गया है कि अन्य वेद केवल परलोक हितकर हैं, जबकि आयुर्वेद लोकों के लिए हितकर है, इसलिए आयुर्वेद पुण्यतम वेद कहा गया है।[1]

वेदों ने ज्ञान के दो भाग किये-(1) अविद्या (2) विधा।

जो मनुष्य विद्या और अविद्या को साथ ही जानता है

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

वह अविद्या से मृत्यु को तर करके विद्या से मोक्ष को प्राप्त होता है।[2] इस मंत्र में ज्ञान के पहले भाग अविद्या में समस्त आधुनिक भौतिक, रसायन, जीव, वनस्पति, अभियांत्रिकी एवं तकनीकी तथा आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान का समावेश हो जाता है।

संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद की पर्यालोचना पर प्रकाश डालते हुए यह बता रहा हूं कि ज्ञान के पहले भाग अविद्या जिसके अन्तर्गत आयुर्वेद चिकित्सा आती है। वेदों में मंत्रों में देवता वाद है। प्रत्येक सूक्त का कोई देवता होता है। इस प्रकार अग्नि, जल आदि देवताओं के समान रूद्र, इन्द्र भी देवता हैं। उनके साथ ही अश्विनौ भी देवता हैं जो स्वर्ग के वैद्य माने जाते हैं। काय चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा दोनों में पारङ्गत थे क्योंकि आयुर्वेद के आठ अंगों में ये दो अंग प्रधान हैं। इन दो अंगो में पारङ्गत व्यक्ति को अश्विनौ की उपाधि प्रदान की जाती है। चिकित्सा कार्य का संबंध केवल अश्विनी कुमारों से ही है। ये देवताओं के चिकित्सक होने से सूक्तों के देवता माने जाते हैं।

यद्यपि अन्य वेदों में भी आयुर्वेद का वर्णन है तथापि ऋग्वेद सबसे प्रथम माना जाता है। इसमें प्राकृतिक वस्तुओं से स्वास्थ्य प्राप्ति का निर्देशन मिलता है परन्तु औषधियों में वनस्पतियों का ही उल्लेख है। ऋग्वेद में आयुर्वेद के ऐसे आचार्य मुख्यतः दिवोदास और भारद्वाज हैं। इन्हीं से शल्य और काय चिकित्सा का प्रचार पृथ्वी पर हुआ, लोहे की टांग जोड़ने का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में उल्लेख है, एक सेवक अश्विनी कुमारों से प्रार्थना करता है कि मेरे स्वामी की पत्नि की टांग टूट गयी है लोहे की टांग लगा दीजिये। ऋग्वेद में च्यवन ऋषि को पुनः युवा बनाने का उल्लेख है। इसके अविरिक्त ऋग्वेद में काय चिकित्सा, प्रसूति चिकित्सा, सूर्य किरणों द्वारा चिकित्सा वायु चिकित्सा, मानस चिकित्सा आदि चिकित्साओं का वर्णन मिलता है। रुद्र भिषकतम देवता के रूप में स्तुत है तथा औषधीपति, जलाष इत्यादि संबोधन वैदिक चेतना चिकित्सीय सरूप को इङ्गीत करते है-गाथपति मेधपति रुद्रं जलाषभेषजम्।

ऋग्वेद के नवम मण्डल पवमानपर्व में सोम का स्तवन किया गया है और सोम एक प्रमुख औषधि है जो नवजीवन प्रदात्री कही गयी है। इसी प्रकार देवभिषक् अश्विनी कुमारों का भी पञ्चशत् सूक्त में स्तवन किया गया है।

यजुर्वेद में औषधियों के लिये अनेक मंत्र मिलते हैं। जिससे स्पष्ट है कि औषधियों का उपयोग यज्ञ कर्म तथा स्वास्थ्य के लिये विशेष होता था। इसमें औषधियों की अनेक प्रार्थनाएं की गयी थीं जैसे- इसमें औषधियों जो तीन युगों से पहले उत्पन्न हुईं। उन भरण पोषण करने वाली औषधियों के अनेक स्थान है, माता औषधियों? तुम्हारे अपरिचित जन्म स्थान है तुम्हारे कर्म भी असंख्य है इसलिये तुम मुझ को भी रोग रहित करो।

यजुर्वेद का यह भी उपदेश है कि औषधियों को केवल नाम या रूप से जानने का कोई महत्व नहीं है नाम और रूप से तो औषधियों को जंगल में गाय, भेड़ चराने वाले चरवाहे भी जानते हैं परन्तु इनका उपयोग गुण दोष के अनुसार जो जानता है वही सच्चा चिकित्सक है। यजुर्वेद में दिव्य वैद्य का लक्षण बताया गया है कि जो रोगों को जड़ से उखाड़ देता है राक्षसो (जीवाणुओं) को मार सकता है वही दिव्य भिषक है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद : आयुर्वेद चिकित्सा मुख्य रूप से अथर्ववेद में वर्णित है। अथर्ववेद में उल्लिखित आयुर्वेद के विभिन्न अङ्गों जैसे औषध चिकित्सा, मानस चिकित्सा, अग्नि-यज्ञ चिकित्सा, सौर चिकित्सा, शल्य चिकित्सा का आदि उल्लेख है। अथर्ववेद विभिन्न प्रकार के अनेक कृमियों की जातियां हैं उनसे होने वाले रोग तथा उनको नष्ट करने का उपाय बताया गया है। जैसे- अन्त्र कृमि सिर पृष्ट अन्न षानदि से प्रविष्ट होने वाले कृमि आदि को मारने के लिये प्रार्थनायें एवं उपाय बताये गये हैं। इसमें कुछ वनस्पतियों का नाम भी उल्लिखित है जैसे-पिप्पली, आपामार्ग, प्रश्निपर्णी मांस रोहिणी आदि आपामार्ग का विशिष्ट वर्णन है। इसको देहात में चिरचिटा या ओंधा कहते हैं। इसका विशेष गुण है कि शिरोविरेचनीय द्रव्यों में अत्रिपुत्र ने आपामार्ग को ही श्रेष्ठ बताया है। पुत्रोत्पत्ति के लिये भी आपामार्ग का उपयोग आयुर्वेद ग्रंथों में मिलता है। रोगों में किलास, कुष्ठ रोग नाशक उपाय, केश बढ़ाने का उपाय, क्लीबत्व नाशक उपाय हृदय रोग, कामला मूढ गर्म अश्मरी मूत्राघात आदि रोगों की चिकित्सा का वर्णन विशेष रूप से है।

अथर्ववेद में वनस्पतियों का नामकरण उनके स्वरूप, गुण और धर्म के आधार पर किया गया है जैसे प्रश्निपर्णी (कुर्बरपणयुक्ता), असिकनी (नीलवर्णयुता), कृष्णा (कृष्णवर्णा)। बहुत सी औषधियों का ज्ञान पशु पक्षियों की

सहायता से प्राप्त हुए हैं तथा उन औषधियों के नाम भी उनके अनुसार रखे गये हैं जैसे- वाराही, सर्पगन्धा, नाकुली, गन्धर्वहस्ता, हंसपदी, अश्ववारा, अजभृङ्गी। अथर्व ऋषि ने कहा है कि यह चिकित्सा बहुत प्रकार की होती है।

यथा – मानस चिकित्सा – विभिन्न प्रकार के रोगों का सामना एवं उपाचार जहाँ औषधियों आदि द्वारा होता है, वहाँ मानस चिकित्सा द्वारा भी किया जाता है। मैत्रायणी शाखा में ठीक कहा गया है कि मन ही रोगों का कारण, मन ही रोग मुक्ति का कारण होता है।[3] आचार्य चरक के अनुसार मानस रोग तमोगुण और रसोगुण के विगारों से प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में मन को रोगों का कारण एवं रोगों का निवारण कहा है।

यज्ञाग्नि के द्वारा की गई चिकित्सा अथवा सम्पाद्यमान चिकित्सा को अग्नि चिकित्सा सा यज्ञ चिकित्सा कहते हैं। अथर्ववेद में अग्नि को सर्वरोग भेषज स्वीकार किया गया है।[4] शरीर के अंगों प्रत्यंगों को अग्नि द्वारा ताप देना, अग्नि में गुग्गुलु, गिलोय, नीम आदि कृमिनाशक द्रव्य डालकर होम करना, विद्युत चालित यन्त्रों द्वारा चिकित्सा करना आदि अनेक प्रकार की अग्नि का सेवन किया जाता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि रोगणुओं को नष्ट करने के लिये अथवा रोगोत्पादक, कृमि कीटादि को मारने के लिये अग्नि एवं यज्ञाग्नि में होम परमोपयोगी विधि है।[5]

सम्पर्ण अथर्ववेद में औषध चिकित्सा, अग्नि यज्ञ चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, मन्त्र चिकित्सा आदि आयुर्वेद का सरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण रूप से वर्णित है।

उपनिषदों में आयुर्वेद : उपनिषदों का अर्थ है समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। मुण्डक उपनिषद में कहा गया है कि गुरू के पास हाथों में समिधा लेकर पहुंचे तब गुरु उनको ब्रह्म ज्ञान देता है। उपनिषदों का मुख्य विषय ब्रह्म ज्ञान ही है जैसे सन्नत कुमार के पास जाकर नारद का ज्ञान प्राप्त करना, प्रजापति के पास इन्द्र तथा विरोचन का जाना, जनक का बहुदक्षिणा वाले यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी का पता लगाना चाहिये।

ब्रह्मज्ञान का आधार शरीर है इसलिये शरीर धारण करने वाले अन्न के संबंध में एक सुन्दर उल्लेख है-

अन्नं न निन्धात तदब्रतम। प्राणों अन्नं।
शरीरे प्राण: प्रतिष्ठित: शरीरे प्राण: प्रेतिष्ठित
शरीरे प्राण: प्रैतिष्ठित:।।
(तैतरीय उपनिषद)

अत्रि पुत्र ने अन्न पाचन के संबंध में इस से गुड़ बनाने की प्रक्रिया से संबंध बताया है। इसी प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, अति सूक्ष्म तीन प्रकार से अन्न का पाचन भी होता है तथा अंत में रस और किट्ट दो भागों में विभक्त हो जाता है।

पामा रोग : छान्दोग्य उपनिषद में रैक्व की कथा है। जानश्रुति रैक्व के पास ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से जाता है। रैक्व ने इसको पामा रोग से ग्रस्त देखा। पामा कुष्ठ का एक भेद है।

घोड़े का सिर लगाना : आथर्वण ऋषि ने मधु विद्या का उपदेश अश्विनौ को दिया। अश्विनौ ने दधीचि को दिया। इस उपदेश परम्परा में एक कथा है कि आथर्वण ने यह विद्या अपने मुख से नहीं दी थी क्योंकि आथर्वण को कहा गया था कि इस विद्या को यदि तुम उपदेश करोगे तो तुम्हारा सिर गिर जायेगा। इसलिये अश्विनौ ने आथर्वण का सिर काटकर घोड़े का सिर जोड़ दिया था उपदेश के पश्चात वह सिर गिर पड़ा फिर अश्विनौ ने उनका असली सिर जोड़ दिया। यज्ञ का सिर भी अश्विनौ ने ही जोड़ा था।

अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति स्मृतौ।
यज्ञस्य हि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम्।।
(चरक)

अर्थात्

अश्विनी कुमार देवताओं के भिषज हैं। वे यज्ञवाह कहलाते हैं। यज्ञ पुरुष का कटा हुआ सिर उन्होंने जोड़ दिया। चरक संहिता में भिन्न-भिन्न परिषदों का वर्णन भी उपनिषदों में मिलता है। किसी विषय का निर्णय करने के लिये उपनिषद काल में भी परिषदें बुलाई जाती थीं।

पुराणों में आयुर्वेद साहित्य : अग्नि पुराण एक विश्वकोशीय ग्रन्थ है। इसमें भारतीय परम्परा ऐर संस्कृति की सभी शाखाओं से संबंधित सामग्री शामिल हैं, जिसमें औषधियाँ भी शामिल हैं। अग्नि पुराण में वर्णित नीचे दिए गए विषय आयुर्वेद ग्रंथों में वर्णित विषयों से मिलते-जुलते हैं। अग्नि पुराण में 279वें अध्याय से 293 अध्याय तक विभिन्न औषधों का वर्णन मिलता है। 279वें अध्याय में सिद्ध औषधों का निरूपण किया गया है। अग्नि कहते हैं – आयुवेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत। देवो धन्वन्तरि सारां मृत सञ्जीवनीकरम्।। अग्नि पुराण में सिद्धौषध सर्वरोग हर औषध, वृक्षायुर्वेद मृत संजीवनी योग आदि है धातुओं का भस्म के रूप में उपयोग भी अग्नि पुराण में मिलता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्म खण्ड में आयुर्वेद की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। जैसे-ब्रह्मा ने आयुर्वेद का ज्ञान भास्कर को दिया। भास्कर ने अपने 16 शिष्यों को आयुर्वेद पढ़ाया उन्होंने स्वतंत्र ग्रन्थ बनाये। विष्णु पुराण में कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने आवश्यकता के अनुसार न्यूनाधिक भोजन जरूर करें किन्तु भोजन के अंत में पेट में कुछ खाली स्थान जरूर रखें। चिकित्सा के इतिहास की दृष्टि से इनका महत्व हैं जैसे गरुण पुराण में कई श्लोक चरक, सुश्रुत से संग्रहीत है।

रामायण काल में आयुर्वेद : हम पाते हैं कि पृथ्वी पर ज्ञात सबसे प्राचीन चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद और भारतीय चिकित्सा पद्धति प्राचीन महाकाव्य रामायण से जुड़ी हुई है। आयुर्वेद (प्राचीन चिकित्सा पद्धति) आयुर्वेद द्वारा ही सुशेन वैद्य ने मूर्छा युक्त लक्ष्मण की चिकित्सा की थी क्योंकि रामायण महाकाव्य में उपनिषद, दर्शन, स्मृति, ज्योतिष, धनुर्वेद, आयुर्वेद एवं उससे सम्बद्ध उपयोगी विषय उपस्थित हैं।

जैसा कि रामायण में विदित है-

अनिर्वेद: श्रियो मूलमनिर्वेद: परं सुखम्।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तक:।।

(सुन्दरकाण्ड, सर्ग-12)

रामायण में तैल भोणी तथा वनस्पतियों का वर्णन आया है। भारतीय प्रथा में वस्तुओं को सुरक्षित रखने का उपाय तैल और मधु है। राजा दशरथ का शव भी भरत के आने तक तैल में ही सुरक्षित रखा गया था। वनस्पतियों में कुटज, अर्जुन, सर्ज नीम, सप्तच्छद, अशोक, कोविदार आदि प्राचीन नाम रामायण में मिलते हैं। आसव तथा मधुशाला रामायण में रावण की मधुशाला का वर्णन है। मधुशाला का वर्णन अष्टाडंग संग्रह में भी है। इसमें मद्य और मांस का संबंध भी बताया गया है।

महाभारत काल में आयुर्वेद : महाभारत में अश्विनौ का उल्लेख है, आयुर्वेद के आठ अंगो का वर्णन है जैसे-शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, कौमारभृत्य भूतविद्या रसायन वाजीकरण, विषतन्त्र विस्तार से है। दुर्योधन ने भीम को विष दे दिया था उससे मूर्च्छित होकर भीम नदी में गिर गया। वहां सांपों ने उसे काटा जिससे उसका विष नष्ट हो गया। इस प्रकार महाभारत में स्थावर विष को। जङ्गम विष नष्ट करता है ये उल्लेख है।

श्रीमद्भगवद्गीता में आयुर्वेद : प्राचीन भारतीय साहित्य अर्थात् वेद और उसका उपविभाग अर्थात् संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद दार्शनिक अवधारणाओं से परिपूर्ण हैं। दर्शन सिद्धांतों के मूल सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है, जहां विज्ञान व्यावहारिक पहलुओं को प्रस्तुत करता है ये मूलभूत सिद्धांत। आयुर्वेद, सबसे ज्यादा पवित्र, प्राचीन चिकित्सा विज्ञान, अथर्व का उपवेद वेद, दार्शनिक पृष्ठभूमि वाला आयुर्वेद है वेद जैसे कई भारतीय साहित्य के करीब, कुछ विद्वानों के अनुसार उपनिषद, पुराण आदि आयुर्वेद पांचवां और स्वतंत्र वेद है। लोक-आयुर्वेद का पुरुष साम्यसिद्धांत इंगित करता है ब्रह्मांड और एक व्यक्ति की समानता ''पुरुषो'' के रूप में अयं लोकसम्मित:। प्रसिद्ध वैदिक कहावत 'यत्' 'पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' भी इसी विचार को व्यक्त करता है। शरीर की संरचना शरीर की संरचना को दर्शाती है ब्रह्मांड। छह तत्व अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अव्यक्त ब्रह्म से लोक बनता है (ब्रह्मांड); एक व्यक्ति भी उसी से मिलकर बनता है मामला। दर्शनशास्त्र की ऐसी बुनियादी अवधारणाएँ और मनोविज्ञान का वर्णन दोनों ग्रंथों में मिलता है-आयुर्वेद भी और श्रीमद्भगवद्गीता भी। श्रीमद्भगवत गीता, सबसे लोकप्रिय और मशहूर डायलॉग भगवान श्री कृष्ण और उनके शिष्य अर्जुन के बीच; 6 के अध्याय संख्या 25 से 42 में वर्णित है पर्व प्रसिद्ध महाकाव्य महाभारत का भीष्मपर्व। श्रीमद्भगवद्गीता तीन मूल ग्रंथों में से एक है वेदांत दर्शन-प्रस्थानत्रयी। इसे स्मृति कहा जाता है प्रस्थान। अन्य दो उपनिषद और ब्रह्मा हैं सूत्रों को श्रुति प्रस्थान और युक्ति प्रस्थान के नाम से जाना जाता है क्रमश: कुरूक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में समस्त उपनिषदों का अमृत, महान अमर गीत भगवान श्री कृष्ण द्वारा गाया गया था। श्रीमद्भागवत गीता में 18 अध्याय और लगभग 700 श्लोक हैं (छंद)। पहले छह अध्याय कर्म योग से संबंधित हैं, अगले छह अध्याय अर्थात् 7वें से 12वें अध्याय तक का वर्णन किया गया है भक्ति योग जहां अंतिम छह अध्याय हैं। यानी 13 तारीख से 18वाँ अध्याय ज्ञान योग से संबंधित हैं। मानव मन युद्ध का मैदान है, संघर्ष के साथ कोई नहीं रह सकता, न ही कोई रह सकता है मन को अस्थायी रूप से असंवेदनशील बनाकर संघर्ष का समाधान करें दवाओं या अन्य साधनों से; सभी कार्य किए गए किसी के जीवन में प्रयास करना दो श्रेणियों में आता है कुछ, और कुछ अन्य चीजों से छुटकारा पाना, में संस्कृत में इन्हें प्रवृत्ति और निवृत्ति कहा

जाता है क्रमशः श्रीमद् से सभी समाधान मिल सकते हैं भगवत गीता; अगर कोई छुपे हुए को समझ ले तदनुरूप व्याख्या और अभ्यास, सभी द्वंद्व हल हो जाएगा। श्रीमद्भगवद्गीता की यही अवधारणा है आयुर्वेद के समान, क्योंकि आयुर्वेद ही नहीं है

चिकित्सा विज्ञान लेकिन यह इस जीवन के लिए भी वर्णित है जीवन से परे के लिए, श्रीमद् का चरम लक्ष्य भगवद गीता अर्जुन को इस बात का एहसास कराने के लिए थी तथ्य-सत्य-वास्तविक ज्ञान। यहाँ अर्जुन एक के रूप में है आम आदमी का प्रतिनिधि। बिल्कुल वही लक्ष्य आयुर्वेद का है। आचार्य सुश्रुत जन्म और मरण के अनुसार जब तक आत्मा को मुक्ति नहीं मिल जाती, तब तक ये 'स्वाभाविक रोग' हैं जन्म और मृत्यु का यह चक्र चलता रहेगा। इस तरह आचार्य चरक छुटकारा पाने के लिए नैष्ठिकी चिकित्सा बताते हैं इस भावरोग का। इस समीक्षा लेख में प्रयास किया गया है कि ऐसे दार्शनिक पहलुओं को उजागर करने के लिए बनाया गया है श्रीमद्भगवद्गीता में आयुर्वेद मिलता है।

पाणिनीय व्याकरण में आयुर्वेद : इसमें कुछ शब्द ऐसे हैं जिनसे आयुर्वेद साहित्य का पता चलता है जैसे रोगों के नाम आदि। चरक संहिता में आये जनपद आदि शब्दों का अर्थ पाणिनीय व्याकरण से ज्ञात होता है सूत्रकाल में भारत अनेक जनपदों में विभक्त था। काशिकरकार में ग्रामों के समुदाय को जनपद कहा है।

पाणिनी ने चरक के अनुसार शिष्य तीन प्रकार के बताये हैं माणव अन्तेवासी और चरक (बिना उपनयन के वाद, चलने-फिरने वाले) अष्टाध्यायी में कुछ रोगों के नाम मिलते हैं जैसे-

सिध्मादिभ्यश्च से सिध्मलः अर्शाः

आदिम्योडच् से अर्शसः लोमादि पामादि

पिच्छादिम्यः शनेलच से पामनः शब्द बनता है। इसके अविस्कि रोगों के नाम भी सिद्ध किये गये हैं। जैसे—प्रवाहिकातः कासनः छर्दिकातः तथा विषज्वर के लिये द्वितीयकः चतुर्थकः आदि भी हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृत वाङ्गय में मानव जीवन से सम्बन्धित स्वास्थ्य के हर पहलू का वर्णन मिलता है किन्तु अथर्ववेद का उपवेद होने के कारण आयुर्वेद का वर्णन विस्तृत रूप से अथर्ववेद में है अन्य में आयुर्वेद के विचारों की उपयोगिता अवश्य दिखती है।

***पीएच-डी, संस्कृत**

त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय

****सह-प्राध्यापक**

त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय

सन्दर्भ सूची

1. तस्यायुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः।
   वक्ष्यते यन्मनुष्ययाणां लोकयोरुभयोर्हतम्।।
2. विद्यां चाडविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
   अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाडमृतश्नुते।।
3. मन एव मनुष्यानां कारणं बन्धामोक्षयोः।
   मैत्रायणी सं, 4/11
4. अग्निष्कृणोतु भेषजम्। अथर्व. सं, 6/106/3
5. सर्वोषा च क्रिमीणां सर्वा सां क्रिमीणाम्। भिनद्मयशमना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्। अथर्न. सं 5/23/13

सहायक ग्रन्थ

1. चरकसंहिता- पं. काशीनाथ शास्त्री, चौखम्वा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.
2. सुश्रुतसंहिता,-डा. अम्बिका दत्तशास्त्री, चौखम्वा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.
3. अष्टाङ्गहृदयम् - व्याख्या- कविराज अत्रिदेव गुप्त, चौखम्वा संस्कृत संस्थान, वाराणसी.
4. भावप्रकाशनिघण्टु, व्याख्या - पं. विश्वनाथ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
5. अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन - डा. कपिलदेव त्रिवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद, वाराणसी.
6. अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र- पं. प्रियरत्न आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि), सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली.
7. वैदिक साहित्य में शल्यचिकित्सा - डा. रामजीत विश्वकर्मा, राहुल प्रकाशन, वाराणसी.
8. देवीभागवत् - गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2073.
9. महाभारत - गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2052.
10. रामायण - गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2036.

डॉ. राम किशोर यादव

'बेटी-वियोग' में चित्रित सामाजिक यथार्थ

शोध-सार : *समाज में घटित होने वाली संपूर्ण घटनाओं को साहित्य में चित्रित किया जाता है। समाज के भीतर विद्यमान वर्गीय संरचना में स्त्री की स्थिति का यथार्थ निहित रहता है। विभिन्न प्रकार के साहित्य में समाज के विविध रूपों को दर्शाया जाता है। लोकसाहित्य में बड़े ही सटीक रूप में सामाजिक यथार्थ को सामने लाने का प्रयास किया गया है। लोक में विद्यमान सभी चीजों पर पैनी नजर रखी गई है। 'बेटी-वियोग' नाटक भिखारी ठाकुर का एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज है जिसमें बेटी की पीड़ा को उजागर किया गया है। माना जाता है कि स्त्री के दो ही घर होते हैं या तो पिता का घर नहीं तो पति का घर। अगर दोनों जगह उसे तिरस्कार मिले तो वह क्या करे? कहाँ जाये? किससे कहे? वह अपनी समस्या को नहीं कह पाती है। कई बार सामाजिक मर्यादा, कुल की रीति रिवाज का हवाला दिया जाता है तो कई बार पिता की इज्जत के नाम पर उसे ठगा जाता है।*

'बेटी-वियोग' नाटक में बेटी उपातो का जीवन संघर्ष और पीड़ा का मार्मिक रूप विद्यमान है। वह सब कुछ सह लेती है। उसे बुर्जुग के साथ विवाह कर दिया जाता है। पिता रुपये लेकर उसका विवाह करते हैं। यह भारतीय आदर्श मरजाद की हत्या है। हम अपनी बेटी के विवाह के बदले रुपये नहीं लेते बल्कि जिससे जितना बनता है उतना देते ही हैं।

लोक साहित्य में ग्रामीण स्त्री की स्थिति का समस्त रूप परिलक्षित होता है। भिखारी ठाकुर ने स्त्री जागरण का कार्य किया है। स्त्री की समस्याओं को उठाकर ग्रामीण समाज में विद्यमान समस्याओं को सामने लाया है। अशिक्षित स्त्री के दर्द को उन्होंने प्रत्यक्ष लाकर समाज को एक नयी दिशा प्रदान की है। प्रो. तैयब हुसैन 'पीड़ित' ने लिखा है, ''लोकनाटकों के चरित्र जिस समाज और वातावरण में पलते हैं उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। ये प्राय: परिचित और प्रचलित समाजगत प्रवृत्ति के वाहक होते हैं।''[1]

'बेटी-वियोग' भिखारी ठाकुर का प्रमुख नाटक है। बेटी-वियोग नाटक 'बेटी बेचवा' नाम से लोकप्रिय है। इसमें चटक अपनी पत्नी लोभा से अपनी बेटी उपातो की शादी के लिए विचार-विमर्श करता है। दोनों सोचते हैं कि हमारे पास इतना धन नहीं है कि दहेज देकर उपातो का विवाह किया जाए। चटक अपनी पत्नी को समझाता है कि रुपये लेकर उपातो का विवाह कर देते हैं। इसमें हमारा कर्ज भी चुक जायेगा और बेटी का विवाह भी हो जायेगा। आस-पड़ोस के लोग, जाति बिरादरी के लोग उन्हें बार-बार कहते थे कि बेटी का विवाह कर दो। चटक की पत्नी लोभा को भी गांव की महिलाएँ टोकती थीं। चटक के पास धन का अभाव था। दोनों प्राणी मायूस थे। गांव के पुरोहित पंडित जी से मिलकर बेटी का विवाह ऐसे व्यक्ति से करने का निर्णय लेते हैं जो वृद्ध है। उसकी मृत्यु कभी भी हो सकती है।

बेटी-वियोग नाटक की मुख्य पात्रा बेटी उपातो है। उपातो के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने समाज में स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डाला है। वह क्या करे? किससे शिकायत करे? यह गंभीर समस्या है। यह पिछड़ी जाति में जन्मे उपातो की करुण दास्तान है। उपातो समाज में घटित हो रहे इस प्रकार के कार्यों का जीवन्त प्रमाण है।

यह ग्रामीण जीवन का यथार्थ है। इसमें भावात्मकता है।

यथार्थ निरूपण है। प्रामाणिकता है, जीवन का एक एक्स-रे किया गया है। यह सब न चाहते हुए भी उपातो को झेलना पड़ता है। उपातो के द्वारा संपूर्ण समाज के यथार्थ को उभारकर रख दिया है। यह जीवन संघर्ष से भरा है। उपातो का जीवन दुखमय है। उसे अब कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ रहा है अन्तत: वह पति के घर लौटने के लिए विवश है। आर्थिक रूप से सबल न होना स्त्री के लिए संकट का कारण है। इसका यथार्थ विवरण भिखारी ठाकुर ने बेटी-वियोग नाटक में मिलता है। इस बदलते समय में हमें सभी चीजों पर दृष्टि रखनी होगी।

समाज में घटित होने वाली संपूर्ण घटनाओं को साहित्य में चित्रित किया जाता है। समाज के भीतर विद्यमान वर्गीय संरचना में स्त्री की स्थिति का यथार्थ निहित रहता है। विभिन्न प्रकार के साहित्य में समाज के विविध रूपों को दर्शाया जाता है। लोकसाहित्य में बड़े ही सटीक रूप में सामाजिक यथार्थ को सामने लाने का प्रयास किया गया है। लोक में विद्यमान सभी चीजों पर पैनी नजर रखी गई है। 'बेटी-वियोग' नाटक भिखारी ठाकुर का एक ऐसा प्रामाणिक दस्तावेज है जिसमें बेटी की पीड़ा को उजागर किया गया है। माना जाता है कि स्त्री के दो ही घर होते हैं या तो पिता का घर नहीं तो पति का घर। अगर दोनों जगह उसे तिरस्कार मिले तो वह क्या करे? कहाँ जाये? किससे कहे? वह अपनी समस्या को नहीं कह पाती है। कई बार सामाजिक मर्यादा, कुल की रीति रिवाज का हवाला दिया जाता है तो कई बार पिता की इज्जत के नाम पर उसे ठगा जाता है।

'बेटी-वियोग' नाटक में बेटी उपातो का जीवन संघर्ष और पीड़ा का मार्मिक रूप विद्यमान है। वह सब कुछ सह लेती है। उसे बुर्जुग के साथ विवाह कर दिया जाता है। पिता रुपये लेकर उसका विवाह करते हैं। यह भारतीय आदर्श मरजाद की हत्या है। हम अपनी बेटी के विवाह के बदले रुपये नहीं लेते बल्कि जिससे जितना बनता है उतना देते ही हैं।

'गोदान' में होरी अपनी दूसरी बेटी का विवाह 200 रुपये लेकर करता है। रामविलास शर्मा ने लिखा, ''होरी को दरवाजे पर खड़ा कर दिया जाता है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है। कितना घृणित कार्य किया है। इसमें समाज के भीतर विद्यमान समस्याएँ मुखरित हुई हैं।''

भिखारी ठाकुर ने ग्रामीण समाज की सच्ची तस्वीर हमारे सामने पेश की है। एक पिछड़े गांव की स्थिति का वर्णन किया है। सामाजिक और आर्थिक रूप से निम्नस्तरीय समाज का यथार्थ चित्रित किया है। साहित्य में स्त्री विमर्श के अन्तर्गत अनेक रचनाएं की गई हैं। स्त्री ही अपनी पीड़ा को वाणी दे सकती है। स्त्री होने के नाते स्त्री स्वानुभूति के आधार पर अपनी स्थिति का आकलन कर सकती है। स्त्री विमर्श व्यापक रूप में स्त्री के जीवन के अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालता है। आधुनिक समय में स्त्री लेखन में परिवार व वैयक्तिक जीवन से जुड़ी समस्याओं को उजागर किया गया है। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, ऊषा प्रियवंदा, शिवानी, ममता कालिया, नमिता सेठ, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री के जीवन के विविध पक्षों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। विभिन्न प्रकार की रचनाओं में उनके दर्द को चित्रित किया गया है।

लोक साहित्य में ग्रामीण स्त्री की स्थिति का समस्त रूप परिलक्षित होता है। भिखारी ठाकुर ने स्त्री जागरण का कार्य किया है। स्त्री की समस्याओं को उठाकर ग्रामीण समाज में विद्यमान समस्याओं को सामने लाया है। अशिक्षित स्त्री के दर्द को उन्होंने प्रत्यक्ष लाकर समाज को एक नयी दिशा प्रदान की है। प्रो. तैयब हुसैन 'पीड़ित' ने लिखा है, ''लोकनाटकों के चरित्र जिस समाज और वातावरण में पलते हैं उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। ये प्राय: परिचित और प्रचलित समाजगत प्रवृत्ति के वाहक होते हैं।''[1]

'बेटी-वियोग' भिखारी ठाकुर का प्रमुख नाटक है। बेटी-वियोग नाटक 'बेटी बेचवा' नाम से लोकप्रिय है। इसमें चटक अपनी पत्नी लोभा से अपनी बेटी उपातो की शादी के लिए विचार-विमर्श करता है। दोनों सोचते हैं कि हमारे पास इतना धन नहीं है कि दहेज देकर उपातो का विवाह किया जाए। चटक अपनी पत्नी को समझाता है कि रुपये लेकर उपातो का विवाह कर देते हैं। इसमें हमारा कर्ज भी चुक जायेगा और बेटी का विवाह भी हो जायेगा। आस-पड़ोस के लोग, जाति बिरादरी के लोग उन्हें बार-बार कहते थे कि बेटी का विवाह कर दो। चटक की पत्नी लोभा को भी गांव की महिलाएँ टोकती थीं। चटक के पास धन का अभाव था। दोनों प्राणी मायूस थे। गांव के पुरोहित पंडित जी से मिलकर बेटी का विवाह ऐसे व्यक्ति से करने का निर्णय लेते हैं जो वृद्ध है। उसकी मृत्यु कभी भी हो सकती है।

गांव में जब लोगों को पता चलता है कि चटक अपनी बेटी का विवाह वृद्ध व्यक्ति से कर रहा है तो गांव में काफी हंसी उड़ायी जाती है। बूढ़ा पति और कमसिन पत्नी। इस प्रकार की शादी को गांव के लोग अच्छा नहीं मानते। इसे गांव के लोग लड़की बेचना कहते हैं। इस प्रकार इस नाटक के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

गांव के एक पण्डित की मदद से चटक गांव बकलोलपुर में जाकर झॉटूल नामक वृद्ध व्यक्ति से रुपये लेकर विवाह तय कर दिया जाता है। उस वृद्ध व्यक्ति को अंतिम समय में सेवा के लिए एक व्यक्ति की जरूरत थी। जब गांव के लोगों और पड़ोसिनों को पता चला तो उन्होंने अपना माथा पीट लिया। चटक सोलह सौ रुपये में अपनी बेटी का विवाह तय कर देता है। पण्डित को दो सौ रुपये देने का वायदा करता है। जाति बिरादरी के लोग उसे बहिष्कृत करने की धमकी देते हैं पर उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

बेटी उपातो ने जब अपने पति को देखा तो वह शोक में डूब गई। भारतीय ग्रामीण पुत्री अपने माता-पिता द्वारा चुने गये वर का विरोध नहीं करती। कन्या से वर के बारे में राय भी नहीं ली जाती है। बेटी रोती है, बिलखती है परन्तु परम्परा के अनुसार विदा होकर वह पति के घर चली जाती है। सुसराल में जब उसे लगा कि पति से सुख नहीं मिल सकता तो वह भागकर मायके आ जाती है। पीछे-पीछे उसका पति आ जाता है। अन्ततः निराश होकर पिता की इज्जत खातिर वह पुनः विदा हो जाती है। इसमें बेटी उपातो की पीड़ा का मार्मिक रूप चित्रित है।

बेटी-वियोग में उपातो अपने पिता से सवाल करती है। इसका चित्रण भिखारी ठाकुर ने किया है-

''रोपेया गिनाइ लिहलऽ, पगहा धराइ दिहलऽ,
चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबूजी।
बर खोजे चलि गइलऽ, माल लेके घर में धइलऽ
दादा लेखा खोजलऽ, दुलहवा हो बाबूजी,
कहत भिखारी तू खरारी को इयाद कर?
फेरू मति करिह अइसन काम तू हो बाबूजी।''[2]

बेटी-वियोग में उपातो के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। बेटी माता-पिता के घर कठिन परिश्रम करती है। पिता उसकी शादी रुपये लेकर करते हैं। यहां भारतीय समाज में विद्यमान दहेज प्रथा के कारण अनमेल विवाह की कठिन और दुःखदायक समस्या का चित्रण है। समाज में व्याप्त बाल-विवाह का वर्णन मिलता है। बाल-विवाह में बेटी को वैविध्य जीवनयापन करना पड़ता है। समाज में विधवा की स्थिति दयनीय है। 'विधवा विलाप' में इसका यथार्थ चित्रण किया गया है।

बेटी-वियोग नाटक की मुख्य पात्रा बेटी उपातो है। उपातो के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने समाज में स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डाला है। वह क्या करे? किससे शिकायत करे? यह गंभीर समस्या है। यह पिछड़ी जाति में जन्मे उपातो की करुण दास्तान है। उपातो समाज में घटित हो रहे इस प्रकार के कार्यों का जीवन्त प्रमाण है। यह संपूर्ण समाज की विकट समस्या है। उपातो के पिता किसान हैं। वे कर्ज में डूबे हुए हैं। वे अपनी पुत्री का विवाह करना चाहते हैं। उनके लिए पुत्री की शादी एक समस्या है। चटक अपनी पत्नी लोभा से कहता है-

''चटक : (अपनी पत्नी लोभा से) ऐ प्रानप्यारी, बबुई के कतह सादी करे के चाहीं, ई बात के हमरा मन में बहुत फिकिर भइल बा।

लोभा : हइसे सादी होई, हाथ पर त एह धरी एको पइसा नइखे।

चटक : पइसा नइखे, त एकर उपाय हम रचि नूं दीहीले।

लोभा : ए रवों, कवन उपाय रचब?

चटक : जहवाँ सदिया कइल जाई, तहवाँ से कुछ रोपेया ले लियाई। जेह से सदियो हो जाई आ ऊ खेतवा बाइल बा, तवनो छूट जाई।''[3]

पति-पत्नी के बीच यहाँ संवाद काफी प्रभावी है। किस प्रकार रुपये लेकर बेटी की शादी करने का निर्णय लेते हैं। यहाँ भारतीय समाज की मर्यादा को ठेस पहुंचती है। चटक द्वारा रुपये लेकर बेटी की शादी तय करना समाज के लिए अस्वीकार्य है। उसके जाति-बिरादरी में बदनामी हो रही है। गांव के लोग उसे भला-बुरा कहते हैं। चटक भी इस बात से भयभीत है। उसे भी भाई, पट्टीदार, गोतिया से डर लगता है। भाई-पट्टीदार लोग इस शादी का विरोध करते हैं। भिखारी ठाकुर ने संवाद के माध्यम से स्थिति की गंभीरता को स्पष्ट कर दिया है। उसका एक रूप बेटी-वियोग में दृष्टव्य है-

''गोतिया : तोहरा बुझात नइखे? लड़की पर रोपेया लेके सादी करतारऽ तोहरा के केहू भाई में ना

खिआई।

चटक : हम अकेले रहब।

गोतिया : तोहरा से केहू छुतिहरो ना छुआई, नरिअर-हूका तोहार बंद कर दिआई।''[4]

इस प्रकार जाति बिरादरी द्वारा हुक्का-पानी बंद कर दिया जाता है। समाज में अगर कोई व्यक्ति सामाजिक नियम को तोड़ता है तो उसे समाज बहिष्कार कर देता है। यह बहुत ही प्राचीन और जाँचा-परखा फार्मूला है। इससे समाज में एक व्यवस्था बनी रहती थी। समाज का व्यक्ति कोई भी गलत काम करने से डरता था। भिखारी ठाकुर ने समाज में व्याप्त स्थिति का स्पष्ट विवरण देते हैं, यह समाज सुधार का कार्य भी है। यह लोग में घटित हो रहे क्रिया-व्यापारों का एक रूप है। भिखारी ठाकुर ने गोतिया के संवाद द्वारा ऐसे व्यक्तियों की निन्दा की है जो बेटी बेचने का काम करते हैं।

''गोतिया : बेटी बेंचि के धइलऽ माल।
तोहरा सिर पर चढ़ल काल।
चढ़ल बंस के पानी गइल।
जब से तोहार जबाना भइल।
अइसन बंस में जमलऽ क्रूर।
दया-धरम के कइलऽ दूर।''[5]

भिखारी ठाकुर ने दया-धर्म, मान-मर्यादा सामाजिक जीवन में मौजूद सभी स्थितियों का बृहद विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने समाज में जागृति लाने का प्रयास किया है। यह भिखारी ठाकुर का सामाजिक योगदान है। इसे मिटाया नहीं जा सकता।

सामाजिक जीवन में हो रहे हलचलों का चित्रण करके भिखारी ठाकुर ने साफ संदेश दिया है कि सामाजिकता एवं नैतिक मूल्यों में कोई समझौता नहीं हो सकता। समाज में पुरोहित वर्ग को सम्मान दिया जाता है। उनके कथनानुसार ही सभी क्रिया कर्म किये जाते हैं। गांव में जब बारात आती है तो विधि विधान से पंडितजी पूजा कराते हैं। विवाह का संपूर्ण कार्य पंडितजी के हवाले होता है। ग्रामीण महिलाएं गीत गाती हैं। बारात के आगमन के समय, विवाह के समय और दूल्हा के परिछन के समय भी गीत गाये जाते हैं। ये लोक में विद्यमान है। यहां ग्रामीण जीवन का सौन्दर्य विद्यमान है। भिखारी ठाकुर ने इन गीतों को सहज एवं संप्रेष्य बनाया है। इसका एक रूप दृष्टव्य है–

''चलनी के चालल दुलहा, सूप के झटकारल हे,
दिअका के लागलवर, दुआरे बाजा बाजल हे।
आवाँ के पाकल दुलहा, झाँवा के झारल हे;
कलछुल के दागल, बकलोलपुर के भागल हे।
सासु के अँखिया में अन्हवट बा छावल हे;
आई कर देखऽ बर के पान चभुलावल हे।
आम लेखा पाकल दुलहा, गाँव के निकालल हे;
अइसन बकलोल बर चटक देवा का भावल हे।
मउरी लगावल दुलहा, जामा पहिरावल हे;
कहत 'भिखारी' हवन राम के बनावल हे।''[6]

इस गीत में दुल्हा का रूप वर्णन है। सखियों ने वर के बारे में सब कुछ कह दिया है। सखियां भी ताना मारती हैं कि चटक को कोई और लड़का नहीं मिला। वृद्ध व्यक्ति को खोजने गया था। विवाह रूपी शुभ कार्य में व्यवधान को नहीं डालना चाहिए इसलिए सभी लोग विवाह में मन के भाव को दबाकर शामिल होते हैं।

उपातो पर क्या बीतता होगा। यह सहज ही संप्रेषणीय है। उसके जीवन में तो अंधेरा ही आने वाला है। किसी बेटी के लिए इससे ज्यादा दुखद और क्या हो सकता है। यह अत्यन्त दुखदायी है। इसके माध्यम से भिखारी ठाकुर ने स्त्री की पीड़ा का चित्रण किया है। गांव में गुरहथी के झूमर गीत गाये जाते हैं। इसका एक रूप बेटी-वियोग में वर्णित है।

''कलसा का ऊपर चवसुख दीहल बार हे,
पंडित जी काल बाड़न बेद के उचार हे।
गहना ले अइलन भसुर सब वजनदार हे,
मथिया गोडाँव, कँगना पहुँची कलदार हे।
हीरा-काट हँसुली, हैलका अजबे विस्तार हे,
अँचरी-मनोरी नव नागा चन्ड़हार हे।
कमरकस डोडा किनल कवना बजार हे।
के इ बनावल अइसन रचि-रचि सोनार हे?
सारी चढ़वल हमार धँगलऽ दरबार हे(
दही-पान के टीका दे के छुअल लिलार हे।
माडों में अइलऽ लिहलऽ गउरी निहार हे,
कवना दो देस के बउराह बनिहार हे।
देवे के करत वा मन गारी हमार हे,
माई तोहार कइली कतने इयार हे।
प्रेम के गारी लेलऽ पटुका पसार हे,
बड़ बनके अइलऽ छोटा भाई का ससुरार हे।
गाई के भिखारी ठाकुर कइलन परचार हे,

कुतुबपुर गाँव बाटे गंगा किनार हे।''[7]

भिखारी ठाकुर ने यथार्थ को विश्लेषित किया है। वह जमीन से जुड़े हैं। बार-बार अपनी जाति और गाँव का नाम लेते हैं। इससे ज्यादा और प्रमाण की न जरूरत है और न संभावना ही। यह सामाजिक जीवन का यथार्थ है। विवाह के समय पंडित जी कहते हैं कि इतना ज्यादा शादी विवाह करवाये हैं पर ऐसा बोलने वाला दुल्हा नहीं देखा है। एक सखी पंडित जी से कहती है कि मैंने भी बहुत से शादी देखे हैं पर ऐसा दुल्हा नहीं देखी हूं।

पंडित जी और सखी के कथन से स्पष्ट है कि दुल्हा किस प्रकार का है। उदाहरणस्वरूप-

''पंडित : आछा, बहुत सादी-बिआह हम करवली, बा अइसन सुधर लड़िका मड़वा में हम ना देखले रहलीं हाँ।

एक सखी : ए पंडीजी, हमहूँ नइहरे-ससुरे अतना सादी-बिआह देखलीं, बाकी अइसन बोलतू लड़िका से हमरा ना भेंट भइल रहल हा।''[8]

विवाह के मंडप में पंडित जी के साथ सखी बात करते हुए कहती है कि हे पंडित जी! लड़का देखने तो आप ही गये थे। ऐसा वर क्यों खोजकर लाए हैं। पंडित जी बार-बार अपने तर्क के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं कि इस लड़के में क्या कमी है? इतना अच्छा घर-बार है। लड़की का जीवन सुखमय रहेगा। सब सखियाँ कहती हैं कि यह तो पके हुए आम के जैसा वर खोजे हैं। इस पर भी पंडित जी उन्हें समझाते हैं। वे हर प्रकार से अपनी गलती नहीं मानते हैं। वे अपने निर्णय को सही साबित करने में लगे रहते हैं।

गांव की सभी स्त्रियाँ तर्क देकर कहती हैं कि हमने अनेक प्रकार के विवाह देखे हैं। पर ऐसा विवाह कभी नहीं देखा। ऐसा लड़का नहीं देखा। आप क्या सोचकर ऐसे वर को खोजे हैं। स्त्रियों की चिंता जायज है। वे कहती हैं हम इतनी छोटी उम्र की लड़की का विवाह एक वृद्ध से तय कर दिये हैं, ग्रामीण समाज के लोभ में पड़कर जो विवाह किया जाता है उसका यथार्थ रूप प्रतिबिम्बित हो रहा है। यह समाज में घटित हो रहे अनमेल विवाह की घटना का प्रमाण है।

ग्रामीण परिवेश में विवाह का जो रूप मिलता है उसका यथार्थ चित्रण किया गया और सभी लोग विवाह में शामिल होकर अपना आशीर्वाद लड़की को देते हैं। उसके मंगल भविष्य की कामना करते हैं। स्त्रियाँ खुश होती हैं। वे मिल-जुलकर गीत गाती हैं। यह शुभ समय में होता है।

विवाह का कार्य सम्पन्न हो जाने पर पंडित जी अपना हिस्सा माँगते हैं। चटक और पंडित जी के बीच बातचीत होती है। चटक बारात को विदा करने के बाद हिसाब करने की बात करता है। पंडित जी चटक से कहते हैं कि सोलह सौ रुपये में से दो सौ रुपये देने की बात थी; चटक की पत्नी पंडित जी को भोजन करने के लिए कहती है। ग्रामीण समाज में यह माना जाता है कि जब तक पंडित जी भोजन न करे, कार्य शुभ नहीं होता। सभी लोग पंडित जी को मनाकर भोजन करने के लिए राजी करते हैं। ऐसे समय ग्रामीण स्त्रियाँ झूमर गाती हैं। भिखारी ठाकुर के नाटक में गीतों की भरमार है। जैसे-

''काँचे नींद दिहलन जगाइ हो, ननद तोहार भइया आँख भरमत रहे भवन में सेज पर झटकि के देवर मोर धइलन कलइया।

नइहर जाइब त जल्दी ना आइब, सधा लेहब दइया।

चोरी के बात हम तोहरा से कहलीं, लगइहऽ मति लइया।

कहत भिखारी भगवान के भरोसा बा, भव से पार कर द नइया।''[9]

इन गीतों में सामाजिक जीवन का यथार्थ दिखाया गया है। इसमें भावात्मकता है। जीवन की सच्चाई एकदम सामने लायी गई है। लड़की की विदाई होती है। विदाई के समय सभी सखियाँ उदास हो जाती हैं। अपने गीतों में अपनी पीड़ा को व्यक्त करती हैं। कहार जब डोली लेकर चलते हैं तो सखियाँ झूमर गीत गाकर उस दृश्य को सामने लाती हैं। भिखारी ठाकुर ने इसका वर्णन किया है-

''दुल्हिन के ले चललन ससुरा कहार
सुदि अगहनवां में, बबुइ का गवना में,
झूमर गवाइल लहरदार। दुल्हिन के...
मिलल कुटुम्ब राजा, लेके अइसन बेन बाजा;
डोलिया के अजब ओहार। दुल्हिन के....
रोअत समइली डोली, गोली लागत,
बोली माई-बाप कहत पुकार। दुल्हिन के....
कहत भिखारी नाई, ससुरा पहुंचली जाई,
भइल भउजाई के दुवार। दुल्हिन के....''[10]

उपातो जब रोती है तो समाज में सभी लोग रोने लगते हैं। उसके जीवन की परिकल्पना करके सभी व्याकुल हो

जाते हैं। इस अनमेल विवाह से समाजी लोग बहुत दुःखी हैं। बेटी उपातो अपने माँ से रो-रोकर विलाप करती हुई कह रही है–

''जमते मइया माहुर दे के, काहे ना दिहलू मारी?
हमरा के नाहक पालन करे में सासत सहलू भारी॥
आठ मास नव उदर का भीतर, बाहर गोद मँझारी।
दूध पिया के, तेल लगा के, काया के दिहलू सवारी॥
बानी बालक बयस के थोरी, नइखे बुद्धि-बिचारी।
जो कुछ चूक होई अब हम से, परतानी पाँव तिहारी।
कहे 'भिखारी' मति द मइया घर से हमें निकारी॥''[11]

बेटी उपातो का विलाप हृदय को भेद देता है। वह अपने जीवन को याद करके दहाड़ मार-मारकर रोती है। माता से कहती है कि हमें पहले ही क्यों नहीं मार दिया। 'हाय-पिता, हाय मइया' संबोधित करके वह निरन्तर रोती रहती है। समाज में इसका दृश्य हृदय विदारक होता है। इन सभी पक्षों पर भिखारी ठाकुर की दृष्टि गई है।

गांव में फिर सभी लोग मिलकर बारात की विदाई करते हैं। यह बेटी की विदाई के बाद ही होता है। दुल्हा के विदाई के साथ सभी बारातियों की विदाई हो जाती है। उपातो अपने ससुराल में जाकर सब कुछ देखती है। वह अपने जीवन का मूल्यांकन करती है। वह सोचती है कि घर-बार तो अच्छा है पर पति के जाने के बाद मेरा क्या होगा? यह सोचकर वह व्यथित हो जाती है। अपने भाग्य को कोसती है। बार-बार अपने माता-पिता को कोसती है। वह सोचती है कि मैंने क्या गलती की है जिसका फल यह मिला है। वह ईश्वर से गुहार लगाती है कि मेरे जीवन में क्या हो गया? अब मेरा जीवन कैसे चलेगा? उपातो यह सोचकर सिहर उठती है। उसे अपना भविष्य अंधकारमय लगता है। उपातो व्यथित है, दुःखी है। वह सोच-सोचकर परेशान है। ऐसे समय में वह निर्णय लेती है कि मुझे अपने पिता के घर वापस जाना है। वह भागकर पिता के घर चली जाती है। उसके पीछे-पीछे लाठी लेकर उसका पति भी पहुंच जाता है। वह लाठी से पीटने का प्रयास करता है। एक आदमी लाठी पकड़ लेता है। दुल्हा कहता है कि यह मेरी एक भी बात नहीं सुनती है। एक लोटा पीने के लिए पानी तक नहीं देती है। लड़के का अपना दुख है पर उपातो तो अपने जीवन को लेकर चिंतित है। घर के आंगन में सभी लोग इकट्ठे हो जाते हैं। चटक और दुल्हा के बीच नोक-झोंक हो जाती है। दुल्हा सौलह सौ रुपये की बात करता है। चटक उसे चुप रहने को कहता है। इस विवाद में गांव के पंच लोग आकर फैसला करने लगते हैं। सास लोभा क्रोधित होकर दुल्हा पर प्रहार करने की बात करती है। वह कहती है कि उनको समझा दीजिए नहीं तो सिर पर हंड़िया उठाकर मार दूंगी। पंच बीच-बचाव करते हैं। दुल्हा और लोभा के बीच नोक-झोंक का सटीक वर्णन भिखारी ठाकुर ने किया है-

''लोभा (पंच से) ए रवों सुनीं। इनिका के हमरा दुआर प से खदेर दीं। ना त, हंडिया उठा के इनिकर कपारे फोरब। त जइसन हमरा बेटी का गोड़ में रूप बा, ओइसन एह करिखाहा का मुँह में रूप हइस?

पंच - अइसे ना कहे के।

दुलहा - हमरे रूप में तहार बेटी लगिहें? सोरह स रोपेया गना के कंठा-हंसुली पेन्हले चलतारु?''[12]

पंच के सामने लोभा के कथन सामाजिक सच्चाई का बयान है। पंच लोग मना करते हैं। पंचों के बीच-बचाव से रास्ता निकालने का प्रयास किया जाता है। उपातो को विदा करने का फैसला पंच सुनाते हैं। ग्रामीण समाज में बेटी के ऊपर घटित हो रहे यथार्थ का विवरण है। वह चाह कर भी विरोध नहीं कर पाती है। उसे पता है कि उसका जीवन बर्बाद हो गया है फिर भी अपने पिता की इज्जत के खातिर वह पुनः ससुराल जाने के लिए मजबूर है। अपने वैयक्तिक जीवन को दांव पर लगा चुकी है। उपातो के माध्यम से समाज में स्त्री की स्थिति का रेखांकन किया गया है।

भिखारी ठाकुर ने उपातो की माँ लोभा द्वारा किये गये इस कार्य की भर्त्सना करते हैं। उदाहरणस्वरूप-

''लोभा : अपने मन से भइलऽ भूपा। बेटी काटि के डललऽ कूप। बूढ़ा बर से सादी कइलऽ। गाँव-घर का चित से गइलऽ अइसन जग में कइल ना कोई। जिनगी भर मोर बबुई रोई। दिल से दया दूर कइ दिहलऽ अजस पातक सिर पर लिहलऽ। बाप ना हउअ हउअ भूत। अब ना बेटी खेलइहन पूत।''[13]

पिता के द्वारा किये गये गलत कार्य को यहाँ दिखाया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि गांव घर की नाराजगी झेलनी पड़ी। इससे अधिक वृद्ध वर के साथ बेटी का विवाह किया। परिणामस्वरूप जिन्दगीभर बेटी निपूत रहेगी। ग्रामीण समाज में बिना पुत्र के स्त्री की दशा का मार्मिक विवरण किया गया है।

माँ-बाप के कारण अगर पुत्री का जीवन बर्बाद हो

जाये तो इससे अधिक असहनीय और कुछ नहीं हो सकता है। उपातो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है जो पिता की गलती के कारण संपूर्ण जीवन दुख में काटने के लिए विवश है। उपातो फिर भी पिता की इज्जत का ख्याल रखती है। माता-पिता द्वारा पुत्री के तिरस्कार का इससे अधिक प्रमाण और क्या हो सकता है? बेटी उपातो के द्वारा उस वर का वर्णन भिखारी ठाकुर ने करवाया है। वह विलाप करती है। अपना दुःख रो-रोकर कहती है। अपने पिता से कहती है–

''बेटी उपातो :
लूजुर-लूजुर पिया, देखऽ मुँह लेके दिया।
कहीं कइसे कहे नइखे आवत हो बाबूजी।
मुँहवा में दाँत नाही, लार चुबेला गाल माही;
बावला प भीतरी सलंदर हो बाबूजी।
जीभ-दाँत-ओठ-गाल, पान से भइले बा लाल;
काल लेखा लागत बा सुरतिया हो बाबूजी।
रतिया के छतिया में बतिया जरेला मोरा,
बीच डललस बियवान मोर हो बाबूजी।''[14]

बेटी वियोग में उपातो का विलाप हृदय विदारक है। वह अपनी भयानक स्थिति का वर्णन का निम्नांकन किया गया है। वह कहती है कि मैं कैसे बताऊं कि मेरे साथ क्या-क्या हो रहा है। अपने जीवन को देखकर व्यथित है उपातो। उसको आगे अब दिखाई नहीं पड़ रहा है। वह सब कुछ देख रही है। यह उपातो का भोगा हुआ यथार्थ है। उपातो अपने पिता से, माँ से गुहार लगा रही है। उसके दुःख को कोई नहीं समझ सकता है। केवल वही समझ रही है और भोग रही है। उसकी कोई गलती नहीं है। माँ-पिता की गलती की सजा भोग रही है। पिता बेटी को समझाते हैं–

''सुमुखी सुलोचनी भवन मोरा,
सून करके आजुये से सपना हो गइलू मोर बबुई।
करिके बिचार हम मनवा में,
देखतानी दुनिया के नइहर दुलर्भ हो बबुई।
घर गाँव टोला वो परोसा परदेश पहिले से,
चललवा चलन अइसन बबुई।
बतिआ समुझी कर छतिआ में तिहा बान्ह,
करम लिखल बा से भोगऽ बबुई।
दुनिया के हाल देखी मन में सबूर कर,
राजा रंक एक तह होता मोरा बबुई।
पतिव्रत धर्म रखि एहि के आनन्द भाख,
इहे शिक्षा सीता से मिलल मोर बबुई।''[15]

उपातो को पिता हर प्रकार से समझाते हैं। सब भांति सात्वना देते हैं। भाग्य में जो लिखा है, उसे भोगना पड़ता है। मिथक के सहारे भिखारी ठाकुर ने संदेश दिया है। यह ग्रामीण जीवन का यथार्थ है। इसमें भावात्मकता है। यथार्थ निरूपण है। प्रामाणिकता है, जीवन का एक एक्स-रे किया गया है। यह सब न चाहते हुए भी उपातो को झेलना पड़ता है। उपातो के द्वारा संपूर्ण समाज के यथार्थ को उभारकर रख दिया है। यह जीवन संघर्ष से भरा है। उपातो का जीवन दुखमय है। उसे अब कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ रहा है अन्तत: वह पति के घर लौटने के लिए विवश है। आर्थिक रूप से सबल न होना स्त्री के लिए संकट का कारण है। इसका यथार्थ विवरण भिखारी ठाकुर ने बेटी-वियोग नाटक में मिलता है। इस बदलते समय में हमें सभी चीजों पर दृष्टि रखनी होगी। समाज की हर घटना पर पैनी नजर रखनी होगी। जीवन बहुमूल्य है। हर प्रकार के संकट झेलकर भी वह जीना चाहती है। इसमें जीवन को जीया भी गया है और जानने का भी प्रयास भी किया गया है।

एसोसिएट प्रोफेसर
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची

1. 'पीड़ित', तैयब हुसैन, भिखारी ठाकुर, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 57
2. भिखारी ठाकुर रचनावली, संपादक-प्रो. विरेन्द्र नारायण यादव व नगेन्द्र प्रसाद सिंह, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना 800004, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 91
3. भिखारी ठाकुर रचनावली, संपादक-प्रो. राम बुझावन सिंह, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना 800004, द्वितीय संस्करण 2011, पृ. 74
4. वही, पृ. 75
5. वही, पृ. 75
6. वही, पृ. 77
7. वही, पृ. 78-79
8. वही, पृ. 79
9. वही, पृ. 83
10. वही, पृ. 85
11. वही, पृ. 86
12. वही, पृ. 88
13. वही, पृ. 89
14. वही, पृ. 92
15. वही, पृ. 93

विशाल

हरियाणवी लोकगीतों में भारतीय समाज

शोध सार

लोकगीत वह है जिसमें लोगों के मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोकमानसाभास हो भी। ''लोकगीतों में जनजीवन का स्वाभाविक एवं सरल रूप प्रकट होता है। वहाँ किसी प्रकार की कृत्रिमता का निशान भी नहीं रहता। अतः किसी प्रदेश की जनता के हृदय को पहिचानने के लोकगीत उत्तम साधन सिद्ध होते हैं। ऐसे गीतों में लोक हृदय की आशा-अभिलाषा, चाव-उमंग एवं दु:ख-दर्द आदि सभी कुछ परिलक्षित होते हैं।''[1] वास्तव में लोकगीत हमें जिंदगी के यथार्थ, दुख-सुख, आशा-निराशा आदि से परिचित कराते हैं। लोकगीत लोक के गीत हैं जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। जीवन का कोई भाव, पहलू और कर्म ऐसा नहीं है जिसका चित्रण लोकगीतों में न होता हो। हरियाणा में लोकगीतों का हरियाणवी लोक-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन का हर पक्ष किसी न किसी रूप में इनसे जुड़ा हुआ है। हरियाणा में विभिन्न अवसरों पर लोकगीत गायन की परंपरा है। हरियाणवी लोकगीतों का विभाजन ऋतु, त्यौहार और प्रवृत्ति आदि के आधार पर कर सकते है ।

लोकगीत को परिभाषित करते हुए देवेंद्र सत्यार्थी लिखते हैं- ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।''[2]

किसी भी देश की संस्कृति का वास्तविक परिचय उस देश के लोक साहित्य से प्राप्त होता है। लोक साहित्य समाज की आत्मा का प्रतिबिंब होता है देश के जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और आर्थिक पदंड के लिए यदि कोई पैमाना हमारे पास देता वह देश का लोक साहित्य ही है। लोकगीत जनसामान्य के गीत है, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं, अपितु समस्त समाज अपनाता है। लोक गीत दो शब्दों 'लोक' और 'गीत' का योग है, जिसका अर्थ है - 'लोक के गीत'। समान्य तौर पर लोकगीत, लोक में प्रचलित, लोगों द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार गीतों के माध्यम से अपनी तथा जनसामान्य की लोकभावनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करते हुए सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग हेतु मनुष्य अपने मानस की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोकगीत है। इसलिए कहा जा सकता है कि लोकगीत लोक में प्रचलित और लोक में रचित गीत है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगर व ग्रामों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार साधारण पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगरों में परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है। लोकगीतों का उद्भव संभवतः उतना ही प्राचीन है, जितना मानव जीवन। आदिकाल में मानव गिरि, कंद्राओं, गुफाओं और जंगलों में रहता था। प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए वह समूह में रहता था। धीरे-धीरे समय के साथ जैसे-जैसे मानव बुद्धि का विकास हुआ, उसने अपनी भावनाओं को लयात्मक ढंग से अभिव्यक्त करना प्रारंभ

किया, जिसे समय के साथ दूसरे व्यक्तियों ने गा-गाकर लोकगीत का रूप दे दिया। वही आदि गीत लोक गीत कहलाए।''[3] लोक से उन लोगों का अभिज्ञान होता है, जो नगर संस्कारों एवं सविधि शिक्षा से वंचित है और विदग्ध अहं चैतन्य से रिक्त है। 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। लोकगीत में सामूहिक चेतना की पुकार दिखाई देती है। इसमें जनसामान्य के जीवन का इतना विशद चित्रण होता है की मूल संस्कृति तथा जनजीवन का पूर्ण चित्रण मिल जाता है। लोकगीतों में हमारी मूल संस्कृति, जिसे हम लोक संस्कृति कहते है, विरासत के रूप में संरक्षितत है। लोकगीतों में जनजीवन के सभी पक्षों का दर्शन होता है। जन सामान्य के अपने गीत होते हैं, जिनमें किसी समाज विशेष की जीवनाभूति की अभिव्यंजना होती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था यानी जन्म से लेकर मृत्युपरांत लोकगीत समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। लोकगीत में जीवन के हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, सुख-दु:ख सभी की अभिव्यक्ति होती है।

अत: किसी भी देश की संस्कृति को व्यक्त करने वाले होते हैं- लोकगीत। लोकगीत के विषय में महात्मा गांधी ने कहा है कि- ''लोकगीतों में धरती गाती है। पहाड़ गाते हैं, नदियाँ गाती हैं। ऋतुओं और परम्पराएं गाती है।''[4]

हिंदी साहित्य में हरियाणवी लोकगीतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हरियाणा के लोककाव्य के विषय में कहना होगा कि औद्योगिक तथा मशीनी युग की सभ्यता के आलोक में प्रगति के डग भरते इस प्रदेश की संस्ख्रति की पहचान इसके लोकगीतों के माध्यम से ही की जा सकी है। हरियाणा ही क्या संसार के सभी क्षेत्रों के लोक जीवन की सही पहचान का माध्यम उस क्षेत्र की लोक कलाएँ हो सकती है। जिसमें उसकी आशाएं, आकांक्षाएं, स्वप्न, कल्पनाएँ और नैतिक आदर्श अभिव्यक्त होते हैं। हरियाणवी लोकगीतों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोकगीत उतने ही प्राचीन हैं जितनी कि भारत में सभ्यता। भारतीय समाज एवं सभ्यता के विभिन्न पक्षों की बात हम जब करते हैं तो हरियाणवी लोकगीतों में भी उन्हें देखा जा सकता है। जिस प्रकार भारतीय समाज में स्त्रियों, राष्ट्रीय चेतना, कृषि एवं ऋतुओं का जिक्र आता है, हरियाणवी लोकगीत भी इस दृष्टि से समाज को अपने भीतर समाहित किये हुए हैं। हरियाणा के लोकगीत इसके जीवन की सहजानुभूतियों का मर्मस्पर्शी काव्य है। प्राचीन समय से ही यहाँ के लोकगीत जनमानस व प्रकृति के के बीच समन्वय की चेष्टा करते हैं। हरियाणावी लोकगीतों में यदि हम राष्ट्रीय चेतना की बात करें तो हम देखते हैं कि स्वाधीनता आंदोलन में जब सबसे महत्वपूर्ण भूमिका गाँधी निभा रहे थे तो उसकी स्पष्ट झलक भी यहाँ परिलक्षित होती है-

''देख कै ने गांधी का चरखा।
अंगरेजां का था दिल धड़का।।
बालक बुड्ढे अर नर नारी।
सब नै तान चरखे की पियारी।
चरखे नै जादू दिखलाया।
सुदेसी का पाठ सिखलाया।।''[5]

इसके अतिरिक्त जब हम हरियाणवी लोकगीतों में देश प्रेम, धरती माँ के लिए अपने प्राणों को बलिदान करने वाले सैनिकों की स्त्रियों की वीरता को भी देखा जा सकता है। जब एक स्त्री अपने पति को देश की रक्षा हेतु लड़ने के लिए भेजती है उसे निम्न लोकगीत में बेहद सुंदर तरीके से दर्शाया गया है-

''जा साजन या तेरी जवानी
पूंजी मां धरती की
रही भुजा फड़क मेरी बी
तन्नै बिदा करती की''[6]

इस तरह हम हरियाणवी लोकगीतों में राष्ट्रीय चेतना एवं देशप्रेम को देख सकते हैं। जब हम भारतीय समाज की बात करते हैं तो किसानों एवं उनके द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हरियाणवी लोकगीतों में भी किसान एवं उनके द्वारा किये जाने वाले कृषि कार्य की सुंदर छटा देखी जा सकती है। खेती बाड़ी से जुड़े इस गीत के उदाहरण से हरियाणवी लोकगीतों में कृषि एवं उससे जुड़े पक्षों को देखा जा सकता है-

''न्यूं कह रही धौली गाय
मेरी कोई सुणता नाई
मेरे कितने सिरी भगवान
मैं दुख पा रही
मेरा दूध पिवै संसार
घी तै खावै खीचडी
मेरे पूत कमावें नाज''[7]

यहाँ का लोकगीत जनता के ह्रदय का उद्गार हैं, इनके

लोकगीतों में सर्व साधारण जनता जो सोंचती है, जिन भावों की अनुभूति करती है; को अपने गीतों के माध्यम से करते हैं। इस प्रदेश की प्रसिद्ध ऋतुओं-वर्षा और बसंत, सावन और फाल्गुन के गीत सम्मिलित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए सावन ऋतु में गाये जाने वाले इस लोकगीत को देखा जा सकता है-

''झूलण जांगी ऐ मां मेरी बाग में री
आंरी को संग सुहेली च्यार
झूलण जांगी ए मां मेरी बाग में री
कोए पंदरां की मां मेरी कोए बीस की री
आंरी को संग सुहेली च्यार
झूलण जांगी ए मां मेरी बाग में री''[8]

हरियाणवी लोकगीतों में ऋतु संबंधी गीत, संस्कार गीत, सांस्कृतिक गीत, कृषि एवं दिनचर्या के गीत, भक्ति-संबंधी गीत, देश-प्रेम संबंधी गीत, बालगीत इत्यादि प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए हरियाणा में 'कोथली' और 'संधारे' का रिवाज है। ससुराल में लड़की सावन मास में आने वाले इस त्यौहार का बेसब्री से इंतजार करती है।

''बाग में पपैया बोला सामण कदने आवेगा।
नीम की निबौली पाकी सामण कदने आवेगा।
आवेगा भी ओवगा, मेरी माँ का जाया आवेगा।''[9]

हरियाणा के लोकगीतों से प्रदेश की सभ्यता, संस्कृति और समाज के दर्शन हो जाते हैं। लोकगीतों के अन्तर्गत विवाह गीत जो कि हरियाणी लोकगीत की समृद्धि का परिचायक हैं। मानव जीवन का यह आवश्यक संस्कार है। इस प्रणाली के अन्तर्गत पिता कन्या को वस्त्राभूषणादि से युक्तकर कतिपय सस्कारों के सम्पन होने के पश्चात वर को देता है। जब बन्नों गौने के बाद ससुराल जाती है तो उसके माता-पिता उसे उपदेश देते हैं-

''मैं समझाऊं समझ मेरी लाडो अपणा धरम निभाणा है। भाई-भतीजे तेरे आड़े रहजां, किन्नै रोकै सुणावे है। जोहड़ बिराणा, कुंआ बिराणा, नीची नजर लखाणा है।
वारी सोणा, बखते उठणा, यों ही परण निभाणा है।''[10]

हरियाणवी लोकगीत में समय की परिस्थितियों का ज्ञान प्रारंभ से था। मुगलों के शासनकाल में जनता कितनी दुखी थी इसका चित्रण लोकगीतों के माध्यम से हुआ है। इनके गीतों में महात्मा गाँधी के प्रति पूजनीय भावना दिखाई देती है। इन लोकगीतों में बापू जी की मृत्यु के कारण करुण दृश्य दिखाया गया है।

''काचा कुणबा छोड़ के बाब्बू सुरग लोक में सोगे
भारत के सब नर-नारी अब बिना आप के होगे।।''[11]

(www.wikipedia.com)

जहाँ उत्तर आधुनिकता और प्रौद्योगिकीकरण के दौर में हम नगरीय सभ्यता का अंधानुकरण कर रहे हैं, वहीं हमारी सांस्कृतिक विरासत आज भी ग्रामीणांचलों के रहन-सहन, खान-पान के लोक रिवाजों में बसती है । स्वतन्त्रता संग्राम में लोकगीतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। लोकगीतों ने जनमानस को संघर्ष हेतु प्रेरित करने के साथ ही स्वाधीनता आंदोलन को शक्ति प्रदान की। लोकगीत समाज से सम्बंध रखते हैं। की 'आत्मा' है रखते हैं। परतन्त्र भारत में स्वाधीनता आंदोलन से सम्बंधित लोकगीत हमारे पूर्वजों के अलिखित दस्तावेज हैं, जिन्हें सुनकर आज भी हमें अभूतपूर्व सुख की अनुभूति होती है। संदेशों को जन-जन तक पहुंचाने का कार्य लोकगीतों के माध्यम से किया जाता था। इसमें अवधी लोकगीतों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हरियाणा का लोकजीवन त्योहारों, उत्सवों आदि का दिल से स्वागत करता है जिसका प्रभाव वहाँ के लोकगीतों में हमें देखने को मिलता है। हरियाणा लोक साहित्य में जन सामान्य के जीवन का विस्तृत चित्रण किया गया है। उनके आवास पनघट और तीज-त्योहारों का मोहक ढंग से वर्णन मिलता है। ''त्योहारों पर तो यहां के लोकजीवन का यौवन और भी निखर-संवर कर उमड़ आता है। सावण के झूलों पर मुखरित मल्हार तो मन मोहक होती है, कितोल कीड़ाओ से आप्लावित फागुन के हुड़दंग का राग-रंग भी जीवन्तता का अक्षय आगार जान पड़ता है।''[12]

समाज सुधार, देशभक्ति, सांस्कृतिक नवजागरण, धार्मिक जागृति तथा राजनतिक चेतना के गीतों के अतिरिक्त ग्रामोत्थान के गीत भी उपलब्ध हैं। हरियाण के इन लोकगीतो में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण के साथ-साथ आधुनिक जीवन की प्रगति एवं विषम जटिलताओं का आंकलन भी दर्शनीय है। लोकगीत जंगलों से पहाड़ों से बहते झरने हैं, ये वे औषधीय वृक्ष हैं, जो लहलहाते हुए सदैव ऑक्सीजन प्रवाहित करते हैं और मानव जीवन में आस्था, आशा और सौंदर्य का संचार करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हरियाणवी लोकगीत की अपनी एक समृद्ध परंपरा है जो न केवल हमारे वर्तमान बल्कि अतीत और भविष्य का भी पट दिखाती है। इस प्रकार हरियाणवी लोकगीतों में उन सभी विशेषताओं का समावेश है जो

लोकगीत को सर्वसुलभ बनाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त चर्चा के माध्यम से हमने हरियाणवी लोकगीतों में अभिव्यक्त भारतीय समाज को देखने का प्रयास किया। उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट भी होता है कि हरियाणवी लोकगीतों में भारतीय समाज के सभी वर्ग उपस्थित है। लख्मीचंद के सांग और रागिनियों से लेकर खेती-बाड़ी के लोकगीत, विभिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले लोकगीत, संस्कार, राष्ट्रप्रेम आदि सभी पक्ष हरियाणवी लोकगीतों में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार हरियाणवी लोकगीत लोकसंस्कृति की एक विस्तृत, व्यापक एवं सम्पूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं।

शोधार्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई-मेल : vdahiya442@gamil.com

संदर्भ सूची

1. लोकसाहित्य की सांस्कृतिक परम्परा, डॉ. मनोहर शर्मा, रोशनलाल जैन एन्ड संस प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-88
2. धीरे बहो गंगा, देवेंद्र सत्यार्थी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-14
3. जनपद, वर्ष 1, अंक 1, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या-65
4. महात्मा गाँधी
5. kavitakosh.org
6. वही, देशप्रेम के गीत
7. वही, खेती बाड़ी के गीत
8. वही, सावन के गीत
9. डॉ. बाबूराम, हरियाणवी भाषा और साहित्य, प्रकाशक, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़
10. जगदीश नारायण भोला नाथ शर्मा, हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष, पृ.सं. 72
11. www.Wikipedia.com
12. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परंपरा का आलोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-9

शोध-पत्र

फलित ज्योतिष में द्रेष्काण के विविध आयाम

डॉ. राघव नाथ झा

फलित ज्योतिष में षडवर्ग या सप्तवर्ग अनुसार लग्न, नवांश के बाद किसी वर्ग कुंडली का सर्वाधिक महत्व या उपयोग होता है तो वह द्रेष्काण वर्ग कुंडली है।

प्रथम दृष्टया द्रेष्काण जातक के गूढ़ व्यक्तित्व और स्वरूप को आभासित करता है। यह एक भाव गत राशि का तृतीयांश होता है और इस प्रकार मंचन में कुल (कुंडली के 12 भाव/राशियों में) 36 द्रेष्काण समाविष्ट होते हैं। यह कुंडली के त्रिकोण का दर्शन (द्रेष्काण त्रिकोण दर्शन) कराते हैं। चूंकि गणितीय रूप से भी किसी राशि का पहला द्रेष्काण (0^0–10^0) उसी राशि का दूसरा (10^0–20^0) पंचम राशि (त्रिकोण) का और तीसरा द्रेष्काण (20^0–30'') नवम त्रिकोण राशि का होता है। उपरोक्त प्रथम, द्वितीय और तृतीय द्रेष्काणों के स्वामी महर्षि पाराशर जी के अनुसार क्रमशः नारद, अगस्त्य और दुर्वासा

स्वपंचनवमानां च राशिनां क्रमशश्च ते।
नारदागस्तिदुर्वासा द्रेष्काणेशाश्चरादिशु।।

उक्त पाराशरीय नामांकित तीन ऋषियों अनुसार ही इन तीनों द्रेष्काणों का स्वभाव, स्वरूप जाना जा सकता है।

नारद द्रेष्काण में होने पर जातक परम बुद्धिमान, भ्रमण प्रिय, संदेश वाहक, वीणा वादक (संगीतज्ञ), भक्ति मार्ग युक्त, प्रेमी, संप्रेषण क्षमतावान, गलत विधार से चुगली करने वाला भी होता है।

अगस्त्य होने पर दृढ़संकल्पित, योगी, दयालु, सज्जनों का मददगार, दुष्ट नाशक, पराक्रमी और स्थायित्व युक्त होता है।

दुर्वासा होने पर जातक क्रोधी, उच्च तपोबल युक्त, अहंकारी, रूढ़िवादी, धैर्यहीन, मुंहफट, नियामक, कर्तव्यनिष्ठ और दूसरों को कष्ट पहुंचाने वाला भी होता है।

अब राशियों के चर, स्थिर और द्विस्वभाव अनुसार भी तीन द्रेष्काणों के उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार से फल होते हैं, चर राशियों का प्रथम, स्थिर राशियों का द्वितीय और द्विस्वभाव का तृतीय द्रेष्काण उत्तम फलदायक होता है। चर राशि का द्वितीय, स्थिर का तृतीय और द्विस्वभाव का प्रथम द्रेष्काण मध्यम फलदायक होता है, तथा घर राशि का तृतीय, स्थिर का प्रथम और द्विस्वभाव का द्वितीय द्रेष्काण अधम फलदायक होता है। इन उत्तम, मध्यम और अधम द्रेष्काणों को ही तत्य आधार पर क्रमशः सात्विक, राजसिक और तामसिक भी कहा जाता है।

अब हम आगे द्रेष्काणों के वर्गीकरण के कुल 7 प्रकार देखते हैं जो निम्नलिखित अनुसार हैः–

(1) आयुध (2) पक्षी (3) चतुष्पद (4) सर्प (5) निगड (6) वराह (7) पाश।

उपरोक्त प्रकारों में सर्प, चतुष्पद, आयुध और पक्षी इन चार द्रेष्काणों का फलित ज्योतिष में विशेष उल्लेख तथा उपयोग मिलता है।

सर्प द्रेष्काण : कर्क का द्वितीय व तृतीय द्रेष्काण, वृश्चिक का प्रथम व द्वितीय तथा मीन का तृतीय द्रेष्काण सर्प द्रेष्काण कहलाता है।

चन्द्रमा यदि सर्प द्रेष्काण में हो तो जातक उग्र स्वभाव का, क्रोधी, उत्तेजित करने और बदला लेने को तत्पर होता है।

आयुध द्रेष्काण मेष का प्रथम व तृतीय, मिथुन का

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

तृतीय, कन्या में द्वितीय, तुला में प्रथम, धनु, मकर व कुभ का तृतीय और मीन का प्रथम द्रेष्काण आयुध द्रेष्काण कहलाता है। आयुध द्रेष्काण में चन्द्रमा हो तो जातक हिंसक प्रवृत्ति का, मारपीट में तत्पर होता है।

चतुष्पद द्रेष्काणः- मेष का द्वितीय, वृष का द्वितीय, तृतीय सिंह का द्वितीय, तृतीय, तुला व वृश्चिक का तीसरा और धनु का प्रथम द्रेष्काण चतुष्पद या पशु द्रेष्काण कहलाता है। इस द्रेष्काण में चन्द्रमा होने पर जातक पाशविक प्रवृत्ति का और व्यभिचारी हो सकता है।

पक्षी द्रेष्काण :- मिथुन व तुला का द्वितीय, और सिंह व कुंभ का प्रथम द्रेष्काण खग या पक्षी द्रेष्काण कहलाता है। इस द्रेष्काण में चन्द्रमा स्थित होने पर जातक घुमक्कड़ और पर्यटन प्रेमी होता है।

फलित ज्योतिष में द्रेष्काण के विविध उपयोग :

• सर्वप्रथम फलित के परिपेक्ष्य में यह जान लेना वांछित है कि ग्रहों के स्थान बल का द्रेष्काण बल एक अंग हैं- पुरुष ग्रह (सूर्य, मंगल, गुरु) किसी भी राशि के पहले द्रेष्काण मे, नपुंसक ग्रह (बुध, शनि) द्वितीय द्रेष्काण में और स्त्री ग्रह (शुक्र, चन्द्र) अंतिम द्रेष्काण में द्रेष्काण बल पाते हैं।

जन्म स्थिति संबंधी ज्ञान हेतु

• द्रेष्काण लग्न का स्वामी केंद्र (1. 4. 7. 10) भाव में हो अथवा द्रेष्काण वर्ग या जन्म कुंडली में उच्च का हो तो जातक धनी, सपन्न, संभ्रांत परिवार में जन्म पाता है।

• द्रेष्काण लग्नेश यदि जन्म कुंडली व द्रेष्काण वर्ग में स्वग्रही हो तो जातक उच्च सैन्य परिवार (पिता सेना या पुलिस में उच्चाधिकारी) में जन्म पाता है।

• द्रेष्काणेश यदि जन्म व द्रेष्काण कुंडली मे मित्र क्षेत्री हो तो जातक विद्वान के घर जन्म पाता है।

• यहां जन्म स्थिति विचार अंतर्गत सर्पयेष्टित जन्म का उल्लेख भी द्वेष्काण के महत्व को जानने के उद्देश्य से करना जरूरी है। इस प्रकार के जन्म वाला जातक शिशु रूप में माता के गर्भ में रहने के दौरान से ही स्वयं पीड़ित रहता है या माता भी पीड़ित रहती हैं। शिशु के गर्भस्थ स्थिति में आहार नली उस शिशु की गर्दन में सर्पाकृति सदृश लिपटी रहती है।

बृहज्जातक अनुसार-

''शशाक्डे पापलग्ने वा वृश्चिके शत्रिभागगे।
शुभैः स्वायस्थितैर्जातरू सर्पस्तद्वैष्टितोपि वा।।''

अर्थात् मंगल के द्रेष्काण में चन्द्रमा स्थित हो और चन्द्रमा से दूसरे तथा ग्यारहवें स्थान में शुभग्रह स्थित हो तो सर्प या सर्पवेष्टित बालक का जन्म कहा जाता है। मेष व वृश्चिक में पहला, कर्क व धनु में द्वितीय तथा सिंह व मीन का अंतिम द्रेष्काण ये पापलग्नगत मंगल के द्रेष्काण होते हैं (अर्थात् इन्हीं में कोई राशि लग्न में हो और तदनुसार द्रेष्काण का उदय भी हो)।

भ्राता/तृतीय भाव संबंधी ज्ञान हेतु :

• तृतीय भाव संबंधी बातों का निर्णय करने के लिये हम द्रेष्काण का प्रयोग करते हैं। भाई-बहनों के द्वारा मिलने वाले सुख के विषय में द्रेष्काण से जाना जाता है।

द्रेष्काण लग्नेश जन्म कुंडली व द्रेष्काण वर्ग में शुभ ग्रह से युक्त। दृष्ट हो तो भाई बहन स्वस्थ, सुखी व दीर्घायु हुआ करते हैं।

• जन्म लग्नेश व द्रेष्काण लग्नेश का परस्पर जैसा संबंध होता है ठीक वैसा ही संबंध जातक का अपने भाई-बहन से होता है।

• द्रेष्काण लग्नेश मित्र ग्रह से युक्त हो तो जातक का भाई बहन से स्नेह व सहयोग रहता है, इसी प्रकार जन्म लग्नेश द्रेष्काण कुंडली में मित्रक्षेत्री या मित्र ग्रहों से युक्त हो तो भाई बहन के साथ जातक के संबंध मधुर, सहयोग व स्नेह पूर्ण होते हैं। इसके विपरीत स्थिति होने पर परस्पर विरोध व शत्रुता हुआ करती है।

• यदि मंगल द्रेष्काण लग्नेश होकर जन्म कुंडली में 6 या 8वें भाव में हो या द्रेष्काणेश जन्म कुंडली में 6 या 8 भाव में स्थित होकर पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो अनुज की गर्भ में या ऊँचाई से गिर कर मौत या दुर्घटना होती है।

रोग/अरिष्ट/मृत्यु संबंधी ज्ञान हेतु :

कल्याण वर्मा कृत सारावली (अध्याय 10 श्लोक 14) अनुसार

''लग्ने यदई क्काणा निगडाहिवि हंगपाशधरसंज्ञा।
मरणाय सप्तवर्षैः क्रूरयुता न स्वपतिदृष्टाः।।''

अर्थात् लग्न में निगड, सर्प, पक्षी, पाश संज्ञक द्रेष्काण हो तथा उन पर द्रेष्काणेश की ख्रष्टि न हो तो 7 वर्षों में प्रबल अरिष्ट करते हैं।

यदि द्रेष्काण कुंडली के लग्न में अशुभ द्रेष्काण (सर्प या पाश) का उदय हो और क्रूर या अशुभ ग्रहों की युति या दृष्टि से पीड़ित भी हो तो यह जातक की बचपन में

ही मृत्यु को इंगित करता है।

• यदि शनि द्रेष्काण लग्न में हो और त्रिकोण में अन्य अशुभ ग्रह हो तो यह एक रोगग्रस्त शरीर को इंगित करता है। जबकि यहाँ लग्नस्थ मंगल मृत्यु और सूर्य भी रोग, विकृतता को दर्शाता है।

सारावली, जातक परिजात आदि ग्रंथों के अनुसार द्रेष्काण के द्वारा रोग से ग्रस्त अंग को भी ज्ञात किया जा सकता है। शरीर को तीन भागों में विभाजित किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं–

(1) सिर से कठ तक (2) कंठ से कमर

(3) कमर से नीचे पैर तक।

उपरोक्त तीनों भागों को (तीनों द्रेष्काण अनुसार) फिर 12–12 शरीरांग भागों (12 भावों अनुसार) विभक्त किया गया है।

उपरोक्त अंग विन्यास अनुसार (द्रेष्काण स्थिति अनुसार) जिस माव/ स्थान में पाप ग्रह हो शरीर के उस भाग में व्रण या चाव होता है।

• अब यही रोग और अरिष्ट के संदर्भ में 22वें द्रेष्काण का उल्लेख करना आवश्यक है, इसे खर द्रेष्काण भी कहते हैं। यह एक छिद्र ग्रह है। खर का शाब्दिक अर्थ है–गधा, तीखा, कटु रूखा, क्रूर, कठोर और पीड़ादायक।

22वें द्रेष्काण की गणना हेतु जन्म कुंडली के अष्टम भाव में लग्न के भोगांश को रखकर अष्टमस्थ राशि अनुसार जो द्रेष्काण राशि प्राप्त हो वहीं 22वां द्रेष्काण होगा और उसका स्वामी खरेश या 22वें द्रेष्काण का स्वामी कहलाता है।

22वें द्रेष्काण से मृत्यु के स्वरूप का अनुमान किया जाता है। इसका स्थानी खरेश छिद्र ग्रह होकर अपनी दशा और अन्य प्रतिकूल यह स्थितियों में मृत्यु दायक होता है।

श्री वैद्यनाथ विरचित जातक परिजात अनुसार–

अष्टमस्य त्रिभागांशपतिस्थितगृह शनौ।

तदीशनवभागकृष गते वा मरण भवेत्।

अर्थात् अष्टम भाव में स्थित देष्काण का स्वामी (खर द्रेष्काणेश या 22वें द्रेष्काण का स्वामी) जिस राशि में हो, उस राशि में जब गोचर का शनि आए तब मृत्यु होना संभव है। अथवा वहीं द्रेष्काणेश जिस नवांश में हो उस नवांश राशि में गोचरीय शनि होने पर मृत्यु संभव होती है।

• 22वें द्रेष्काण का स्वामी अपने कारकानुसार रोग से जातक की मृत्यु करता है– यथा सूर्य हो तो अग्नि या पित्त विकार से, चन्द्रमा हो तो जल या कफ विकार से इत्यादि और 22वां द्रेष्काण कालपुरुष के जिस अंग में पड़ता हो (यथा मेष–सिर, वृष–मुख, मिथुन–कठ, बाहु कर्क–हृदय, सिंह–उदर इत्यादि) उस राशि निर्दिष्ट अंग में रोग या पीड़ा से मृत्यु संभव होती है।

• गृहज्जातक–अनिष्टाध्याय–श्लोक 16 व जातक परिजात–आयुर्दायाध्याय–5 अनुसार चन्द्र लग्न से 5, 9 ये स्थान में पाप ग्रह हो, पाप दृष्टि हो और जन्म लग्न से आठवें भाव में या लग्न मे सर्प, निगड या पाश द्रेष्काण हो तो उस जातक की बंधन या गला घुटने से मृत्यु होती है।

पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म संबंधी ज्ञान हेतु :

मत्रेश्वर जी ने फलदीपिका में द्रेष्काण द्वारा पूर्व जन्म का ज्ञान बताया है। नवमेश जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का क्या स्वरूप है उसी के अनुरूप जातक का पूर्व जन्म जानना बाहिए। नवमेश लग्नेश की उच्च राहि, स्वराशि या मित्र राशि में हों तो जातक के पूर्व जन्म में भी मनुष्य होने का अनुमान करें, यदि नवमेश लग्नेश की सम राशि में हो तो पूर्व जन्म में पशु और नवमेश के शत्रु या नीथ राशि में होने पर पक्षी होने का अनुमान करें।

• इसी प्रकार जन्म व द्रेष्काण कुंडली के पंचम भाव पंथमेश और पंचम में स्थित ग्रह से पुनर्जन्म का विचार भी किया जाता है।

बोर/चोरी हुई/नष्ट वस्तु के ज्ञान हेतु :

आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रंथ दैवज्ञवल्लभा और उनके पुत्र पृथुयशा ने भी अपने प्रश्न ग्रंथ षटपंथाशिका में चोरी हुई वस्तु की पुनः प्राप्ति, और उसका स्वरूप और इनकी दिशा ज्ञान हेतु द्रेष्काण कुंडली के प्रयोग को महत्वपूर्ण माना है।

ऋतु ज्ञान हेतु :

पृहज्जातक के अध्याय 2 (ग्रहभेदाध्याय) अनुसार लग्नगात ग्रह और द्रेष्काण से ऋतुज्ञान का उल्लेख किया गया है। यदि लग्न में ग्रह न हो या बहुत से ग्रह स्थित हो तो द्रेष्काण से ही ऋतु जाननी चाहिए। लग्न में शनि का द्रेष्काण हो तो शिशिर ऋतु शुक्र का देष्काण हो तो बसन्त, मंगल का द्रेष्काण हो तो ग्रीष्म बुध का हो तो शरद बृहस्पति का हो तो हेमत ऋतु जाने और यदि एकाधिक ग्रह स्थित हो तो सबसे बली ग्रह से ऋतु जानी जाती है। इसका प्रयोग नष्ट कुंडली और प्रश्न कुंडली दोनों में

अऋतुज्ञान हेतु किया जा सकता है।

यात्रा संबंधी ज्ञान हेतु

आयुध द्रेष्काण में यात्रा प्रारंभ नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका परिणाम पराजय हानि और विवाद होता है। इस नियम का प्रयोग विभिन्न प्रतियोगिताओं या परीक्षाओं में भाग लेने के लिये खिलाड़ियों और परीक्षार्थियों के यात्रा के समय निर्धारण में भी किया जा सकता है।

इस प्रकार हम द्रेष्काण के विविध आयामों से रूबरू होकर उसकी व्यापक उपयोगिता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए फलित में भलीभाँति प्रयोग कर सकते हैं।

उपनिदेशक
ज्योतिर्वेद विज्ञान
कंकड़बाग, पटना, बिहार 800020

शोध-पत्र

विस्रामपुर का संत उपन्यास में व्यक्त राजनीति

अनुज कुमार रावत

राग दरबारी के बाद श्रीलाल शुक्ल के जिस उपन्यास की सबसे अधिक चर्चा हिंदी पाठकों के बीच में हुई है वह है 'विस्रामपुर का संत' उपन्यास। इसमें लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व भूमि सुधार आंदोलन की यथार्थ और वास्तविक स्थिति का विस्तृत चित्रण किया है। इस उपन्यास का प्रकाशन उस समय होता है जब देश एक ओर नव उदारवादी आर्थिक नीतियों को अपना रहा था तो दूसरी ओर भूमिहीनों के लिए विनोबा भावे द्वारा चलाए गए भूदान आंदोलन से भी प्रभावित था। लेखक ने देश की इन परिस्थितियों को बारीकी से देखा और महसूस किया, इस दौरान वे जिन अनुभवों से गुजरे उसकी अभिव्यक्ति 'विस्रामपुर का संत' उपन्यास में साफ दिखाई देती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस उपन्यास में लेखक ने एक ओर भूदान आंदोलन के केन्द्रीय स्थल विस्रामपुर के माध्यम से सारे देश में भूदान आंदोलन से जुड़ी गतिविधियों, समाज पर पड़े उसके सकारात्मक-नकारात्मक प्रभावों व इस आंदोलन में व्याप्त राजनीति को विभिन्न पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा साकार किया है तो दूसरी ओर केन्द्रीय सत्ता की विसंगतियों के कारण देश में व्याप्त राजनीतिक उथल-पुथल का भी यथार्थ चित्रण उपन्यास में किया गया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आलोच्य उपन्यास का कथ्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति और उसकी संस्थाओं, आर्थिक सुधारों और उससे जुड़े विभिन्न आंदोलनों को माना जा सकता है। सुनील खिलनानी के अनुसार-"कुछ ही साल पहले नब्बे के दशक के शुरू में एक बार ऐसा लगा था कि शायद भारत अपने दरवाजे दुनिया के लिए खोल रहा है। इसके कई प्रमाण उपलब्ध थे। अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के लिए सुधार हो रहे थे, नई शैली की गठजोड़ राजनीति चल रही थी, अलगाववादी आवाजें खामोश होती जा रही थीं... लेकिन जैसे-जैसे शताब्दी का अवसान निकट आया, वैसे-वैसे अंतर्मुखी प्रवृत्तियों की काली छाया फिर गहराने लगी।"[1] यहाँ अंतर्मुखी काली छायाओं से लेखक का अभिप्राय देश में आई राजनीतिक व आर्थिक गिरावट से है।

आलोच्य उपन्यास के मुख्य पात्र कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह के माध्यम से लेखक एक ओर शासन व्यवस्था में आई इस राजनीतिक गिरावट और उसके दाव-पेंच से हमारा साक्षात्कार कराते हैं तो दूसरी ओर इन्हीं कुँवर साहब के अन्तरबाह्य व्यक्तित्व को उभारकर आज के नेताओं की वास्तविकता को भी दर्शाते हैं। यही नहीं भूदान आंदोलन से सम्बंधित विभिन्न पात्रों सुंदरी, सुशीला, आश्रम के मंत्री जी आदि के माध्यम से लेखक ने भूदान और सर्वोदय आंदोलन के चरित्र और उसकी वास्तविकता को भी बारीकी से दिखाते हुए उसकी विफलता के कारणों का खुलासा भी किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि श्रीलाल शुक्ल इस उपन्यास में स्वतंत्रता के पश्चात देश में फैली राजनीतिक अराजकता, पतनशीलता एवं आर्थिक विसंगतियों का यथार्थ चित्रण करते हैं। अखिलेश के शब्दों में-"'राग दरबारी' यदि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की भदेस गाथा थी, तो 'विस्रामपुर का संत' सत्ता के भद्रजनों की पतंग गाथा है।"[2] ये कुँवर जयंतीप्रसाद सत्ता के वही भद्र जन हैं जिनकी पतन गाथा पूरे उपन्यास में देखी जा

सकती है। इनके माध्यम से श्रीलाल शुक्ल स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीतिक तंत्र के उस पहलू से हमारा साक्षात्कार कराते हैं जो अवसरवादी, अफसरशाही, चाटुकार, भ्रष्टाचारी गठजोड़ में डूबे हैं।

उपन्यासकार ने कुँवर जयंतीप्रसाद को जिस राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और ग्रामीण विकास की सभी सर्वोदय, भूदानी, सहकारिता विकास केन्द्रों की पृष्ठभूमि में रखकर चित्रित और निर्मित किया है, उससे एक ऐसे भ्रष्ट, ढोंगी और जोड़-तोड़ करने वाले राजनीतिज्ञ से हमारा परिचय होता है जो सत्ता पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। गोपाल राय इस उपन्यास के संदर्भ में लिखते हैं-''विस्रामपुर का सन्त में श्रीलाल शुक्ल ने उन राजनीतिक पुरुषों के पाखंड का अंकन किया है जो बड़ी सावधानी से कदम बढ़ाते हुए कुर्सियाँ हासिल करते हैं और किसी कारण कुर्सी छिन जाने पर सन्त की छद्म भूमिका अपना लेते हैं। वे पर्दे के पीछे पद-प्राप्ति के लिए जोड़तोड़ की कोशिश करते हैं पर ऊपर से निर्विकार बने रहने का नाटक करते हैं।''[3] कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह इन्हीं राजनीतिक पुरुषों में से एक हैं जिनके स्वभाव में आज के नेताओं की झलक साफ दिखाई देती है।

आजादी से पूर्व वे एक ताल्लुकेदार, अभिजात वर्ग से सम्बंधित रसूखदार व्यक्ति थे और समाज में उनका दबदबा भी कायम था। इन सभी के बल पर वे आजाद भारत की राजनीति में प्रविष्ट हो सके। जहाँ समय-समय पर सत्ता तंत्र से गठजोड़ कर वे ऊँचे से ऊँचे पद पाने में सफल हुए और जब कभी असफल होते तो 'भूदान' जैसे पवित्र दिखने वाले आंदोलन से जुड़कर समाज सुधारक का चोला पहन अपना जनमत तैयार करके सत्ता केंद्र को यह जताने का प्रयास करते कि अगर उन्हें मनाया नहीं गया तो उनका राजनीतिक खेल बिगाड़ने की ताकत अभी भी उनमें शेष है। इसका पता तब चलता है जब प्रधानमंत्री द्वारा कुँवर जयंतीप्रसाद को अमेरिका का राजदूत नहीं बनाया गया तो वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सोचने लगे कि अब या तो राजनीति से दूर हो जाऊं या अपनी राजनीतिक साख बचाने के लिए किसी आन्दोलन से जुड़ जाऊं। लेखक उनकी इस द्वंद्वात्मक मन:स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं-''अब यही बचा था कि वे गुमनामी के गड्ढे में दफन हो जायँ, या अपनी खिसकती साख को सँभालने के लिए किसी पवित्र दिखने वाले आंदोलन में जा मिले।''[4]

कहने की आवश्यकता नही है कि जब प्रधानमंत्री द्वारा कुँवर जयंतीप्रसाद को तवज्जो नहीं दी गई तो वे अपनी खिसकती साख बचाने के लिए 'भूदान' आंदोलन से जुड़ जाते हैं और वहाँ वे समाज सुधारक की छद्म भूमिका में आ जाते हैं। इन आन्दोलनों के सहारे कुँवर जयंतीप्रसाद अपनी सामाजिक और राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति करते हैं। अन्यथा उन्हें इन जन आन्दोलनों से कोई सरोकार नहीं होता है। ऐसे में कुँवर जयंतीप्रसाद और उन जैसे अन्य महत्वाकांक्षी राजनेताओं से इन जन आंदोलनों को सही दिशा देने या फिर उनको लक्ष्य तक पहुंचाने की कल्पना करना बेकार है। ये लोगों को आश्वासन तो बड़े-बड़े देते हैं किन्तु गंभीर मुद्दों पर बहानेबाजी कर तालमटोल का रवैया अपनाते हैं। उदाहरण के लिए जब जमींदार दुबे राम लोटन को डरा धमकाकर और कागजी भय दिखाकर उसकी जमीन पर कब्जा कर लेता है और राम लोटन इसकी शिकायत भूदान और सर्वोदयी के सक्रिय मंत्री से कर, उसे कुछ करने के लिए कहता है तो मंत्री बहानेबाजी कर, उससे पल्ला झाड़ते हुए कहता है-''हम लोग बीच में पड़ भी नहीं सकते क्योंकि तब लगेगा कि सब कुछ हमारे इशारे पर हो रहा है।''[5]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि भूदानी और सर्वोदय आंदोलन से सम्बन्धित कार्यकर्ताओं, कुँवर जयंतीप्रसाद व मंत्री जैसे प्रभावशाली लोगों ने किसानों और जमींदारों के बीच जमीनी टकराव को लेकर तटस्थता की नीति अपनाई। यही नहीं वे इस टकराव की लगातार अनदेखी भी करते रहे। ये प्राय: किसानों को अपनी आदर्शवादी बातों से बहलाने का काम करते रहे जिससे इन पर कोई अंगुलीन उठे और इनकी राजनीति भी चलती रहे। राजनेताओं के इस दोहरेपन से ऐसा लगता है कि जनता की बुनियादी समस्याओं से आंखें फेरना और हर मानवीय त्रासदी को शब्द जाल में डुबो देना आज के राजनीतिक सत्ता तंत्र की आदत बन गई है। उपन्यास के मुख्य पात्र कुँवर जयंतीप्रसाद इन्हीं का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेखक उनकी इस राजनीतिक क्षमता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-''हर जटिल मानवीय त्रासदी को सुलभ मुहावरों और सैद्धांतिक शब्दजाल में डुबो देने की जो सहज क्षमता हमारे सत्तारूढ़ राजनीतिज्ञों में आ जाती है, वह उनमें बहुत पहले आ चुकी थी। यह वही क्षमता है जिसके सहारे हम आदिवासियों को सिर्फ

लोककला के साथ, खेतिहर मजदूरों को प्रजातंत्र के सतर्क प्रहरी के रूप में या शोषित महिला वर्ग को भविष्य की क्रांतिदर्शी चेतना बनाकर देखने लगते हैं और उनकी समस्याओं से निगाह फेर लेते हैं।[6] स्पष्ट है कि आज के कुशल राजनेताओं के समान कुँवर जयंतीप्रसाद के पास भी जनता को शब्दजाल में फंसाएं रखने की कला है। जिसके बल पर वे सीधी-सादी जनता को गुमराह कर अपने को उनका सबसे बड़ा शुभ चिन्तक दिखाते हैं। लेकिन वास्तविकता में यही कुँवर जयंतीप्रसाद इन लोगों को समस्याग्रस्त देखकर उनसे निगाह फेर लेते हैं।

यही नहीं वे एक मौकापरस्त राजनीतिज्ञ भी हैं जो अपनी राजनीतिक साख बढ़ाने व जनता के बीच में अपनी समाजसेवी की छवि गढ़ने के लिए भूदान आन्दोलन से जुड़ जाते हैं। जहाँ वे अपने भाई के जेल प्रवास के दौरान मौका मिलते ही ग्रामदान की घोषणा कर देते हैं। जिसमें आधे से ज्यादा जमीन किसानों की थी परन्तु इस ग्रामदान का सारा श्रेय कुँवर जयंतीप्रसाद ले जाते हैं। जिससे एक ओर उनकी राजनीतिक साख बढ़ी तो दूसरी ओर समाज में जन सेवक के रूप में उनका कद भी बढ़ा। यथा– ‘‘तभी, भूदान आंदोलन शुरू होने पर, कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह ने बड़े भाई के जेल-प्रवास के दौरान ग्रामदान की घोषणा की। राजनीतिक खेल में यह एक शानदार छक्का था। इसका सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में ही नहीं, सरकारी तंत्र में भी वाजिब असर हुआ। उनकी साख बढ़ी, साथ ही खपत भी।’’[7] कहने की आवश्यकता नहीं है कि भूदान आंदोलन से जुड़कर कुँवर जयंतीप्रसाद ने एक ओर अपनी समाज सुधारक की छवि बनाई तो दूसरी ओर सत्ता तंत्र को प्रभावित कर वहाँ अपनी पैठ भी बढ़ा ली।

कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह आज के उन नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न अभिजात्य वर्ग से हैं और अपनी सामाजिक हैसियत भी रखते हैं। ऐसे नेता सत्ता तंत्र और व्यापारियों से गठजोड़ कर बड़े-बड़े पदों पर आसीन हो जाते हैं। लेखक उनकी इसी तरह की राजनीति महत्वाकांक्षा और अति आत्मविश्वास पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं–‘‘उन्हें इत्मीनान था कि उनकी जैसी दुर्लभ योग्यतावाले आदमी के लिए एक न एक ऊंची कुर्सी हर वक्त खाली रहेगी। देश की बगटुट राजनीति में प्रधानमंत्री के इर्द-गिर्द डोलने-फिरनेवाले दो-ढाई दर्जन लोगों में उनकी गिनती नहीं थी, पर भीतर ही भीतर वे अपने को प्रधानमंत्री का विघ्न विनाशक (ट्रबुल शूटर) मानने के आदी हो गए थे।’’[8] उपरोक्त उद्धरण के आधार पर कहा जा सकता है कि कुँवर जयंतीप्रसाद की गिनती भले ही प्रधानमंत्री के इर्द-गिर्द रहने वाले लोगों में नहीं थी परन्तु वे स्वयं को प्रधानमंत्री के आपत्तिकाल का विघ्न विनाशक अवश्य मानते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपन्यासकार ने उनके जिस महिमापूर्ण अंतर बाह्य व्यक्तित्व और चरित्र को साधा है वह स्वाधीनोत्तर भारतीय राजनीति, सत्ता और सत्ता केंद्रों से पूरी तरह मेल खाता है। सत्ता से इसी तालमेल के कारण ही वे दो-दो बार राज्यपाल होने का सुख भोगते हैं। कुँवर जयंतीप्रसाद के इस कार्यकाल का भी कच्चा चिठ्ठा लेखक ने इस तरह से सामने रखा है जैसे वह लम्बे समय तक राजपाल के OSD रहें हों। श्रीलाल शुक्ल उपन्यास के आरंभ से ही उनके चरित्र की विभिन्न विसंगतियों, हाव-भाव, चाल-ढाल व करतूतों आदि को उघाड़ना शुरू करते हैं। यथा–‘‘सपने में वे यकीनन अस्सी साल के नहीं थे। उम्र के बारे में कुछ भी तय नहीं था; पर शायद वे पच्चीस-छब्बीस साल पहले वाले कुंवर जयंतीप्रसाद सिंह थे। आज के सपने में वह उनकी बाँहों में नहीं थी; वे खुद उसकी बाँहों में थे। पर तय नहीं था कि वह कौन थी। वह शायद सुंदरी थी; पर जयश्री भी हो सकती थी। जो भी हो, उसकी सुडौल चिकनी देह सिर से पाँव तक उसने अंग-अंग को पिघला रही थी। उसके पथरीले, वर्तुल स्तन उनकी छाती में विस्फोटक उष्मा के साथ गड़ रहे थे। जागते में उनकी ढीली-ढाली, पस्त काया इस समय अचानक धधकते हुए कोयलों में बदल गई थी। एक अनूठी उत्तेजना उन्हें सुन्न करती जा रही थी।’’[9]

यह अस्सी साल के बूढ़े आदमी के सपने का जिक्र है जो राजभवन के विशाल कक्ष में अकेले पलंग पर सोया सुबह-सुबह सहवास का स्वप्न देख रहा है। कुँवर जयंतीप्रसाद के इस स्वप्न से एक ओर उनके चारित्रिक पतन व लम्पटता का पता चलता है तो दूसरी ओर यह उनकी कुंठित मनोवृत्ति का भी परिचायक है। इतना ही नही व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे कुँवर जयंतीप्रसाद विलासिताओं में भी पाँव तक डूबे हुए हैं। उन्हें जनता से ज्यादा राजभवन के पर्दो के रंगों की चिंता होती है। यहाँ तक कि अगर उनसे पहले कोई हरिजन राजपाल था तो सोफे गद्दे

तो बदले ही जाते बल्कि राजभवन को गंगाजल से पवित्र भी किया जाता है। वे इतने परजीवी हैं कि तिपाई पर रखा पानी का गिलास भी अपने हाथ से नहीं उठा सकते।

कुल मिलाकर कुँवर जयंतीप्रसाद के अंतरबाह्य चारित्रिक विश्लेषण के माध्यम से लेखक यह दिखाना चाहता है कि यदि आज के राजनेताओं के बायोडाटा का अध्ययन करें तो उनमे से अधिकतर की जीवन रेखा भी कुँवर जयंती के समान शुरू से आखिर तक खुशामद, झूठ, फरेब, अय्याशी, भ्रष्टाचार, लम्पटता में डूबी मिलेगी। इतना ही नहीं व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे इन्हीं कुँवर जयंतीप्रसाद के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल स्वातंत्र्योत्तर भ्रष्ट प्रशासन, राजनीतिक ह्रास और मूल्यहीनता आदि को भी इस उपन्यास में विस्तार से दिखाते हैं।

देशबंधु कॉलेज
कालका जी, नई दिल्ली
akrawat@db.du.ac.in

संदर्भ सूची

1. भारतनामा, सुनील खिलनानी, पृ. संख्या 7
2. अखिलेश, तद्भव, मार्च 1999, अंक-1, पृ. संख्या 40
3. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ. संख्या 262
4. विस्रामपुर का संत, श्रीलाल शुक्ल, पृ. संख्या 87
5. वही, पृ. संख्या 150
6. वही, पृ. संख्या 65
7. वही, पृ. संख्या 85
8. वही, पृ. संख्या 64
9. वही, पृ. संख्या 7

मॉरिशस की हिंदी काव्य यात्रा

डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार* डॉ. सुनील कुमार मांडीवाल**

शोध सार :

मॉरिशस का हिन्दी काव्य अपने परिवेश से प्रभावित होकर रचा गया है। ये काव्य एक तरफ अपने समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति का बयान करते हैं तो दूसरी तरफ इनमें प्रवासी होने के कारण भारत और भारत माता का स्मरण बार बार आता है। मॉरिशस का हिन्दी काव्य तीन चरणों में रचित है। जहां पहले दो चरण में कथ्य की विविधता है, वहीं आजादी के बाद के तीसरे चरण में कई प्रतिभावान कवि उदित हुए। पत्र-पत्रिकाओं का विकास भी इस चरण में काफी हुआ। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मॉरिशस का हिन्दी काव्य अपने आरंभिक अवस्था से विकसित होकर आज ऐसी स्थिति में आ गया है कि इसे एक वैश्विक पहचान मिली है। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि हिन्दी को एक विशेष पहचान मिली है।

बीज शब्द :

राष्ट्र, भारत, प्रवासी, काव्य, अस्तित्व, हिन्दू, आजादी, संस्कृति।

मूल लेख :

जीवन और काव्य का संबंध अत्यंत घनिष्ट है। ऐसा कभी नहीं होता है कि जीवन की बाह्य परिस्थितियां बदल जाएं किंतु साहित्य ना बदले। जीवन का प्रतिबिंब होने के नाते समाज की संपन्नता-विपन्नता, विलास-व्यंग्य, आशा-निराशा, जय-पराजय, सभी बाह्यांतर परिस्थितियों साहित्य में प्रतिबिंबित होती रहती हैं। मॉरिशस का हिंदी काव्य भी इन्हीं बाह्यान्तर परिस्थितियों से प्रभावित होता रहा है।

''किसी भी जाति के साहित्य के निर्माण के लिए उस जाति की जीवन शैली तथा उसकी संचित मनोवृत्ति का वास्तविक चित्रण उस जाति के साहित्य में प्रतिबिंबित होना आवश्यक है। देश व जाति का जीवन वहां की आर्थिक, सामाजिक, सांप्रदायिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चक्र में पड़कर बनता बिगड़ता चला जाता है और इस परिवर्तनशील प्रक्रिया के दौरान उस देश व जाति के साहित्य का स्थाई स्वरूप निर्मित होता है।''[1] भारत की हिंदी कविता का काल विभाजन जहां प्रवृत्तियों को आधार बनाकर किया गया है, वहीं मॉरिशस की हिंदी कविता का काल-विभाजन भाषायी-विकास को ध्यान में रखकर तीन कालों में किया गया है, जो इस प्रकार है।

1. आदिकाल (सन् 1913 से सन् 1930 तक)
2. मध्यकाल (सन् 1931 से सन् 1960 तक)
3. आधुनिक काल (सन् 1961 से आज तक)

मॉरिशस की हिंदी कविता का उद्भव गणेषी जी की कविता 'होली' से हुआ था-

आर्यों ने ऐसी होली मनाई
चहुं दिशि से सज्जन सब आए,
बैठे समत बनाई।
गावत वेद आती नीको, ध्यावत यश पगराई।
अगम गनी जाकी है भाई ।।1।।
खेलत फाग सुलभ सूची संयम, सतचित रही बनाई।
प्रेम रंग-रंग भरी-भरी भारत ज्ञान गुलाल सुहाई।।
रंग सब सज्जन आई ।।2।।[2]

कवि इस होली कविता के माध्यम से आर्य समाज के सिद्धांतों की ओर इशारा करता है। यह कविता इस परिकल्पना को पुष्ट करती है कि मॉरिशस में आर्य समाज

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

ने शुद्ध हिंदी का प्रचार-प्रसार बीसवीं सदी के प्रथम दशक से प्रारंभ कर दिया था।

मॉरिशस के आरंभिक हिंदी काव्य परंपरा की जानकारी स्वयं मॉरिशस के हिंदी समाज को बहुत कम था। इसी कारण डॉक्टर लक्ष्मी प्रसाद रामवाद, डॉक्टर मुनीश्वर लाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी आदि मॉरिशस के लेखक अपने ग्रंथों में इस आरंभिक काल के काव्य-प्रवृत्तियों की विस्तृत चर्चा नहीं कर पाए। इसका श्रेय प्रहलाद रामशरण को है, जिन्होंने सन् 1913 से 1960 के बीच प्रकाशित मॉरिशस की हिंदी पत्रिकाओं में छपी हिंदी कविताओं को दो भागों में प्रकाशित कराया। पहले भाग का शीर्षक है- 'मॉरिशस का आदि काव्य कानन', जिसमें सन 1913 से 1930 तक की हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित 108 कविताएं दी गई हैं। प्रहलाद रामशरण ने इन पत्रिकाओं में से वे कविताएं संकलित नहीं की है, जो भारतीय कवियों की थी अथवा जो भारतीय कवियों की रचित कविताएं यत्र-तत्र उद्धृत की गई थीं।

इन 108 कविताओं में लगभग 50 नामधारी कवियों तथा 25 अनाम कवियों की रचनाएं हैं। प्रहलाद रामशरण मॉरिशस के आदि काव्य कानन की भूमिका में लिखते हैं-"इस संकलन में उन कविताओं का संकलन नहीं किया गया है जिनके लेखक भारतीय रहे हैं अथवा जिन कविताओं को भारत के पत्र पत्रिकाओं से उद्धृत करके प्रकाशित किया गया है"[3] इसके दूसरे भाग का शीर्षक है- 'मॉरिशस के मध्यकालीन काव्य प्रसून', जिसमें सन 1931 से 1960 तक की हिंदी पत्रिका में प्रकाशित 172 कविताएं संकलित हैं। मॉरिशस में भारतीय प्रवासियों की दुर्दशा एवं संघर्ष के बीच तथा हिंदी भाषा साहित्य की समुचित शिक्षा के अभाव की परिस्थितियों में हिंदी पत्रिकाओं के प्रकाशन और उनमें लगभग 300 हिंदी कविताओं का प्रकाशन एक बड़ी उपलब्धि ही थी। इन दो भागों से मॉरिशस की हिंदी कविता के आदि तथा मध्यकाल का प्रामाणिक चित्र बनता है। यहाँ मॉरिशस के हिंदी काव्य के आदि तथा मध्यकाल की काव्यगत प्रवृत्तियों का संक्षेप में विवेचन उचित प्रतीत होता है क्योंकि ये प्रवृत्तियां मॉरिशस के साहित्यकारों की मनोदशा को बदलती हैं, मॉरिशस के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थिति का बयान करती हैं। 1913 से 1960 तक की हिंदी कविताओं का अवलोकन करने के पश्चात् निम्न प्रवृत्तियां उभर कर सामने आती हैं-वहां की कविताओं में भारत एवं भारत माता का स्मरण बार-बार आता है-

(i) बता दो प्रति इंद्रियों को भारत संतान हो ऋषि संतान राखो।

भारत का मान (मॉरिशस मित्र 13.1.1926)

(ii) 'रहेंगे कहीं भी, करेंगे कुछ भी, केंद्र हमारा है काशी।' आर्यवीर (27.8.1937)

(iii) एकि भारत माता की हम संतान हैं, क्या हिंदू क्या मुसलमान हैं। (मॉरिशस मित्र 10.1.1931)[4]

इन रचनाओं में आत्म-विस्मृति को त्यागने एवं अस्तित्व रक्षा की व्याकुलता भी दिखाई पड़ती है। इसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं-

(i) अब तो खोलो नयन आत्म-विस्मृति को त्यागो हम क्या थे क्या हुए, हम क्या होंगे आगे स्वत्व का न कुछ भी प्रश्न, न अभिलाषा उसकी (मॉरिशस मित्र 15.7.1924)

(ii) हे भाई अस्तित्व बचाओ, यही समय अब कहता है (मॉरिशस मित्र 23.11.1936)[5]

पराधीनता की पीड़ा और स्वाधीनता का लक्ष्य भी देखने को मिलता है-

(i) हा! स्वतंत्र नहीं रहे पराई सेवा करते

(मॉरिशस इंडियन टाइम्स 14.3.1921)

(ii) परतंत्र होकर इस तरह क्या आज जीना चाहिए। स्वाधीन हो या मृत्यु हो, यह आज होना चाहिए

(मॉरिशस मित्र 30.11.1925)

(iii) लिबर्टी कहिए आजादी को या स्वाधीनता
यही मर्दों का पानी है यही जोशे जवानी है
न हो स्वाधीनता तो हेय बिल्कुल जिंदगानी है
(मॉरिशस इंडियन टाइम्स 30.8.1922)[6]

ये कविताएं बहुत ही स्वाभाविक और सहज हैं। जन जीवन में गहरी पैठ और अपने निजी अनुभव से कवियों ने यह स्वाभाविकता प्राप्त की है। उनकी कविता में कहीं कोई बनावटीपन प्रतीत नहीं होता है।

कारण यह है कि कवि का निजी अनुभव सामान्य जनजीवन के अनुभव से अलग नहीं है। अनुभव की यह एकता ही उनकी कविताओं को स्वाभाविकता प्रदान करती है। उनकी कविताओं में व्यक्त अनुभव मॉरिशस के हिंद-भाषी पाठक को अपने अनुभव लगते हैं।

जिंदगी के साथ उनका यह रिश्ता ही है जिसके कारण वे एक आम आदमी की पीड़ा को पहचानते हैं और

अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाते हैं। वे समाज के उस यथार्थ को अच्छी तरह पहचानते हैं जहाँ जिंदगी का असली हकदार मेहनतकश आदमी सारी सुख-सुविधाओं से वंचित है, जीवन जीने की उसकी न्यूनतम आवश्यकता तक पूरी नहीं हो पाती। कवि समाज में पीड़ित व्यक्ति के प्रति अच्छे व्यवहार का आकांक्षी है-

(i) 'गरीबों का बन सच्चा प्रेमी' (मॉरिशस इंडियन टाइम्स 24.6.1922)

(ii) 'मनुज योनि है तो करना है दुखित आत्मा का उपकार।' (मॉरिशस इंडियन टाइम्स 26.4.1922)

(iii) 'बस एक ही केवल हमारा धर्म पर उपकार था' (मॉरिशस इंडियन टाइम्स 31.5.1922)[7]

भारतीय श्रमिकों ने विकट परिस्थितियों से गुजरते हुए भी अपनी संस्कृति का परित्याग नहीं किया। परदेश में यह आना स्वाभाविक है। अपने देश से परदेश में बसने या बसाये जाने वाले प्रवासी भारतीय अपने लोगों और अपने पुरातन में ही संतुष्टि ढूंढते हैं। यही कारण है कि हिंदू देवी-देवताओं की स्तुति, हिंदू त्योहारों का स्मरण, हिंदू जाति के जागरण को वे लोग अपनी जीवन पद्धति में शामिल कर चुके थे। इस दौर की कविता में भारतवंशियों के जीते-जागते इतिहास की धड़कनें अभिव्यक्त हुई हैं। साथ ही साथ वे अपने या आमजन के ऊपर हो रहे अत्याचार को भी अभिव्यक्त करते हैं। ''इस कालावधि में लिखी गई कविताओं के अनुशीलन करने पर इनमें कुछ प्रवृत्तियां स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। इनमें अत्याचार के उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष, भारतीय मनीषियों के प्रति श्रद्धा-भक्ति, हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति तथा हिंदी भाषा के प्रति अगाध आस्था, देश की राष्ट्रीय सभा में उचित स्थान पानी की अभिलाषा, गरीबी से उबरने की चीत्कार और मातृभूमि के प्रति प्रेम आदि विषयों के प्रति कवियों की नवचेतना दृष्टिगत होती है।''[8]

इस देश के भारतवासियों को केवल आर्थिक शोषण से ही जूझना नहीं पड़ा बल्कि उन्हें यहां की यूरोपियन अर्थव्यवस्था में अपने को समाहित करना पड़ा था। यही नहीं, यहां जब उनका सामना ईसाई धर्म और पाश्चात्य जीवन पद्धति से हुआ तब उनके प्राचीन धार्मिक विश्वासों की रूढ़ियों हिल सी गई थी और वे पाश्चात्य धार्मिक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक धारा में प्रवाहित से होने लगे थे। इसी प्रक्रिया में बहुत से भारतवंशी, शिक्षित नवयुवक अपने धर्म, भाषा-संस्कृति तथा आचार-विचार को तिलांजलि देकर पाश्चात्य जीवन-शैली से सामंजस्य स्थापित करने लगे। विसंस्कृतिकरण की इस बाढ़ को देखकर तत्कालीन कवियों ने शिक्षित नौजवानों को ताना देते हुए कहा-

''पाश्चात्य सभ्यता के चंगुल से जिसका हो रहा नाश,
रामचंद्र जी उस पापी के अंधकार को दे दो फांसी।''[9]

इस कालावधि में जितने चुनाव हुए, उन अवसरों पर कविगण काफी सक्रिय रहे। 1953 में एक निर्णायक चुनाव हुआ था जिसमें भारतवंशी उम्मीदवारों की भारी जीत हुई थी। इसी साल देश में सबसे अधिक कविताएं लिखी गई, जिसकी संख्या 35 है। इसी प्रकार से 1935-36 और 37 में क्रमशः 10, 15 और 26 कविताएं लिखी गई थीं। 1936 में भी सार्वजनिक चुनाव हुआ था। उसी साल मजदूर दल की स्थापना हुई थी और एक साल के बाद देश में मजदूरों के देशव्यापी हड़ताल हुई थी। इन परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि तत्कालीन कविता अपनी कविताओं के जरिए भारतवंशियों के बीच एकता, संगठन और नवजागरण लाना चाहते थे। इसी भावना से उद्भूत होकर शिवनारायण लाल जी ने 1931 के आम चुनाव में उद्बोध किया था -''कालेजों को मजबूत बनाकर काउंसिल भवन में बढ़े चलो हमारा दिन कुछ दूर नहीं, संगठन करो बल बढ़ाते चलो''[10]

जबकि हरफन का आह्वान 1953 के आम चुनाव में इस प्रकार हुआ था-

''दल से चलो, बल से चलो, उन्नीसों को पहुंचाओ,
यह शान की बात नहीं, देश-जीवन का ख्याल है''[11]

स्वतंत्रता पूर्व (मॉरिशस) की कविताओं में छंदोबद्ध कविताओं के साथ ही साथ गीतों का भी खूब प्रचलन था। इस समय के रचनाकारों के कथ्य के अंतर्गत मुख्यतः निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं-मानव मूल्य एवं नैतिक विचारों पर जोर देना, अप्रवासियों की व्यथा कथा का चित्रण करना, समाज सुधार की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना, भाषा, धर्म एवं संस्कृति प्रेम की भावना अभिव्यक्त करना, पराधीनता के दुख का चित्रण तथा देश के स्वाधीनता की मांग करना आदि।

स्वतंत्रता संघर्ष के समय लिखी गई कविताओं में देश को स्वतंत्र करने का संकल्प पाया जाता है। कवियों की दृष्टि में यह संघर्ष मात्र राजनीतिक एवं औपनिवेशिक प्रभुता से मुक्त होने का संघर्ष नहीं था, बल्कि व्यापक

अर्थ में मानवीय स्वतंत्रता के नए आयाम तलाशने का शुभारंभ था। इनमें ऐसे भी कवि थे जिनका सीधा संबंध राजनीति से था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने पूंजीपत्तियों के शोषण, अत्याचार और अन्याय से पीड़ित जनता को जगाया और उन्हें एक नई दृष्टि प्रदान की। ये लोग राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने तथा लघु मानव के अधिकारों के पक्षधर थे और स्वतंत्रता की भावना को बलवती बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते थे ''इसी काल में कुछ कवियों ने परंपरागत काव्य-शैलियों से हटकर मुक्त छंद में कविता करना प्रारंभ किया। इस काल के कवि खड़ी बोली के परिष्कृत रूप पर विशेष बल देते थे। साथ ही कुछ कवियों ने श्रृंगार, वीर, करुण, शांत आदि रसों पर विशेष ध्यान दिया।''[12]

कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता-पूर्व की कविताओं में कथ्य की विविधता है। विषम शासकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के बावजूद हिंदी जीवित रहकर विकास को प्राप्त हुई। यह हिंदी की अपार जीवन शक्ति का परिचायक है। ''इस समय हमें यह देखना नहीं चाहिए कि क्या लिखा जा रहा है और कैसे लिखा जा रहा है, बल्कि देखना तो यह है कि हिंदी लेखन की जो बाढ़ उमड़ पड़ी है, उसका प्रवाह कितना वेगवान है।''[13]

स्वतंत्र्योत्तर कविता सन 1967 के पूर्व की कविता से अनेक अर्थों में भिन्न है। इस काल में छंदोबद्ध तथा परंपरागत कविताओं का आग्रह नहीं रह गया था।

मॉरिशस के हिंदी काव्य यात्रा का तीसरा चरण मॉरिशस की स्वतंत्रता (1968) से आरंभ होता है। इस काल में, दूसरे चरण के कुछ कवि भी काव्य रचना में संलग्न रहे और अनेक नए तथा प्रतिभा-सम्पन्न कवि काव्य क्षितिज पर उदित हुए। इस समय में कई हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का आरंभ हुआ, जिनमें कवियों की कविताएं छपती रही। कुछ कवियों के निजी काव्य संग्रह निकले तथा अनेक विभिन्न कवियों के सामूहिक काव्य संकलन भी प्रकाशित हुए। मॉरिशस की हिंदी कविता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विस्तृत और व्यापक बनी तथा उसमें गहनता एवं घनत्व भी आया। उसने अपनी पहचान बनाते हुए अपना एक काव्य मुहावरा भी निर्मित किया।

***सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,**
दयाल सिंह महाविध्यालय, दिल्ली
gyandsc15@gmail.com

****सह-प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,**
दयाल सिंह महाविध्यालय, दिल्ली
sunilkumarmandiwal@dsc.du.ac.in

संदर्भ सूची

1. मॉरिशस का आदि काव्य-कानन: संपादक-प्रहलाद रामशरण, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ संख्या 76
2. वही, पृष्ठ संख्या 33
3. वही, पृष्ठ संख्या 10
4. ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' काव्य रचनावली: संपादक- डॉ. कमल किशोर गोयनका, अमित प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या 15
5. वही, पृष्ठ संख्या 17
6. वही, पृष्ठ संख्या 17
7. वही, पृष्ठ संख्या 18
8. मॉरिशस के मध्यकालीन काव्य प्रसून : संपादक-प्रहलाद रामशरण, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ संख्या 12
9. वही, पृष्ठ संख्या 14
10. वही, पृष्ठ संख्या 12
11. वही, पृष्ठ संख्या 12
12. मॉरिशस के हिन्दी साहित्य एक परिचय : डॉ. मुनीश्वरलाल चिन्तामणि, हिन्दी बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 47
13. प्रवासी भारतीयों की हिन्दी सेवा : डॉ. कैलाश कुमार सहाय, अविराम प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1994, पृष्ठ संख्या 172

कविता सरोज

आपहुदरी : एक अतरंग परिचय

"नदी को न पत्थर बांध सकते हैं, न बांध। नदी तब तक नहीं रुकती जब तक उसका पानी का स्रोत खत्म नहीं हो जाता और मैंने अपने भीतर की स्त्री के स्रोत को कभी खत्म नहीं होने दिया। चूंकि मैं उसे नदी मानती हूँ जिसमें सब अपनी गंदगी धोकर चले जाते हैं, पर वह सतत स्वच्छ अबाध गति से बहती रहती है।"[1]

यह पंक्ति आत्मकथा आपहुदरी की है, एक जिद्दी लड़की की कहानी। जो एक नदी की तरह निरंतर बहती चलती है, और यह सच भी है एक नारी का जीवन बहती नदी की तरह ही होता है, जिसमें हर कोई अपनी विचारों की गंदगी से उसे दूषित करता है, किन्तु एक स्त्री नदी की तरह स्वच्छ अबाध गति से बहती रहती है। एक स्त्री का जीवन कभी सरल नहीं रहा, चाहे वह किसी भी वर्ग, जाति या धर्म की हो, उसका शोषण, उसके अधिकारों का हनन होना निश्चित है, फिर वह चाहे अपनों के द्वारा हो या गैरों के। लेकिन बिना किसी बंधन के वह अपनी जिंदगी के पन्ने कभी पलट नहीं पाती।

रमणिका गुप्ता जी का जीवन भी संघर्ष की पटरी से होते हुए एक सफल जीवन की मंजिल तक पहुँचा था। एकाएक जीवन में कभी कुछ घटित नहीं होता, कार्य के पीछे कारण निहित होता है। आत्मकथा 'आपहुदरी' की चर्चा भी मेरी कोई योजनाबद्ध कारण नहीं है, मैं यू.जी.सी. नेट की तैयारी के समय मैंने आपहुदरी आत्मकथा पढ़ी थी। मैं अपने आपको भाग्यशाली समझती हूँ कि मेरे हाथ कोई साधारण पुस्तक नहीं लगी, बल्कि किसी महान विभूति के जीवन के अनुभवों का खजाना लगा, वो अनुभव जो सिर्फ जीवन की संघर्ष की गाथा नहीं बताते अपितु जीने का सलीका सिखाते हैं। एक जिज्ञासु स्त्री को अपनी पहचान बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। आपहुदरी आत्मकथा की लेखिका रमणिका गुप्ता हैं, जितना मैंने इस आत्मकथा के बारे में सुना था वह मेरी कल्पना से कहीं ज्यादा रोचक है, यू.जी.सी. नेट के दरमियान ही पढ़ने पर यह सुनिश्चित कर लिया था कि मेरे पी.एच.डी. में शोध का विषय रमणिका गुप्ता के सम्पूर्ण साहित्य पर ही शोध करूँगी।

लेखिका रमणिका गुप्ता की आत्मकथा दो भागों में विभाजित है, पहला भाग 'हादसे' जो इनके राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित है, दूसरा भाग 'आपहुदरी' जो निजी जीवन से सम्बन्धित है। रमणिका जी के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आये, यह उतार-चढ़ाव उनके निजी जीवन में भी रहे और राजनैतिक जीवन में भी। रमणिका जी के बचपन का नाम रमणा था, घर पर सब उन्हें स्नेह से रमणा कहते थे और 'रमणा' शब्द रमणिका जी को आत्मीयता का बोध कराता था। वह अपने आत्मकथा में इस बात का जिक्र करते हुए लिखती हैं-"हाँ मैं रमणा हूँ। स्कूल-कॉलेज और प्रमाणपत्रों में मेरा नाम रमणिका है। हालांकि मैं अब भी भीतर से कहीं रमणा ही हूँ।"[2]

रमणिका जी अपने पूरे जीवन में अंदर से बहुत अकेली रहीं, सदैव प्यार से वंचित रहीं और तो उनके जीवन में प्रताणाएँ प्रारम्भ से ही शुरू हो गयी थी। वह अपने पिता और दादी की लाड़ली तो रहीं किंतु माँ के प्यार से हमेशा वंचित रहीं, उनकी माँ ने रमणिका जी के विवाह से पहले विवाह के उपरांत कभी माँ का स्नेह नहीं दिया और यही अभाव छोटी रमणा के मन में घर करके

बैठ गया, जिससे उनके मन में हीनभावना का बीज पनपता गया, लेखिका अपने आत्मकथा लिखती हैं कि–''कहीं अकेली खेलती, कहीं अकेली दौड़ती, कहीं अकेले डरती, कहीं अकेले झगड़ती और विसूरती हुई या भीड़ में जूझती हुई, बहस करती, तर्क तक रखती एक दुबली-पतली मरियल-सी, सीधी-सादी भोंदू-सी लड़की।''[3]

इन्हीं सब घटनाओं से रमणिका जी और जिद्दी होती चली गयीं वह अकेली ही खुद से बातें करती स्वयं को अपनी उलझने समझाती और खुद उन्हें सुलझाने लगती, सही गलत का निर्णय भी उन्होंने स्वयं ही लेना सीखा। यह बात सच है कि बचपन में घटी घटनाएँ व्यक्तित्व की आधारशिला में बहुत बड़ा किरदार निभाती हैं। यह बात रमणिका जी के संदर्भ में सही ठहरती है और यही उनका व्यक्तित्व उनके साहित्य में भी झलकता है।

उनका कहना है कि ''उपेक्षित रहकर मैं अपनी दुनिया स्वयं गढ़ने की आदी हो गई, जिसने मुझे बिना दुनिया की बातों की परवाह किए लीक से हटकर चलने की आधारशिला रखने की शक्ति दी।''[4] इस उपेक्षिता के पीछे कई कारण रहे-लेखिका के जन्म पर सभी परिवार के लोग खुश हुए किंतु उनकी माँ नहीं। डेढ़ साल बाद लेखिका की बहन उर्मिला का जन्म हुआ, जो पूरे परिवार में बेहद सुंदर थी। उनकी माँ का पूरा प्यार उनकी छोटी बहन को मिला। सुंदर न होने के कारण रमणिका हमेशा उपेक्षित रहीं। रमणिका जी के पिता उन्हें स्नेह करते थे, किंतु माँ हमेशा उन्हें मारती-डाँटती रहीं। यही कारण था कि उनका स्वभाव बचपन से जिद्दी हो गया, रमणिका गुप्ता के जीवन के एक बहुत रोचक घटना है, वह कुछ बड़ी हुई तो उन्हें माँ ने चुन्नी (दुपट्टा) लेके चलने के लिए कहा, ''यह अच्छे घर की लड़कियों का रिवाज नहीं है।''[5] इसके विरोध में रमणा ने कहा, ''मुझे नहीं चाहिए अच्छे घर की रिवाज मैं नहीं बनूंगी अच्छे घर की लड़की।''[6] इस घटना से यह बात निश्चित ही तर्कसंगत है कि बचपन में घटी घटनाएँ व्यक्तित्व में बहुत बड़ा बदलाव लाती हैं। लेखिका का यही जिद्दी स्वभाव उनके साहित्य में झलकता है। उन्होंने कभी, वक्त और परिस्थितियों से समझौता नहीं किया, बल्कि उससे लड़कर वक्त को अपने अनुकूल बनाया। ''मेरे अनुभव कलम की नोक पर सवार हो पन्नों पर उतरने लगे''[7] और आज आधुनिक हिन्दी साहित्य की बेजोड़, बेबाक महिला लेखिका बनी जिसे साहित्य जगत कभी भुलाये नहीं भूल सकता। रमणिका गुप्ता एक सशक्त महिला लेखिका थी। उन्होंने आजीवन स्त्री के वर्चस्व की लड़ाई लड़ी। उनका मानना था कि ''औरत की नियति भी हारकर बैठ जाना नहीं गिरकर फिर उठना है संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना है।''[8]

वह एक बिंदास बेजोड़ महिला लेखिका थी, बचपन में हुए शारीरिक शोषण को वह अपने आत्मकथा आपहुदरी में खुलेआम लिखती हैं-''पहले दो चार दिन तो वह बड़ी शराफत से चुपचाप बैठा रहा, फिर उसने रजाई के अन्दर ही अन्दर मेरे गुप्तांगों को टटोलना शुरू कर दिया। एक दिन उसने एकाएक अपना हाथ बढ़ाकर मेरे वक्ष को छू लिया।''[9]

रमणा ने अपने बचपन से ही दैहिक शोषण के शिकार को हर दिन झेला था, उस मानसिक, शारीरिक शोषण से बचने के लिए उन्होंने अपने पति प्रकाश गुप्ता से शादी की। ''मैं उससे, विवाह करके बीबीजी और उस घर से निजात दिलाने की मिन्नत करूंगी ताकि मास्टर के चंगुल से निकल सकूं। विवाह के बाद भले वह मुझे छोड़ दे।''[10]

रमणिका जी हमेशा अपने करीबी रिश्तों से ठगी जाती रहीं, वो जीवनभर प्रेम की तलाश में भटकती रहीं, किंतु प्रेम को लेकर उनका हर प्रयोग असफल ही रहा, चाहे उनका प्रेम विवाह ही क्यों न हो। ''क्या सोचती हो तुम? बचपन से कई पुरुषों को चखती रही हो, एक से तुम्हारा मन नहीं भरेगा। मैं सोचता था, तुम सुधर जाओगी इसलिए सब कुछ जानकर शादी की थी मैंने तुमसे।''[11] मानसिक प्रताड़ना, झूठे लांछन, चरित्र हनन तथा निंदा यह सबको रमणिका गुप्ता ने झेला था, अपने पति द्वारा तिरस्कारे जाने पर वह और टूट गई किंतु अपने पति-पत्नी के रिश्तों को सफल बनाने के लिए कई प्रयास किये यह प्रयास इतने सटीक रहे कि कभी तलाक तक बात नहीं आई किंतु एक कड़वाहट हमेशा बनी रही।

ऐसी कई घटनाओं को रमणिका जी ने झेला था, यही सब जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ उनके अंदर एक दृढ़ निश्चय जगा गई और अपने स्वयं के प्रति विश्वास पनपा, सामंती परिवार में जन्मी रमणिका जी उनके विचार एक युग के आगे के थे। यही कारण हैं कि रमणिका जी अपने आपको सभी रिश्तों से स्वच्छंद करती चली गई, उन्होंने अपने जीवन में अपने अंदर की स्त्री को केन्द्र में रखकर जीवन के निर्णय लिये। उनके जीवन में कई पुरुष आये

लेकिन उन्होंने खुद को कभी अपराध-बोध का शिकार नहीं होने दिया। उनका मानना था कि एक स्त्री अपने देह की स्वयं मालिक होती है। स्त्री और उसका देह किसी का गुलाम या जागीर नहीं हो सकता।

रमणिका जी ने जीवन की हर परिस्थिति पर अपने आपका आकलन किया है, शायद यही वजह है कि वह अपने जीवन में सफल लेखिका और एक सफल राजनैतिज्ञ बन पाई। ''मैं अपने आचरण को भी तौलती हूँ। खुद भी तराजू के एक पलड़े पर चढ़ बैठती हूँ ताकि अपनी औकात अपनी हकीकत जान सकूँ, आंक सकूं।''[12]

रमणिका जी का बचपन ही पूरे राजनैतिक माहौल में पला-बढ़ा था, उनके बड़े भाई सत्यव्रत बेदी कांग्रेस पार्टी में थे, स्वयं रमणिका स्वदेशी आंदोलनों में भाग लेती थी। वह अपने जीवन में महात्मा गांधी से अधिक प्रभावित थी। वह अपने बाल्यकाल में ही घर के नौकरों हक के लिए लड़ जाती थी। लेकिन जब बात स्वयं की आई तो वह कभी मास्टर के खिलाफ हिम्मत नहीं जुटा पाई, कहने की अपने माँ-पिताजी से क्योंकि वह जानती थी, उन्हें कोई नहीं समझेगा वह उस परिस्थिति से एकदम अकेली निस्हाय थी। वह अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति पन्नों में लिखकर करती थी। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा है कि ''कविता मेरे लिए व्यक्तिगत कुंठा से मुक्त होने का जरिया पीड़ा को अभिव्यक्ति देने का रचनात्मक साधन तथा नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का बोध करवाने वाली थी।''[13]

साहित्यिक वातावरण भी उन्हें अपने घर से ही मिला था रमणिका जी के पिताजी स्वयं कविता लिखते थे। अपनी रूठी पत्नी को मनाने के लिए शादी के बाद उनके पति प्रकाश गुप्ता भी कविता पाठ किया करते थे।

स्वयं रमणिका बचपन से अपने मन की अभिव्यक्ति पन्नों पर उतारती थीं। वह कला प्रेमी थी, उन्हें नृत्य व नाटकों में अधिक रूचि थी। इन्हीं नाटकों के जरिए कमी उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया था। स्कूल, कॉलेज में कविता पाठ करने में सदैव प्रथम आती थीं। साक्षात्कार में वह स्वीकार करती है कि ''काव्य के प्रति रूचि की वजह से ही पापाजी ने मेरा नाम 'साहित्य' रखा।''[14] रमणिका जी आगे चलकर अपने जीवन में राजनैतिक क्षेत्रों से भी जुड़ी, चूँकि, घर का माहौल राजनीतिक था, बड़े भाई सत्यव्रत बेदी काँग्रेस पार्टी में थे। अपने बड़े भाई से प्रभावित होकर उन्होंने कॉलेज के समय से ही अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेती थी। देश विभाजन के बाद उन्होंने मुस्लिम महिलाओं को पाकिस्तान भेजने के लिए मुहिम चलाए। उन्हें कैम्प तक सुरक्षित पहुंचाने का जिम्मा उठाया। रमणिका गुप्ता सामंतवादी परिवार में जन्मी तो थी, लेकिन सामंतवादी सोच से वह कोसों दूर थी। उदारता उनके स्वभाव में था, लोगों की मदद करना, दीन-दुःखियों की सहायता करना इन सबसे बढ़कर वह स्त्रियों की मदद के लिए हमेशा समर्पित रहीं और यही सब वजह थी कि उन्होंने राजनैतिक दुनिया में कदम रखा, जिसके द्वारा उन्होंने न जाने कितने स्त्रियों की भविष्य संवारा, मजदूरों का उन्हें हक व सम्मान दिलाया।

रमणिका जी राजनैतिक दुनिया में भी एक सफल राजनैतिक बनी, किंतु इसके लिए उन्होंने कई कुर्बानियां दीं। कई बार उनका शारीरिक, मानसिक शोषण भी हुआ लेकिन उन्होंने कभी अपने स्वार्थ के लिए राजनीति नहीं की, इसी दरमियान उन्हें जेल भी जाना पड़ा। तब उनके पति (प्रकाश गुप्ता) ने हौसला बढ़ाते हुए उनसे कहा था। ''जो लोग विद्रोह करते हैं, वे लोग किसी घोसले में नहीं समा सकते जो लोग सफल होते हैं, वे क्रान्तिकारी कहलाते हैं। तुम क्रान्तिकारी हो।''[15] इन शब्दों ने उन्हें बहुत हौसला दिया उनका उत्साह बढ़ाया आगे बढ़ने के लिए। हिन्दी साहित्य जगत के मशहूर लेखक राजेन्द्र यादव जी ने आत्मकथा 'हादसे' की भूमिका में लिखा है कि ''रमणिका ने हर जगह सुख-सुविधाओं को छोड़कर बीहड़ रास्ता चुना है।''[16] और यह सच भी है-आपहुदरी इस बात का साक्ष्य है।

आत्मकथा के संदर्भ में विपिन चौधरी लिखते हैं- ''उनकी आत्मकथा 'हादसे', और 'आपहुदरी' में उनका अपना युद्धरत जीवन और राजनीति तथा संगठनों की असलियत दर्ज है।''[17] मेरा अनुभव 'आपहुदरी' आत्मकथा के साथ बहुत ही गहन रहा। पढ़कर यही प्रतीत हुआ, कि यह कहानी केवल एक छोटी रमणा का नहीं है, अपितु कई स्त्रियों की कहानी है। जो अन्दर से स्वच्छंद जीवन जीना चाहती हैं, अपने फैसले जो स्वयं ले सके, पितृसत्तात्मकता को जो खुलेआम नकार सके। मुझे रमणिका जी की 'आपहुदरी' आत्मकथा में सबसे ज्यादा इस पंक्ति ने प्रभावित किया ''ये चुनौतियां ही मेरी अस्मिता के विकास में सहायक हुई इन चुनौतियों ने ही नये संघर्षो को जन्म दिया और नयी राहें सिरजीं।''[18] एक स्त्री के जीवन का

संघर्ष ही उसे सवारता है। अपनी दुनिया स्वयं गढ़ने को प्रेरित करता है, एक स्त्री का संघर्ष ही उसकी खूबसूरती है।

शोधार्थी
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद, बरेली
महात्मा ज्योतिबा फूले, रूहेलखण्ड यूनिवर्सिटी
ई-मेल-kavitasaroj77@gmail.com

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. सुधा सिंह
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद, बरेली
महात्मा ज्योतिबा फूले, रूहेलखण्ड यूनिवर्सिटी
बरेली-243006

संदर्भ सूची

1. रमणिका गुप्ता : 'आपहुदरी', (आत्मकथा), 2016, सामयिक प्रकाशन, पृ.-14
2. वही, पृ.-13
3. वही, पृ.-13
4. वही, पृ.-354
5. वही, पृ.-33
6. वही, पृ.-22
7. वही, पृ.-21
8. वही, पृ.-86
9. वही, पृ.-201
10. वही, पृ.-252
11. वही, पृ.-445
12. सविता तायदे, SNDT Women's University "रमणिका गुप्ता का साहित्य एक अनुशीलन" (रमणिका जी का साक्षात्कार), पृ.-356
13. वही, पृ.-355
14. वही, पृ.-361
15. रमणिका गुप्ता : "हादसे" (आत्मकथा), राजेन्द्र यादव (हादसे की भूमिका में) 2005, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.-07
16. विपिन चौधरी, रमणिका गुप्ता : "एक युद्धरत औरत का जाना" (समालोचन पत्रिका)
17. रमणिका गुप्ता : 'आपहुदरी', (आत्मकथा), 2016, सामयिक प्रकाशन, पृ.-448

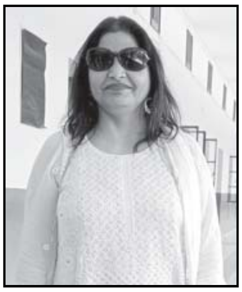

डॉ. विनीता रानी

बेबी कांबले की आत्मकथा- शोषण की व्यथा

जीवन हमारा मराठी की महत्वपूर्ण दलित लेखिका बेबी कांबले की प्रसिद्ध रचना है। यह वास्तव में एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं है वरन सम्पूर्ण दलित पिछड़े शोषित तथा अधिकार विहीन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना है। यूं तो मराठी में इससे पहले भी दलितों द्वारा आत्मचरित लिखे जा चुके हैं परन्तु यह कृति इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह एक दलित स्त्री की रचना है जो दलित चेतना के साथ-साथ दलित स्त्री की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती है। 'जीवन हमारा' में महाराष्ट्र के गांव की महार जाति के दलित समुदाय के जीवन का चित्रण किया गया है। सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े ये लोग जानवरों से भी बदतर जीवन बीता रहे हैं। दुख की बात ये है कि वे इस गुलामी से अपरिचित है उन्हें एहसास ही नहीं है कि वे इन्सान है। दलित स्त्रियों की तो और दुर्गति है वे न केवल वर्णव्यवस्था पर आधारित सामाजिक संरचना की विषमताओं को झेलती है बल्कि वे घर परिवार रिश्तेदार के पास पड़ोस की शोषणपरक व्यवस्था का भी शिकार होती है। लेखिका कहती है, ''उस समय यह दिखाने के लिए कि आप दूसरों से विशिष्ट है, घर को स्त्रियों को देहरी से बाहर नहीं आने दिया जाता था। अपनी स्त्री को किसी ने देखा नहीं, यह बात भीतर ही भीतर गर्व से भरती रहती। आस पड़ौस गांव भर में इस बात की चर्चा रहती कि फलां पढरीनाथ मिस्त्री की औरत का नाखून तक किसी ने नहीं देखा। इस तथ्य को बड़े अभिमान के साथ रेखांकित किया जाता कि फलाने की स्त्री को देहरी में फैली धूप का पता नहीं रहता। मेरे पिता ने भी मेरी मां को पिंजरे की मैना बनाकर रखा हुआ था।''[1]

बेबी कांबले ने महारों की गरीबी, गुलामी और यातना की दर्दनाक दशाओं का केवल चित्रण ही नहीं किया है बल्कि उनके आर्थिक-सामाजिक कारणों और सांस्कृति परिणामों की खोज भी की है। उन्होंने महाराष्ट्र के हिन्दू समाज की संरचना में दलितों की दीन-हीन-पराधीन स्थिति की पहचान करते हुए उच्च वर्णों द्वारा दलितों के शोषण, दमन और उत्पीड़न की जटिल प्रक्रिया का व्योरेबार वर्णन किया है। इस वर्णन में जगह-जगह दलितों की बेबसी से आत्मीय सहानुभूति प्रकट हुई है तो सवर्णों के अत्याचारों के विरुद्ध उबलता हुआ गुस्सा भी व्यक्त हुआ है। ये लोग नरकीय जीवन को भोग रहे हैं जो वास्तव में यातना से भरा है जिसका वर्णन लेखिका ने कई बार किया है। इन लोगों की गन्दगी का एहसास ही नहीं है। अपनी कई पीढ़ियां उन्होंने इसी नरक में काट दी है। हमैले, चीकट शरीर, बिना तेल लगे, गंदे उलझे बाल किसी झाड़ी की तरह कंधे पर फैले हुए। देखने वालों को लगता है कि ये बाल मानों किसी चूहे ने जगह-जगह कुतर दिये हैं। इन उलझे बालों में जूं और लीखों की भरमार होती। बच्चों की नाक हर वक्त नल की तरह बहती रहती। इन बच्चों के शरीर पर कपड़े का एक टुकड़ा तक नहीं होता था।''[2]

जिस व्यक्ति को अपने शरीर की गन्दगी का जरा भी ख्याल नहीं है। वह जानवर सरीखा है ऐसे में व्यक्ति की बुद्धि भी कुन्द हो जाती है। ऐसे व्यक्ति का जीवन किसी तरह दिनों को काटने जैसा है। थोड़ा बहुत मन बहलाने के लिए इन लोगों ने पत्थरों और अन्धविश्वासों को अपने जीवन का सहारा बना लिया था। मनुवादी व्यवस्था ने इन्हें दीन हीन बनाए रखने और अपने स्वार्थ सिद्धि हेतू विभिन्न प्रथाओं का, जाल बिछाया जिसके कारण यहां अनेक अंधविश्वास, रूढ़ियों भूत-प्रेत तथा देवी-देवता के पूजन का प्रचलन है। ऐसे उत्सवों में पोतरात बनाने की प्रथा भी महारों में है। परिवार का बड़ा बेटा पोतराज बनता है। पोतराज पीढ़ियों से चली आ रहा आमदनी का स्थायी स्रोत था। पोतराज के सामने डमरू की आवाज पर ये स्त्रियां बाल बिखेरकर सिर को तेज-तेज झटके देते हुए चीख चीखकर नाचती उनके शरीर में तथाकथित देवी आ जाती। उन्हें शान्त करने के लिए उनकी इच्छा पूरी की जाती। वास्तव में दलित समाज की भूख शान्त करने का यह जरिया थी और इसके लिए दो पांव वाला जीव (मुर्गा) अंडा, गंजा रोट, दही, भात, पकौड़े आदि की मांग होती। ''पूरे वर्ष

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

लाचार, बेबस वंचित और दलित जीवन बिताने वाली निरीह औरतों का देवता के नाम पर होने वाला यह कारोबार ही उनके उदास भूखे जीवन को चलाए रखने का अंतिम जरिया था।''[3] अन्यथा बासी रोटी के टुकड़े को भी वे पकवान की तरह खाते। भूख मिटाने के लिए वे अक्सर नागफनी के फल खाते, पर इस कांटेदार पेड़ ने कई छोटे बच्चों का जीवन बर्बाद कर दिया। बहुत बार उसके कांटे आंखों में चुभते जिससे बच्चे अन्धे हो जाते। भूख और मजबूरी की ऐसी लाचारी कि सब कुछ जानते समझते हुए भी उस कंटीले पेड़ से फल पाने के लिए जूझते और अपना जीवन दांव पर लगा देते क्योंकि ''यह नागफनी हम गरीबों के सुख दुख की सच्ची साथी थी। बचपन में खेलने से लेकर मृत्यु तक उसका हमारा साथ रहता था।''[4]

भूख और गरीबी का ऐसा तांडव कि यह सोचने को मजबूर करता है कि कल्पित नरक यही है जहां पेट की भूख मिटाने को आटे में गुड़ की बजाय मिट्टी गूंथी जाती हो ओर उस चूरमें से पेट भरा जाता हो। कहते हैं शेर कितना भी भूखा क्यों न हो पर घास नहीं खाता पर यहां इन्सान जानवरों से भी गया बीता है। ''बिना पूंछ का जानवरों जैसा यह समाज था। हाथ पांवों के कारण इंसानों जैसे दिखते थे, वैसा तो जीवन इनका जानवरों से भी गया बीता था। ये लोग जानवरों जैसी नियति को क्यों प्राप्त हुए? जानवरों जैसी बुद्धि इनकी कैसे हुए इसके जिम्मेदार केवल और केवल सवर्ण ही थे। हमारे समाज की बुद्धि इन्हीं लोगों ने नष्ट कर दी। बैलों से भी गई गुजरी हालत हम लोगों की थी। बैलों का भाग्य फिर भी ज्यादा अच्छा था। दिनभर काम करने के बाद पेट भर खाना और मालिकों के छांवदार आंगन में रहना। हम लोग शायद जानवरों के दर्जे के भी नहीं थे। सवर्ण लोग जिन मरे हुए जानवरों को वहां फेंक जाते थे हम उन्हीं के मालिक थे। मरे जानवरों के ऊपर जब कुते, चील, गिद्ध मंडराते, तब हम उन्हें भगाते और खुद के भीतर उन जानवरों का मालिक होने का अहसास उतरता पाते।''[5]

महामारी फैलने से इन दलितों की किस्मत चमक उठती। महामारी से मरने वाले जानवर बहुत घिनौने होते, पर ऐसे जानवर को भी वे फेंकते नहीं थे। अपने मन को समझाने के लिए वे जानवर सड़ा गला और मवाद भरा हिस्सा निकाल फेंकते और बाकी को इस्तेमाल करते। कैसी घिनौनी जिन्दगी है। जो पेट भरने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकती है। इसका एक अर्थ यह भी है कि उनके लिए जीना भी एक संघर्ष है और उस जीने के लिए पेट की आग तो रोज ही बुझानी है। चाहे इसके लिए उन्हें चील गिद्धों की श्रेणी में आना पड़े। यह जीवन का बड़ा ही वीभत्स रस है। ''सारी आरतों बेसुरे राग में 'चील चील' गाती हुई चल रही होती। उनके चेहरे, गर्दन, छाती और पीठ मांस से पटकते खून, सड़े हुए हिस्से से टपकते मवाद और बदबूदार पानी से भीग जाते इन औरतों को देख ऐसा लगता मानो साक्षात भूत प्रेत की सवारी जा रही हो।''[6]

जीवन का एक रूप ये भी है और दूसरी तरफ साहित्य शास्त्री साहित्य के बारे में सिद्धांत गढ़ते रहे कि वह समाज का आईना होता है। समाज की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लेकिन उसी समाज की लगभग आधी आबादी साहित्य में उपेक्षित रही। सवर्ण साहित्यकारों को ऐसी गरीबी, द्ररिद्रता, वीभत्सता और अभावग्रस्त जीवन कभी नहीं दिखाई दिया। क्योंकि इस व्यवस्था को बनाए रखने में वे भी दोषी थे। गरीबी गुलामी और यातना की ऐसी दर्दनाक तस्वीर साहित्य में कहीं नहीं मिलेगी।

बेबी कांबले ने 'जीवन हमारा' में दलित उत्पीड़न के साथ-साथ दलित स्त्री के दमन का भी अनोखा चित्रण किया है। अभी तक के दलित साहित्य में दलित स्त्री की पीड़ा और यातना को व्यक्त नहीं किया गया। दलित स्त्रियों की स्थितियों पर बात करना खुद दलित पुरुषों के लिए सहूलियत भरा मामला नहीं है। इसलिए इसका विमर्श के केन्द्र में न आ पाना स्वाभाविक है। भारतीय समाज की विवाह व्यवस्था और सामाजिक संरचना ऐसी है जिससे औरत के शोषण की भरपूर गुंजाइश है।

भारतीय समाज में औरतों के लिए शादी एक सजा से कम नहीं है। चक्की पीसना, पानी लाना, रोटी बनाना जैसे गृहस्थी के काम उसके गले मढ़ दिए जाते हैं। स्थिति तब और दयनीय होती है जब दुल्हन आठ नौ बरस की होती है, खेलने खाने के दिनों में ससुराल का अत्याचार उसकी जिन्दगी बर्बाद करके रख देता है। हर उम्र का व्यक्ति या बच्चा उसका अपमान करता। सबको खाना खिलाने के बाद वह बच्चा कुचा खाना खाती। पहली माहवारी उसके लिए यातना देने वाली होती। सास अपनी बहू व बेटे की भरपूर पहरेदारी करती। सास को हमेशा ये डर बना रहता कि कहीं बेटा बहू का गुलाम न बन जाए। ऐसी असुरक्षा की भावना के कारण आज भी बहुत सी सासें अपने बेटे बहू की जिन्दगी बर्बाद कर रही है। वे बहू के खिलाफ बेटे के कान भरती हैं जिससे कभी वे प्रेमपूर्वक न रह सके और बेटा हमेशा उनकी मुठ्ठी में रहे। ऐसी सासों को अपनी बेटियां सबसे अच्छी लगती हैं और बहू तो मानो पूर्व जन्म की बैरी हो। सास बहू को अपमानित करने तथा गाली गलौच करने के अवसर ढूंढती। मां रोकर दुखी होने की नौटंकी करती जिससे बेटे का दिल पसीज जाता और वह अपनी पत्नी को मार मार कर अधमरा कर देता। सास अपने बेटे का दिमाग खराब करने में कोई कसूर न छोड़ती। जिससे इन निष्पाप औरतों का जीवन बर्बाद हो जाता है।

''आदमी अपनी औरत को जानवरों की तरह पीटता। किसी औरत का सिर फूट जाता तो कोई बेहोश ही जाती। किसी की कमर टूट जाती। इतनी मार खाने पर भी किसी को उस पर तरस नहीं आता। पेट में अन्न नहीं, तन पर वस्त्र नहीं, बगैर तेल के बिखरे जटा सरीखे बाल, टूटा थका बदन प्रत्येक घर की बहू का यही हाल होता। और ऐसे हाल वाली बहू गुलाम होती। ननद, देवर, सास, ससुर और रिश्तेदारों की।''[7]

सिर्फ दो जून की रोटी और तन ढकने के लिए कपड़े के लिए वो इतने सारे लोगों की मुफ्त की गुलाम थी। जिसके साथ आप कैसा भी सलूक करो कोई पूछने वाला नहीं था। बहुत बार इन अत्याचारों से परेशान होकर कोई बहू मायके चली जाती तो मायके वाले भी उससे सहानुभूति नहीं दिखाते और वह अबला फिर से अत्याचार झेलने के लिए कसाइयों के दरवाजे पर आ जाती। ऐसी बहू पर ससुराल वाले और आक्रामक हो जाते। ''पांच किलो वजन की लड़की बढ़ई के पास ले जाकर गोल आकार में कटवाई जाती। उस गोल लकड़ी के बीचों बीच पांव भीतर घुसने जितना छेद बनवाया जाता। पांव में पहनाने के बाद वह निकल ल जाए इसलिए छेद के बीचों बीच एक सरिया लगा दिया जाता। इसे 'खोड़ा' कहा जाता था।''[8] काठ की पुतली की तरह वह संवेदनहीन भावहीन किसी तरह जिन्दगी के दिन काटती इस पर भी ससुराल वालों का दिल न भरता तो वे बेटे के और कान भरती कि ''बाप का नाम ऊंचा कर 'हिजड़ा मत बन', देख, सर सलामत है तो पगड़ियों हजार... दो दिन में तेरा दूसरी जगह रिश्ता तय कर दूंगी। ये रांड अच्छी नहीं है। आंचल से आंख पोछते हुए रोने का नाटक करती सास।''[9] इसके लिए बहू की नाक कटवाई जाती। रात को सोते समय बेटा बहू की छाती पर चढ़ बैठता और नाक काट देता। खून से लथपथ रोती बिलखती औरत को तब वे लोग धक्के मारकर घर से बाहर निकाल देते। ऐसे में सास अपनी इच्छा की पूर्ति होते देख खुशी से फूलो न समाती।

घूंघट प्रथा ने औरतों की जिन्दगी को हराम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जो औरत गज भी लम्बा घूंघट न निकाले उसे रांड, वेश्या, बेशरम, कुलाक्षिणी जाने क्या-क्या कहा जाता है। लेखिका बड़े दुख के साथ कहती, ''स्त्री सत्य और शील का प्रतीक है। जिसने पैदा किया उसे ही जीवन भर सर झुकाकर जीना है। यही स्त्री की नियति रही। वर्ण व्यवस्था, जाति भेदभाव को बनाने वाले धोखेबाज विश्व निर्माता ने हम औरतों के साथ घोर अन्याय किया। कुछ घटनाक्रम ऐसा हुआ कि औरत ही औरत की शत्रु बनी। अन्याय व अपमान की जिस बेड़ी में पुरुष ने स्त्री को जकड़ा हुआ था, उस बेड़ी के टुकड़े टुकड़े कर अबला को मुक्त किया 'हिन्दू को बिल' ने इस हिंदू कोड बिल को बनाया विश्वकर्ता दुखाहर्ता नीतिगत भीमराव अम्बेडकर ने।''[10]

दलित स्त्री आत्मकथाकारों ने यहां दलित स्त्री की तिहरी वेदना एवं यातना से पाठक को गुजरना पड़ता है। पहली स्त्री होने के नाते। दूसरी दलित हो के नाते। तीसरा गरीब और अभाव से ग्रस्त होने के कारण। दलित महिला आत्मकथाओं में इसी शोषण का कच्चा चिट्ठा खुला मिलता है। जिसमें स्वयं सवर्णों की गुलामी के शिकार दलित पुरुष अपने घर की औरत को गुलाम समझते हैं और उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। गुलामी की इस सर्वग्रासी प्रक्रिया के विकराल रूप और उसके चंगुल में फंसे दलित समुदाय विशेष रूप से दलित स्त्री की लाचारी तथा पीड़ा की जैसी अभिव्यक्ति इस रचना में बेबी कांबले ने की है वैसी कोई गैर दलित तो क्या दलित पुरुष भी नहीं कर सकता।''[10]

इन औरतों को घर के अलावा सवर्णों की भी गुलामी करनी पड़ती। राह चलते कोई सवर्ण दिखे तो इन्हें रास्ता छोड़ना पड़ता था और 'पायलागू' बोलना पड़ता था अगर कोई औरत ऐसा नहीं करती तो सवर्णों द्वारा अपमानित किया जाता और बाद में घर वाले भी उसे गधी, रांड, कुलक्षणी जान क्या क्या कहते। सवर्णों के घरों के लिए लकड़ियां रखते समय ध्यान रखना पड़ता कि इनमें बाल न हो। इससे सवर्णों के धर्म भ्रष्ट होने का खतरा था। इस पर बेबी कांबले उन सवर्णों को ललकारते हुए कहती है ''हमारा रक्त पीकर, हमारे दुखों को बढ़ाकर तुम्हारी जो सुख की सेज तैयार होती है, उस पर सोते समय तुम्हें छुआछूत का भय नहीं सताता। अज्ञान का पर्दा हमारी आंखों पर चढ़ाकर हमारी अस्मत को तुमने दो कौड़ी का ठहरा दिया। यह बात और तुम्हारा स्वार्थी धर्म अब हमें समझ में आने लगा है। यह कीमती ज्ञान और अपने जानवर सरीखे जीवन का कारण अब हमें समझ में आने लगा है। यह ज्ञान जिसने हमें दिया है वह शीलवान, हमारे सिर का ताज, हमारे नए जीवन का शिल्पकार निर्माता है-डॉ. आंबेडकर।''[10]

एक तो कम उम्र में शादी, उसके बाद ससुराल का कहर। कम उम्र में असुरक्षित तरीके से किए गए प्रसव से जच्चा जिन्दगी और मौत के बीच झूलती। ऐसी हालत में भी उसके पास ओढने के लिए सलीके का कपड़ा नहीं होता। खाने के नाम पर दलिया मिल जाता तो वह भाग्यवान मानी जाती। इस तरह के अभाव ग्रस्त माहौल में समुचित देखभाल की कमी से कई लड़कियां मौत को प्यारी हो जाती थीं। बच्चा भी कौन सा भाग्य लेकर पैदा होता है। ''ब्रह्मा ने इन डोम बच्चों के लिए एक मुहर बना ली थी जिस पर लिखा था- 'हतभागा... गुलाम... बदनसीब...'। काश, एक बार ये ब्रह्मा और ये सखी हमारे सामने आते या कहीं मिल जाते तो दोनों हाथों से झिझोड़ झिंझोड़कर, उनसे पूछते- 'क्यों रे ब्रह्मा, क्यों रे सटवी, सवर्णों से धर्म के नाम की रिश्वत लेकर हम लोगों की पीढ़ियां मिट्टी में मिला दी। हम तुम्हारे दिए दुख सह सहकर भी हारे नहीं हारे तो तुम हो। हे ईश्वर, तुम उतने दुःख नहीं दे सकते जितने हम सह सकते हैं।''[11]

अत्याचारों की फेरहिस्त बहुत लम्बी है। सवर्ण साहित्यकार अपने इस 'गौरवमयी अतीत' को याद नहीं करना चाहते। वे नहीं चाहते कि दलितों की कृतियां इतिहास का हिस्सा बने। इसलिए वे इस साहित्य को नकारते रहते हैं। आज भी संविधान के होते हुए मनु का विधान चलता है। जो कहता है कि सवर्णों के खाना खाते समय दलितों की आवाज उनके कानों में नहीं पड़नी चाहिए। इस लिए डोम को लकड़ी लेकर चलना पड़ता जिसमें घुंघरू बंधे होते जिसे वह हिलाकर अपने आने की सूचना देता। सवर्णों की शादियों में जलावन की लकड़ियों से लेकर मल साफ करने का काम डोम करता। डोमनी उस घर की सफाई करती

और बदले में झूठन की हकदार बनती। उस झूठन के लिए भी उसे इन्तजार करना पड़ता। उन अभागों को वे झूठन भी स्वर्गिक आनन्द देती। डोम सवर्णों के सामने सीधे खड़े नहीं हो सकते थे। सवर्णों के प्रति डोम का यह भी कर्तव्य था कि सवर्णों के यहां किसी की मृत्यु होने पर उसके सभी रिश्तेदारों को सूचित करे और इसके लिए वह भूखा प्यासा आंधी बारिश की परवाह किए बिना दौड़ता रहता। इतने में डोम के घर वाले शमशान तक लकड़ियां पहुंचाते और इतना करने के बाद इनको चिता से लिपटा हुए कफन तोहफे में मिलता। इतना अत्याचार झेलते जिससे इन गरीबों का जीवन तीस चालीस वर्ष रह गया।

''हम लोगों के धैर्य और सहनशक्ति के परिणामस्वरूप वह अंकुर बाहर आया, जिसने समाज को, फिर विश्व को ममता, बंधुभाव और समानता का रास्ता बनाया और ये थे भगवान बुद्ध जिनकी नीतियों पर चलकर भीमराव आंबेडकर ने हम अंधों को आंखें दी। बुद्धि की तीनों बातों को लेकर चलने वाले डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर ने हमें गुलामी से मुक्ति दिलाई।''[12] हमें शिक्षा का महत्व बताया जिसके आलोक में यह समाज गुलामी से मुक्ति पा सकता था। जिन लोगों ने हमें सदियों से गुलाम बनाकर रखा था वे इस बात को कैसे सहते कि उनके गुलाम अब शिक्षित होना चाहते हैं। उन्होंने वहां भी मनु के विधान को लागू किया। जब डोम समाज की लड़कियां स्कूल में पढ़ने गई तो उन्हें देखकर सवर्ण लड़कियां इस तरह की प्रतिक्रिया देती जैसे वे कोढ़ी हो तथा खून और पीप से सने हुए हों। लगभग सभी दलित आत्मकथाओं में स्कूल में किए गए भेदभाव को वर्णित किया गया है। चाहे वह दलित भारत के किसी भी कोने का हो, सबकी एक जैसी दुर्गती हुई है। इन बालकों को सबसे पीछे बैठाया जाता। प्यास लगने पर सवर्ण छात्राओं की चिरौरी करनी पड़ती है। ईर्ष्यावश उन्हें पीटने के अवसर ढूंढती। अध्यापक भी इसी फिराक में रहता कि किसी तरह इनके आत्मबल मनोबल को कम किया जाए।

इन दलितों को भी अंबेडकर का सहारा हो चला था। उन्हें अपने मसीहा पर गर्व था और सवर्ण उनका अपमान करें इसे वह सहन नहीं कर सकती थी। ''कमीनी रंडियों, हमारे आंबेडकर का नाम क्यों ले रही हो...'' तुम्हारा भी तो है गांधी। उसके शरीर पर तो कपड़े भी नहीं होते हैं। पोपले मुंह वाला, तुम्हारे गांधी के तो दांत ही नहीं है।''[13] सवर्ण लड़कियां उन्हें जातिसूचक शब्दों से भी अपमानित करती लेकिन आंबेडकर ने इन जातियों को जो ज्ञान दिया उसे स्वीकार करने के बाद वे किसी भी बाधा से लड़ने के लिए तैयार थे। बेबी कांबले दलित समाज की व्यथा का चित्रण करते हुए उसका विश्लेषण भी करती है। समाज का जागरण भी करती है आंबेडकर के उद्धरणों द्वारा समाज को मुक्ति की प्रेरणा भी देती है कि हमें अपने आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित करना है और ये काम महिलाएं बखूबी कर सकती हैं। हिन्दू धर्म जिसने आज तक हमें दु:ख संत्रास गुलामी और अभाव के सिवा कुछ नहीं दिया उसे छोड़ना होगा। कांवर जैसे पाखण्ड को छोड़ना होगा वे कहती हैं ''हमारी पीढ़ियां मंदिरों को चौखटों पर अपना सर पटकती रही, देवताओं को अपने दुख सुनाती रही लेकिन वह विश्वकर्ता भगवान आंख होकर भी हम लोगों के लिए अन्धा बना रहा। हम विवेकहीन-बुद्धिहीन गुलाम बने रहे और फिर हमारे भीतर चेतना फूंकी डॉ. आंबेडकर ने।''[14] हमारा असली भगवान आंबेडकर है वे किसी भी तरह के पाखण्ड और प्रतिमा पूजन को नकारती हुई कहती है कि आंबेडकर उनके लिए भगवान हैं पर वे उनकी पूजा था धूप अगरबती नहीं करती है बल्कि वे उनके सिद्धांतों को मानती है। प्राकारान्तर से वे ये सन्देश देना चाहती है कि उन्होंने बाबा साहब द्वारा बताया गया शील, सत्व और नीति को आत्मसात किया और यही सब चरित्र निर्माण करता है।

अन्त में वे उन लोगों की खबर भी लेती है जो बाबा साहब को भूलकर कल्पित भगवान की गुलामी करने लगे हैं और फिर से व्रत, उपवास और अन्धविश्वास के सागर में डूबते जा रहे हैं। लेखिका को दलित समाज के लोगों का ऐसा व्यवहार व्यथित करता है। महिलाओं पर समाज को बदलने की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। वे अपने बालकों का उचित मार्गदर्शन कर दलित समाज का मार्गप्रशस्त कर सकती है। जीवन के अन्धकार को समाप्त करने के लिए उन्हें आंबेडकर रूपी सूर्य की शरण लेगी होगी तभी हमारा जीवन आलोकित हो सकेगा। बुद्ध और भीम हमारे समाज के आदर्श होने चाहिए। जो हमारे समाज को दिगभ्रमित करके पतन की ओर ले जा रहे हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर
जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल-vinitarani@jdm.du.ac.in

संदर्भ सूची

1. जीवन हमारा, लेखिका बेबी कांबले, किताबघर प्रकाशन 1995, पृष्ठ 15
2. वही, पृष्ठ 18
3. वही, पृष्ठ 38
4. वही, पृष्ठ 54
5. वही, पृष्ठ 54
6. वही, पृष्ठ 98-99
7. वही, पृष्ठ 109
8. वही, पृष्ठ 109
9. वही, पृष्ठ 110
10. वही, पृष्ठ 112-113,
11. वही, पृष्ठ 67
12. वही, पृष्ठ 115,
13. वही, पृष्ठ 121
14. वही, पृष्ठ 131

सच्चर कमेटी की अनुशंसा पर सरकारी प्रयास - एक अध्ययन

शहनाज

परिचय

भारत एक लोककल्याणकारी पंथनिरपेक्ष गणराज्य है। किसी भी लोकतंत्रात्मक राष्ट्र एवं विकासात्मक समाज की पहचान उस समाज में प्रत्येक वर्ग, समूह, जाति, धर्म, लिंग इत्यादि का वास्तविक स्थिति के निर्धारण के बिना संभव नहीं है। वास्तविक स्थिति से तात्पर्य सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक के साथ उनकी सांस्कृतिक विरासत की स्थिति विकास की प्रक्रिया में क्या है?

लोककल्याणकारी राज्य भारत में स्वतंत्रता के बाद सन् 2005 में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक स्थिति को पहली बार जानने का गंभीर प्रयास सच्चर कमेटी गठित करके की गयी। प्रस्तुत शोध-पत्र में सच्चर कमेटी एवं उसकी अनुशंसा व सरकारी प्रयास पर केन्द्रित है। जो एक विश्लेषणात्मक पद्धति का है।

सच्चर कमेटी

भारत सरकार के प्रधानमंत्री कार्यालय ने 9 मार्च 2005 को देश के मुस्लिम समुदाय की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति की वास्तविकता का पता लगाने के लिए एवं रिपोर्ट तैयार करने के लिए उच्चस्तरीय समिति के गठन को लेकर अधिसूचना जारी की थी। समिति को मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति से संबन्धित प्रासांगिक मामलों से निपटने के लिए सरकार की पहल से संबंधित क्षेत्र की पहचान कर संबंधित एवं लक्षित जानकारी को स्पष्ट करने उनका तुलनात्मक अध्ययन करके व्याख्यायित करने का काम सौंपा गया। इस समिति में सात सदस्य शामिल थे। समिति की अध्यक्षता दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश राजिंदर सच्चर ने की (अन्य सदस्य-सैय्यद हामिद, एम.ए. बसिथ, अख्तर मजीद, अबू सलेह शरीफ, टीके ओमन और राकेश बसंत) - इस समिति को सच्चर कमेटी के नाम से जाना जाता है। जिसके द्वारा 17 नवम्बर 2006 को अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रधानमंत्री को सौंपी गयी। इस समिति ने मुस्लिमों के सामाजिक-आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति पर निम्न प्रश्नों के व्यापक उत्तर खोज महत्वपूर्ण अनुशंसाएं प्रस्तुत कीं। उन प्रश्नों में निम्न प्रश्न शामिल थे।

(i) किन प्रदेशों, प्रांतों, जिलों और जनपदों में देश के अधिकांश मुस्लिम रहते हैं?

(ii) उनके आर्थिक क्रियाकलाप का भौगोलिक सांचा क्या है?

(iii) अन्य समूहों की तुलना में उनके पास कितनी संपत्ति है और उसकी आमदनी का स्तर क्या है?

(iv) संबन्धित मानकों, जैसे साक्षरता दर, शिक्षा छोड़ने की दर, जननी मृत्युदर, नवजात शिशु मृत्युदर आदि के आधार पर उनके सामाजिक-आर्थिक विकास की दर क्या है? विभिन्न प्रदेशों में दूसरे वर्गों की तुलना में राज्य दर राज्य स्थिति क्या है?

(v) सरकारी एवं प्राईवेट सेक्टर की नौकरियों में इनकी आनुपातिक भागीदारी कितनी है? क्या नौकरियों में उनकी भागीदारी, विभिन्न प्रदेशों में उनकी आबादी के हिसाब से है, अगर नहीं तो उनके मार्ग में क्या-क्या कठिनाईयाँ हैं?

(vi) विभिन्न प्रदेशों में कुल पिछड़े वर्गों की आबादी में मुस्लिम समाज के पिछड़े वर्गों का कितना हिस्सा है,

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

क्या मुस्लिम पिछड़े वर्गों को उनकी आबादी के हिसाब से लाभ मिला है?

(vii) क्या मुस्लिम समाज को शैक्षणिक और स्वास्थ्य सेवाओं, नगर निगम निकायों व सरकार, अर्द्ध सरकारी संस्थाओं द्वारा बैंक से कर्ज, आदि तक समुचित पहुंच है। मुस्लिम बहुलता वाले इलाकों में सामाजिक ढांचा जैसे-स्कूल, स्वास्थ्य आदि क्या राष्ट्रीय स्तर व अन्य राज्यों की तुलना में किस स्थिति को प्रकट करता है?

उपर्युक्त प्रमुख प्रश्नों का विस्तारपूर्वक सच्चर कमेटी ने अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट सौंपी।

सच्चर कमेटी रिपोर्ट पर सरकारी प्रयास

सच्चर कमेटी ने व्यापक अध्ययन करके स्वतंत्रता के बाद मुस्लिम अल्पसंख्यकों की वास्तविक स्थिति को प्रदर्शित किया जिसमें मुस्लिम समुदाय की सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से अत्यंत पिछड़ी हुई स्थिति को स्पष्ट किया। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने विभिन्न स्तरों पर असमनाताओं को उजागर किया, जिसमें स्पष्ट किया गया कि मुसलमान विकास के संकेतकों में कई अन्य समूहों से बहुत पीछे हैं। इन्हीं असमानताओं को दूर करने के लिए भारत सरकार ने वर्ष 2006 में शैक्षिक सशक्तिकरण, आर्थिक विकास, बुनियादी ढांचे में सुधार तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की विशेष जरूरतों के लिए अल्पसंख्यक कार्य मंत्रालय की स्थापना की। अल्पसंख्यकों के शैक्षिक सशक्तीकरण के लिए निम्न प्रावधान के साथ प्रभाविकता के स्तर को तीव्र किया।

(i) प्री मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना।

(ii) पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति योजना।

(iii) योग्यता-सह-साधन आधारित छात्रवृत्ति योजना।

(iv) मौलाना आजाद नेशनल फेलोशिप।

(v) पढ़ो परदेश योजना।

(vi) बेगम हजरत महल राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना।

(vii) नया सवेरा योजना।

(viii) नई उड़ान योजना।

(ix) मदरसों/अल्पसंख्यकों को शिक्षा प्रदान करने की योजना इत्यादि हैं।

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट एवं अनुशंसाओं पर 31-08-2007 को संसद के पटल पर एक विवरण रखा गया जिनमें यह बताया गया कि-

-रिपोर्ट की कुल अनुशंसाएं/सुझाव की संख्या-76

(क) सरकार द्वारा 72 अनुशंसाएं स्वीकृति की गयी थीं।

(ख) तीन अनुशंसाएं स्वीकृति नहीं की गयी थीं।

(ग) 1 अनुशंसा स्थागित कर दी गयी थी।

अस्वीकृति/स्थगित अनुशंसाएं

सच्चर कमेटी की निम्नलिखित तीन अनुशंसाएं नहीं स्वीकारी गयी जबकि (iv) स्थगित किया गया जो निम्न है।

(i) जातियों/वर्गों की गणना/जनगणना 10 वर्ष के अंतराल पर किया जाना।

(ii) राज्य वक्फ बोर्डों और केन्द्रीय वक्फ परिषद् की कार्यप्रणाली को व्यवस्थित रखने हेतु अधिकारियों के नये अखिल भारतीय संवर्ग का सृजन किया जाना।

(iii) सभी सामाजिक, धार्मिक समुदायों में अति पिछड़े लोगों नियमित विश्वविद्यालयों और स्वायत्त महाविद्यालयों में प्रवेश सुलभ कराने हेतु वैकल्पिक प्रवेश मानदंड का प्रावधान किया जाना।

(iv) अरजलों को अनुसूचित जाति या अति पिछड़े वर्ग में शामिल किया जाना।

- सरकार द्वारा 72 स्वीकृति अनुशंसाओं के क्रियान्वयन हेतु समान स्वरूप की अनुशंसाओं को समेकित करके 43 निर्णय लिये गये। ये निर्णय व्यापक और सभी अधिसूचित अल्पसंख्यकों को सम्मिलित करते हैं।

-सच्चर कमेटी की 43 अनुशंसाओं पर लिये गये निर्णय जो निम्न वर्गों के थे।

(i) शिक्षा (15 निर्णय)

(ii) कौशल विकास (2 निर्णय)

(iii) ऋण सुलभता (6 निर्णय)

(iv) विकास से जुड़ी विशेष पहलें (2 निर्णय)

(v) सकारात्मक कार्रवाही हेतु उपाय (4 निर्णय)

(vi) वक्फ (4 निर्णय)

(vii) विविध (10 निर्णय)

अत: स्पष्ट है कि सच्चर कमेटी की रिपोर्ट पर सरकार गंभीरता से प्रयास हेतु सतर्क हुई।

निष्कर्ष:-उपर्युक्त सच्चर कमेटी की रिपोर्ट और अनुशंसाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि इस रिपोर्ट से जो तथ्य सामने आये वो किसी भी समाज, राष्ट्र, राज्य, समूह के लिए चिंताकारक थे। जिसके कारण सच्चर कमेटी की रिपोर्ट पर अधिकांश अनुशंसाओं पर

सरकार का सकारात्मक दृष्टिकोण साथ ही प्रयास भी दिखता है। किंतु विगत एक दशक की पृष्ठभूमि में मुस्लिमों के प्रति जो सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण में पतन देखने को मिला है वह सच्चर कमेटी के प्रयासों से जो सकारात्मक बदलाव दृष्टिगत हो रहे थे, उन पर विराम लगा देती है।

किसी भी लोकतांत्रिक समाज में घृणा, धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता, धर्म विशेष के प्रति भेदभाव, सांप्रदायिकता, असमानता, भेदभाव इत्यादि कारकों के रहते, कोई भी राष्ट्र संवैधानिक आदर्शों को प्राप्त नहीं कर सकता है और ना ही समतामूलक समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।

अतः वर्तमान परिपेक्ष्य में सरकारों को अधिक संवेदनशीलता के साथ और अधिक प्रयासों की नितांत आवश्यकता है, जिससे मुस्लिम समूह के लोग भी समाज एवं विकास की मुख्यधारा से जुड़कर बिना किसी भेदभाव और डर के समान रूप से राष्ट्र के विकास में योगदान दे सकें। सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षणिक रूप से विगत कुछ वर्षों में मुस्लिमों के प्रति जो हिंसात्मक भेदभाव समाज में देखने को मिला, वो चिंतात्मक है, सरकार को सुरक्षा के साथ समान व्यवहार व मुख्य रूप से और अधिक प्रयास की नितांत आवश्यकता है।

शोध छात्रा
कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल- उत्तराखण्ड
Email: shahnazkhan637@gmail.com

संदर्भ सूची

1. भारत में मुसलमानों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति, एक रिपोर्ट, प्रधानमंत्री की उच्चस्तरीय समिति केंद्रीय सरकार, नवंबर, 2006.
2. माइकल फ्रीमैन, मानवाधिकार, एक अंतःविषय दृष्टिकोण (कैम्ब्रिजः राजनीति प्रेस, 20030, पृ. 116.
3. हुमायूँ कबीर, एक लोकतंत्र में अल्पसंख्यक (कलकत्ताः फरमा के एल मुखोपाध्याय, 1968), पीपी. 6-8.
4. सोली जे. सोराबजी, ''अल्पसंख्यकः राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण'', इकबाल ए. अंसारी, (सं.) में, अल्पसंख्यकों, परिप्रेक्ष्य और दस्तावेजों पर पढ़ना (नई दिल्लीः उद्देश्य अध्ययन संस्थान), वॉल्यूम-1, पृ. 66.
5. कैरोलिन एम. बायर्ली द पालग्रेव इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ वीमेन एंड जर्नलिज्म (लंदनः पालग्रेव, 2016), पृ. 385.
6. जॉन दयाल, ए मैटर ऑफ इक्विटीः फ्रीडम ऑफ फेथ इन सेकुलर इंडिया (नई दिल्लीः अनामिका पब्लिशर्स, 2007), पृ. 3.
7. अब्दुल रहीम पी. विजापुर, अजय कुमार सिंह और कुमार सुरेश, बहुलवाद, अल्पसंख्यक, राष्ट्रीय एकता, समस्याएँ और संभावनाएँ (नई दिल्ली, दक्षिण एशियाई प्रकाशक, 1997), पृ. 5.
8. मोईन शाकिर, अल्पसंख्यकों की राजनीति कुछ परिप्रेक्ष्य (नई दिल्लीः अजंता प्रकाशन, 1980), पृ. 33.
9. भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों के शैक्षिक सशक्तीकरण की स्थिति
https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/state-of-educational-empowerment-for-religious-minorities-in-india

नेहा

देवेन्द्र सत्यार्थी की लोक सम्बन्धी दृष्टि

किसी भी देश की संस्कृति का अध्ययन करना हो तो उस देश के लोक साहित्य को समझना आवश्यक है क्योंकि लोक साहित्य में लोक जीवन की समस्त विशेषताएँ मौजूद रहती हैं। लोक अभिव्यक्ति ही समृद्ध होकर लोक साहित्य का रूप लेती है, जिसमें उसके सुख-दुख का स्पष्ट स्पन्दन सुनाई देता है। लोक कल्पना मनुष्य के सुख-दुख तक ही सीमित नहीं है अपितु पशु-पक्षी एवं प्रकृति भी उसके सुख-दुख के साझीदार है। मनुष्य जन्म से ही अपने लोक से जुड़ जाता है। इस प्रकार लोक साहित्य की गतिशील धारा प्राचीन समय से लोकमानस को आनंदित करती चली आ रही है। समयानुरुप परिवर्तशीलता के गुण उसकी उपयोगिता को बनाए रखते हैं, इसलिए तत्कालीन समाज और संस्कृति का चित्रण लोकसाहित्य में बखूबी देखा जा सकता है।

हिंदी लोक साहित्य, अपनी अनेक विशेषताओं के लिए विश्वविख्यात है। जिसमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनेक बहुरंगी चित्र समाहित हैं। भारतीय संस्कृति की उत्पत्ति का मूल स्रोत लोक जीवन है। प्राचीन काल से प्रवाहमान लोक संस्कृति को जिन रचनाकारों ने उसके सम्पूर्ण सौंदर्य के साथ आत्मसात कर साहित्य में अभिव्यक्त किया है, उनमें देवेन्द्र सत्यार्थी प्रमुख रचनाकार हैं। उनकी दृष्टि में लोक साहित्य मात्र अतीत की वस्तु नहीं है। अतीत से लेकर अब तक की समस्त बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक गतिविधियों का सम्पूर्ण इतिहास इसमें निहित है। इसके बिना देश के वास्तविक इतिहास का निर्माण असंभव है। उनके साहित्य में जीवन, लोक मंगल एवं लोक अभिरुचियों का सुन्दर एवं सजीव वर्णन देखने को मिलता है।

सत्यार्थी जी ने मानव जीवन से सम्बन्धित उन सभी पहलुओं, जिनसे मानव जीवन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों से प्रभावित होता है, उन सभी का वर्णन अपने सृजनकाल में किया है। उन्होंने लोक से जुड़ी परम्पराओं, प्रथाओं, जनश्रुतियों, तंत्र-मंत्र, व्रत, त्योहार, उत्सव, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ इत्यादि मनोरंजन के साधन जो कि लोक जीवन पर प्रभाव डालते हैं, का अपने रचना संसार में बखूबी चित्रित किया है। ''भारतीय साहित्य में देवेन्द्र सत्यार्थी लोक साहित्य के संकलन-अनुशीलन के लिए प्रख्यात है। लोक साहित्य में उनकी आस्था इतनी गहरी है कि कविता कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, संस्मरण, भेटवार्ता आदि सभी प्रकार की रचनाओं में यह लोकतत्व एक स्रोतास्विनी के रूप में निरन्तर प्रवाहित होता देखा जा सकता है।''[1]

सत्यार्थी जी की लोकदृष्टि जनशक्ति की सफल अभिव्यक्ति में समाहित है, यही बात हम लोकगीतों के अध्ययन करते समय अनुभव करते हैं। पारिवारिक जीवन की स्नेहधारा और घृणा, विजय और पराजय, सामाजिक उत्सवों का उल्लास और वेदना के क्षणों के आँसू इत्यादि सभी भाव उनकी लोक दृष्टि के महत्वपूर्ण तथ्य है। इनके द्वारा संग्रहित लोकगीत अपने दर्पण में लोक की सामाजिक रूपरेखा को रेखांकित करते हुए चलते हैं। जनशक्ति की सफल अभिव्यक्ति ही लोक संस्कृति की परम्परा रही है, जो हमें उनके द्वारा संग्रहित लोकगीतों में देखी जा सकती

है– ''यह भी ध्यान देने योग्य है कि सौन्दर्यमूलक दृष्टि होते हुए भी उनमें जीवन के प्रति मोह, श्रद्धा और आस्था है। उसके रस और आनन्द के प्रति स्वस्थ आकर्षण है, लेखन में रंगीनी के साथ एक स्पष्ट यथार्थवादिता है, और लोकजीवन के प्रति एक सहृदय दृष्टि है, जिन तत्वों के साथ नई समाज–चेतना को सम्मिलित कर वे निश्चय ही आधिकाधिक अग्रसर हो सके हैं।''[2] इस प्रकार सत्यार्थी के लोकगीतों में उनकी लोकदृष्टि को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। 'धरती गाती है' लोकगीत में पृथ्वी सूक्त के स्वर को आधार बनाकर मानव समुदाय की 'धरती के प्रति' लोक दृष्टि को उजागर किया है–

''माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''[3]

अर्थात् धरती मेरी माता और मैं उसका पुत्र हूँ। इस लोक भावना से स्वयं को जोड़ते हुए सत्यार्थी जी ने पृथ्वी के महत्व को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक लोक समूह धरती को अपनी माँ मानता है क्योंकि वह संसार में सबसे पहले स्थापित हुई है। उसके अँचल के सुख–दुख को भोगकर प्रत्येक प्राणी अपना जीवन जीता है और फिर इसी में मिल जाता है।

इसी तरह बुन्देली क्षेत्र में प्रचलित बुंदेली लोकगीतों में भी धरती के प्रति यह भाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

''धरती माता तैने काजर दए,
सेदुंरन भर लई मांग
पहन हरिअल ढाडी भई
तैन मोह लयो जगत संसार''[4]

(अर्थात् हे धरती माता, तुमने आँखों में काजल डाल कर सिंदूर से मांग भर ली, हरियाले वस्त्र पहनकर तुम खड़ी हो गई हो तुमने समस्त संसार को मोह लिया है।)

भारत में धरती के स्त्री रूप एवं माँ के रूप में चित्रांकन बहुतायत में देखने को मिलते हैं। आँखों में काजल, मांग में सिंदूर और तन पर हरे रंग के वस्त्र इत्यादि संपूर्ण रूप ने भारतीय जनता के हृदय में एक माँ के रूप की तस्वीर बना ली है। प्रत्येक युग में धरती को माँ और स्त्री रूप में निहारकर जनता की आँखें आज भी तृप्त होती हैं। आज भी जनता को अपनी मातृभूमि की मिट्टी प्रिय लगती है। '''धरती गाती है' शीर्षक यह ध्वनित करता है कि धरा की आत्मा ही संगीतमय है। यह प्रकृति, प्राकृतिक उपकरण तथा अनेक प्रांतों में बसी हुई मानव जाति की बोली व परम्पराओं के माध्यम से मानो जीवन के संगीत को मुखर कर देती है।''[5] भूरी, लाल और काली मिट्टियों के गीत आज भी हमारे लोक साहित्य में देखने को मिलते हैं। मातृभूमि से जुड़ी प्रत्येक वस्तु में इसका वर्णन देखने को मिलता है। गरजते बादलों में, चमकती बिजलियों में, गाय, बैल व खेतों की हरियाली व नदियों से जुड़े लोकगीतों में धरती का वर्णन अनेक रूपों में देखने को मिलता है। धरती के ये गीत सर्वकालिक है।

लोकगीत की जड़ें जिस धरती में गहरी जमी होती हैं उस देश की संस्कृति का ही वह गीत प्रतिनिधित्व करता है। जिस मिट्टी से देश की सामूहिक प्रतिभा उपजती है, उसी के अनुरूप संस्कृति के प्रति गहरी आस्था होती है। 'धरती गाती है' महज एक किताब नहीं, धूल–अंटे पांवों में जमीन पर रेखाएँ खींचकर बनाया गया भारत माँ का एक चित्र है और इस चित्र में छिपा है लोक मन का लहराता समंदर–जिसमें सुख–दुख की धूप–छाँह है तो आनन्द–विछोह, शिकवे–शिकायत, लाड़–चाव, उदासी के कितने ही रंग हैं, प्यार–ममत्व की कितनी ही लहरें...। जरा सत्यार्थी जी के निकट बैठकर देखिए इन बनती–मिटती लहरों का खेल। देखिए जहां वह अलाव तापते किसानों के मटियारे सपनों से किसी हीर की आँसू की लड़ियाँ, किसी सोहनी की महकती मुसकराहट चुरा लाते... एक बार सत्यार्थी की किसी रचना के निकट गए नहीं कि लोकगीतों की ऊष्मा से आपकी साँस–साँस तपने लगेगी।''[6] भारतीय भूमि के प्रति यहाँ के लोगों का विश्वास एवं आस्था धरती के यशोगान सम्बन्धी लोकगीतों में अतुलनीय मिलता है।

भारत में अनेक ऋतुओं में गाये जाने वाले लोकगीतों का अपना एक विशेष महत्व है क्योंकि लोकगीत सांस्कृतिक परम्परा का निर्वहन करते हुए सामूहिक–सौंदर्यबोध के परिचायक है। प्रत्येक ऋतु का आभास कराते ये गीत प्रतीकात्मक रूप में लोक में प्रचलित रहते हैं। वर्षा में मल्हार गीता गाया जाता है। ब्रज में सावन के गीत मल्हार के रूप में व कांगडा एवं शिमला के पहाड़ी प्रदेशों में झंझोरी तथा पूर्व बंगाल में 'मटियाल' के रूप में प्रचलित है। जो वहाँ की लोक संस्कृति का हिस्सा है। ये मल्हार गीत इन्द्र की स्तुति के प्रतीक है–

''चौकी तो चंदन, इंदर राजा, बैठानो जी।
ए जी कोई दूध पखारूंगी पाय,
आज मेहरकर, इंदर राजा, देश में जी
चामर राँधू, इंदर राजा, ऊजरे जी
ए जी कोई हरी मगोरी धोवादार,
आज मेहर कर, इंदर राजा, देश में जी''[7]

मनुष्य का धरती के प्रति लगाव भारतीय संस्कृति की पहचान है। लोक मान्यतानुसार धरती के साथ आकाश का भी जन्म हुआ है और उसके देव इन्द्र है। जिनकी कृपा से ही धरती उपजाऊ बनी रहती है इसलिए मेघ राजा की स्तुतिगीत वर्षा के आह्वान के रूप में प्रस्फुटित हुए हैं जो भारतीय लोक संस्कृति का अहम् हिस्सा है। सत्यार्थी जी द्वारा रचित 'दीया जले सारी रात', 'इरावती' और 'शांति निकेतन' लोकगीतों में उन्होंने वियोगावस्था के गीतों को स्वर दिया है-

''दीवा बले सारी रात, मेरया जाल्मा
दीवा बले सारी रात
बतिया बता रखदी, मेरया जाल्मा
दीवा बले सारी रात।
आवेगां तां पुच्छ लवाँगी, मेरया जाल्मा
कित्थे गुजारी सारी रात।''[8]

(अर्थात् दीया रात भर जलता है ओ मेरे जालिमा, दीया रात भर जलता है। बत्तियाँ तैयार करा रखती हूं, ओ मेरे जालिम, दीया सारी रात जलता है। तू आएगा तो मैं पूछ लूंगी, ओ मेरे जालिम कहाँ बिताई सारी रात) वियोग के ये गीत बहुत ही करुण गीत है, जिसमें मिट्टी के टिमटिमाते हुए दीए के साथ-साथ स्वयं वियोग का दर्द टिमटिमा रहा है। सत्यार्थी जी ने शांतिनिकेतन लोकगीत में संथाली गीत का संदर्भ प्रस्तुत करते हुए लोकजीवन में उपस्थित अनेक प्रतीकों को प्रस्तुत किया है-

''माता-पिता है चाँद और सूर्य
भाई-बहन है तारे सारे,
सूर्य की किरणों से मेरा जन्म हुआ है
नाम है सूर्यमुखी, प्यारे।''[9]

लोकजीवन में चाँद और सूर्य के समान माता-पिता के अस्तित्व की कल्पना की गई है और भाई-बहन उन तारों के समान है जो सदा आसमान में टिमटिमाते रहते हैं। ''लोकमानस की एक-एक रेखा, सामयिक बोध की एक-एक अवस्था, सामूहिक सुख-दुख और सामूहिक विजय-पराजय, प्रकृति की गति-विधि, वृक्ष, पशु-पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध, बलि, पूजा, टोने-टोटके लोकगीतों की पृष्ठभूमि में समाज विज्ञान के असीम भण्डार का अध्ययन किया जा सकता है।''[10] इनके गीत गाँव की पृष्ठभूमि पर भरते हैं, जिनकी चित्र-सुलभ सूक्ष्म रेखाएँ मन पर एक जादू-सा कर देती है। निर्धनता के बोझ तले दबा हुआ मानव जब सिर उठाकर चाँद-सूर्य को उगते देखता है तो उसकी कल्पना सजीव हो उठती है।

सत्यार्थी जी की लोकदृष्टि के माध्यम से समस्त भारतीय जनमानस के मन में पनपते सुख-दुःख एवं हर्ष उल्लास के अनुभवों को गीतयात्रा के द्वारा देखा जा सकता है। 'लका देश है कोलंबो' लोकगीत के माध्यम से किसान जीवन में बैलों की भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

''दूसरे का पेट पालने के लिए
तुम दुख सुख उठाते हो
दिन-रात काम काम करते हो,
मार सहते हो दर्द की टीस उठाते हो
अजी ओ बैल, कितने ही आदमी तो
तुम से कम महत्व रखते है।''[11]

यहाँ किसान अपने बैलों की प्रशंसा करते हुए उसका अपने जीवन में महत्व बताता है। मनुष्य की भांति बैल भी दूसरे का पेट पालने के लिए सुख-दुख को भोगते हैं और मनुष्य के क्रियाकलापों में साझेदार बनते हैं। ये साझेदारी ही हमारे समाज में प्रेरणा का सूत्र है। ये गीत किसान वर्षा में, धूप में, आंधी में खून-पसीना एक करते हुए या मधुमय अवकाश के समय में आन्दोत्सव मनाते हुए गाते है जो उनके जीवन में आशा और धैर्य का धीरज बंधाती है। सभी किसानों की सामूहिक संवेदनाएँ हैं। जिन्हें सत्यार्थी जी ने अपने अनुभवों द्वारा विभिन्न-विभिन्न जनपदों एवं प्रांतों से अर्जित किया है।

सत्यार्थी जी ने भारत के अधिकतर क्षेत्रों के लोकगीतों का संकलन कर लोक स्वर को रचनात्मकता दी है। 'बुंदेलखण्ड मूक नहीं', 'बेला फूले आधी रात', 'ब्रज भारती' और 'राम वनवास के उड़िया' में भी अपनी लोक दृष्टि के माध्यम से कृषक जीवन को अभिव्यक्ति दी है। हल चलाते किसाने जो गीत गाते हैं जिन्हें उड़िया में हलिया-गीत कहते हैं, जिनमें मुख्यतः रामकथा गाई जाती है। उत्कल की झूला-झूलती हुई कन्याएँ 'दोली-गीत'

गाती हैं। इनमें भी रामचरित की आंशिक झलक मिलती है। इन प्रांतों में राम धनी भी है और निर्धन भी। इस प्रकार यहाँ के लोकगीत एकता के प्रतीक है। इनसे अलग करके इनको देखना समझना संभव नहीं है। लोक गीतों की भाषा साहित्यिक भाषा की भांति सुसंगठित नहीं होती परन्तु लोक की शक्ति के अनूठेपन को दिखाने में समर्थ होती है। उन्होंने नई से नई प्रेरणा लोक से लेकर असीम मानवता की आवाज को स्वर दिया है। ''देवेन्द्र सत्यार्थी व्यक्ति ही नहीं, लोकजीवन के कोश है। इधर कुछ वर्षो से वे अन्तर्मुखी और चिन्तनधर्मी अधिक लगते हैं, लेकिन यह प्रवृत्ति सम्भवतः इसलिए है कि अपने तीन-चौथाई जीवन में लोकोन्मुख रहकर उन्होंने जितना कुछ संजोया है उसी की अपनी हर सांस में जी लेना चाहते है। धरती की पगडंडियों पर पद संचरण तक ही वे सीमित नहीं रहे, आकाश को बाहों में बांध लेने का उल्लास भी उनमें है।''[12]

सत्यार्थी जी ने लोकगीतों के द्वारा भारतीय प्रांतों के विविध रंगों को प्रस्तुत किया है। समाज में उपेक्षित फूलों को भी उन्होंने नई दृष्टि के साथ देखा है। बंगला-लोकवार्ता और साहित्य में बेला के फूल की चर्चा का इतना अभाव क्यों है? रजनीगंधा, चंपा, चूही, चमेली, कमल, अपराजिता आदि अनेक पुष्पों का नाम अनेक बार लिया जाता है किंतु बेला को एकदम भुला दिया जाता है इसलिए जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वविख्यात गीत में वह बेला का नाम देखते हैं तो उन्हें अपार हर्ष होता है।

''शई चांपा शेई बेला फूल
के तोरा आजिए प्राते एने दिलि मोर हाते?
जल आशे आंखि पाते हृदय आकुल
शेई चाम्पा शेई बेल फूल।''[13]

लोकगीत में सदैव मनुष्य के युग-युग से संचित संस्कार से फूलों को जो स्थान प्राप्त हुआ है उससे वे कभी नहीं भूले जाएंगे। मूक भाषा में प्रकृति मनुष्य को अपने निकट आने का संदेश भेजती है। सत्यार्थी जी तो बेला के फूल को कलाकार का प्रतीक मानते है। ''बेला एक कलाकार का प्रतीक है। कलाकार में जो अपनापन होना चाहिए वह सब बेला में देखा जा सकता है। कलाकार की सृजन की घड़ियों में जैसा एकान्त चाहिए उसके बिना बेला का भी काम नहीं चलता।''[14] लोकगीतों को समझकर ही हमें उनकी लोकदृष्टि का बोध होता है। लोकगीतों को समझना जनता की संस्कृति और परम्परा को समझना है। इनके द्वारा हमें जन-जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और इस दर्शन में हम विशिष्ट जन समुदाय की भावना को देख सकते हैं। प्रत्येक जाति या लोक समुदाय के अपने गीत होते हैं जिनमें उस समाज की जीवानुभूति की अभिव्यक्ति पायी जाती है। 'बेला फूले आधी रात में' लोक की एकता की व्याख्यायित करते हुए सत्यार्थी जी का यह कथन ''सुंदर जनपदों के एक से लोकगीतों के विविध रूपांतर और एक से भावचित्रों के विविध संस्करण लोकमानव की एकता के परिचायक है।''[15]

सत्यार्थी जी ने अपने सृजनात्मक दृष्टि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र, परम्परा, कृषक एवं समाज में मौजूद विभिन्न रीतियों को लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'माँ लोरी सुना, तिब्बती गीत, धीरे बहो गंगे और 'गाए जा हिन्दुस्तान' में उनकी लोक चेतना स्पष्ट रूप से उजागर होती है। 'धीरे बहो गंगे' में उन्होंने गंगा की शुचिता, मुदिता और पवित्रता का गुणगान किया है। वहीं दूसरी ओर उसकी क्रोधी, असंख्य ग्रामों को निगलना, कोसों तक जलमग्नि की भयंकरता का भी चित्रण किया है। एक साम्राज्ञी की तरह अपनी मंजिल तक पहुँचने के अनुपम दृश्य को मातृ-वत्सलता का प्रतीक माना है। लोगों की आस्था का प्रतीक गंगा का यह लोकगीत देखने योग्य है-

''गंगा जमुनवां के बिचवा तेवइया एक तपु करइ हो,
गंगा, अपनी लहर हमै देतिउ मैं मंझाधार डूबित हो।
की तोहि सास-ससुर दुःख कि लैहर दूरि बसै
तेवई, की तोरे हरि परदेस कवन दुःख डुबउ हो।
गंगा, न मोरे सास-ससुर दुःख नाही नैहर दूर बसै
गंगा, न मोरे हरि पर देस कोशी दुःख डूबब हो
जाहु, तेवइया, घर अपने हम न लहर देवइ हो
तेवइ, आजु के नवएं महिनवा होरिल तोरे होई हैं हो।
गंगा, गहबरि पिउरी चढउबै होरिल जब होइहै हो
गंगा, देहु भगीरथ पूत जगत जस गावइ हो।''[16]

इस प्रकार लोकदेवी गंगा सभी प्राणियों की माँ के रूप में उपस्थित की गई है। वह सबके दुखों को समझती है और उसका निवारण भी करती है। इस प्रकार लोकगीतों के आधार पर लोक की ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टि का अध्ययन किया गया है। उसमें विशिष्ट समाज या सामाजिक अवस्था के सुख-दुख, फलन, उत्पीड़न किस स्तर तक

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

समाये हुए हैं एवं समय विशेष में जन-जीवन की स्थिति और उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं का स्पष्टीकरण भी शामिल है। धीरे बहो गंगे संग्रह पर लिखते हुए डॉ. आशा जोशी का यह मत उल्लेखनीय है-''जीवन के एक पक्ष-रागानुराग से ही जुड़ा है। वह प्रांतीय धरती पर मानवीय संबंधों के बीज बोता और तलाशता रहा है।''[17] सत्यार्थी की दृष्टि में लोकगीत सामूहिक भावना के रूप में परम्परा में अक्षुण्ण होते रहे हैं। इन लोक गीतों के पीछे समाज की एक-एक भावना को सरलता से वाणी मिली है क्योंकि इनमें जीवन के आशोच्छवास और निरन्तर संघर्ष की सरल गूंज होती है। इसमें समाज का निश्छल पारदर्शी सत्य छिपा रहता है। सत्य होता है इसलिए यह निरन्तर वर्तमान तक विद्यमान रहता है और भाव जगत का स्पर्श करता रहता है। यही लोकगीतों के जीवंत रहने का रहस्य भी है।

सत्यार्थी द्वारा संग्रहित अन्य लोकगीत संग्रह जिनमें 'सन् सतावन के गीत', 'लोकगीत की परख', 'स्वाधीनता संग्राम की परम्परा', 'भूख के गीत' और 'बाजत आवे ढोल' है। जिनमें उनकी लोक के प्रति दृष्टि को बखूबी समझा जा सकता है। 'बाजत आवे ढोल' 'लोकगीत' में उन्होंने मंगल कार्यों पर गाए जाने वाले गीत एवं ढोल का मनुष्य के जीवन में महत्व को दर्शाया है। ढोल का अस्तित्व विश्व के अनेक देशों में चिरकार से रहा है। मिश्र, भारत और ईरान की मूर्तिकला और चित्रकला इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसे वैदिक साहित्य में दुंदुभि, नगाड़ा, ढोल, डफ, झाँस, मंजीर इत्यादि नामों से भी पुकारा गया है। ढोल की उपयोगिता को प्रकट करते हुए डक्र. आशा जोशी लिखती हैं, ''ढोल इस संग्रह में प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह सामान्य जनमानस के उल्लास, उमंग व संघर्ष की गाथा का प्रतीक है।''[18] बंगाल की वीरभूम जिले में तो ढोल सम्बन्धी विभिन्न पहेलियां काफी चर्चित भी है जिसका एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''पीठ पर आता है पीठ पर जाता है
बिना कसूर किए पीटा जाता है।''[19]

ढोल की आवाज कबीले या जनपद के हर्ष-उल्लास का प्रतीक है। ढोल जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति में मानव का सखा रहा है। जीवन की शत-शत गाथाओं चीरता हुआ, मानव के सामूहिक और व्यक्तिगत अनुभवों को लांघता हुआ ढोल आधुनिक युग के प्रवेश द्वार तक पहुँचा है। ''मानव की आशाएँ और आकांक्षाएँ चिरकाल से 'ढोल' को शक्ति और प्रगति का प्रतीक मानती आई है। व्यक्तिगत और सामूहिक भावनाएँ समान रूप से ढोल को सभ्यता और संस्कृति का प्रगति-बिन्दु स्वीकार करती रही है। सामाजिक शक्तियों की विकास-गाथा संगीत और नृत्य की ऋणी है और ढोलियों ने सदैव आगे बढ़कर एक उदीयमान कलाकार की तरह व्यक्ति और समाज को आशा, उल्लास और आकांक्षा के पथ पर अग्रसर होने में सहायता दी है।''[20] इस प्रकार जन-जन के मन में आशा और उमंग के अंकुर उत्पन्न करता यह ढोल प्रगति का आह्वान करता है।

निष्कर्षतः उपरोक्त सभी लोकगीतों के अध्ययन से देवेन्द्र सत्यार्थी की लोक संबंधी दृष्टि को बखूबी देखा जा सकता है। उन्होंने लोक जीवन की समस्याओं एवं सम्भावनाओं को लोक गीतों में एक साथ करवटे बदलते हुए दिखाया है जिसमें पुरातन की सड़ायंध के लिए स्थान नहीं रहता बल्कि प्रतिपल नूतन की तलाश रहती है और नूतन के प्रति जिस वफादारी और सच्चाई की प्रवृत्ति काम करती है, उसमें मानव आत्मा प्रकृति के मुक्त वातावरण में साँस लेती है। सत्यार्थी जी ने लोकगीत के माध्यम से समाज व साहित्य के समक्ष बहुमूल्य और नवीन सामग्री को प्रस्तुत किया है। काव्य के नए उपमान, सम्बोधन, अभिव्यंजनाएँ, छंद, संगीत की नवीन लाभ और नृत्य के नए रूप-प्रकार, संकेत, गति-समावेश, अभिव्यक्ति एवं नए विषयों का विस्तार इनकी लोकदृष्टि में सामहित है।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

संदर्भ सूची

1. ओमप्रकाश, सिंघल, सत्यार्थी के साथ-साथ, पृ. 125
2. गिरिजाकुमा माथुर, बाजत आवे ढोल, (भूमिका)
3. देवेन्द्र सत्यार्थी, धरती गाती है, पृ. 3
4. वही, पृ. 3
5. डॉ. आशा जोशी, यायावर देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 82
6. प्रकाश मनु, देवेन्द्र सत्यार्थी की चुनी हुई रचनाएँ, पृ.

31
7. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 9
8. देवेन्द्र सत्यार्थी, दीया जले सारी रात, पृ. 7
9. देवेन्द्र सत्यार्थी, शांति निकेतन, पृ. 3
10. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 6
11. देवेन्द्र सत्याथी, लंका देश है कोलम्बो, पृ. 9
12. डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, यायावर, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 33
13. बेला फूले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 4
14. देवेन्द्र सत्यार्थी, बेला फूले आधी रात, पृ. 19
15. प्रकाश मनु, देवेन्द्र सत्यार्थी एक लोक-निबंध, पृ. 112
16. धीरे बहो गंगे, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 199
17. डॉ. आशा जोशी, यायावर देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 84
18. डॉ. आशा जोशी, यायावर देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 83
19. देवेन्द्र सत्यार्थी, बाजत आवे ढोल, पृ. 6
20. वही, पृ. 26

शोध-पत्र

डॉ. धनंजय कुमार

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में चित्रित जीवन की विसंगतियों का समीक्षात्मक अध्ययन

(विशेष संदर्भ: 'चित्तकोबरा' उपन्यास)

स्त्री लेखन सामाजिक सच्चाई और अस्मिता के संघर्ष को दर्शाता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में न केवल भारत में वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी की स्थिति में परिवर्तन आया। नारी ने अपनी कमी को त्याग कर अधिकारों की माँग की और यह सब संभव पाया नारी शिक्षा के माध्यम से। नारी ने समाज के पुराने संस्कारों एवं रूढ़िगत मान्यताओं को बदलने के लिए अपनी आवाज मुखरित की। परिणामस्वरूप उसे कई संघर्षपूर्ण स्थितियों से गुजरना पड़ा क्योंकि धर्म, इतिहास एवं रूढ़ वर्जनायुक्त कैद से मुक्ति इतनी सहज नहीं है। नारी की छटपटाहट एवं वेदना का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन महिला लेखन द्वारा संभव हो पाया जिसमें महिला कथाकारों का अप्रतिम योगदान है।[1] मृदुला गर्ग ने अपनी पहचान अभिजातवर्गीय नारी के स्वातंत्र्य, प्रेम-विवाह, वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब, ताजगी की तलाश में परपुरुष की ओर झुकाव तथा प्रेम की अनुभूति के सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से मानव जीवन की सार्थकता की तलाश, द्वारा बनायी।[2] मृदुला गर्ग के सात उपन्यास-'उसके हिस्से की धूप' (1975 ई.), 'वंशज' (1976 ई.), 'चित्तकोबरा' (1979 ई.), 'अनित्य' (1980 ई.), 'मैं और मैं' (1984 ई.), 'कठगुलाब' (1996 ई.), 'मिलजुल मन' (2009 ई.) प्रकाशित हैं।[3] उपन्यास विधा आधुनिक युग की देन है। अपितु साहित्य की विविध विधाओं में उपन्यास ही एक ऐसी विधा है जो जीवन की वास्तविकता को समग्र रूप से प्रस्तुत करने में समर्थ है। आर्नेस्ट ए. बेकर के अनुसार-''उपन्यास सामाजिक जीवन का गद्यबद्ध कथानक है और जीवन तथा समाज के व्याख्या का सर्वोत्तम साधन है। वैसे तो विश्व साहित्य का आरंभ ही कथा कहानियों से हुआ है परंतु एक विधा के रूप में गद्य का जन्म जीवन के यथार्थ-चित्रण का प्रतीक है... आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विश्रृंखलता का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।''[4]

आधुनिक उपन्यास सामाजिक जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ वैयक्तिक जीवन का सूक्ष्म चित्र भी प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार हमारे युग के सैद्धांतिक, बौद्धिक एवं नैतिक परिवेश में बदलते हुए हवा के रूख के प्रति हम सबकी अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनशील हैं। वे सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा जीवन के अधिक प्रखर प्रेक्षक हैं। उपन्यास यथार्थ जीवन का पर्याय नहीं है वह सिर्फ मानव जीवन का या समाज का स्वरूप मात्र है। सार्त्र ने कहा है कि-''उपन्यास जीवन नहीं है, परंतु जीवन का प्रतिरूप है, अपितु साहित्य की विविध-विधाओं में जीवन का सबसे जीवंत चित्रण उपन्यास में होता है।''[5]

'चित्तकोबरा' उपन्यास मृदुला गर्ग द्वारा लिखित स्त्री की मनोभावनाओं की नयी परिकल्पना है। नये जीवन मूल्यों पर आधारित 'चित्तकोबरा' उपन्यास में स्त्री के भीतर बदलते हुए अनुभव-संसार को उसकी देहगाथा के साथ लेखिका ने प्रस्तुत किया है। प्रेम दर्शन, विवाह, एवं संभोग इसके मूल केन्द्र में है। जीवन के यथार्थ स्वरूप का चित्रण के साथ स्त्री-पुरुष संबंधों की बेबाक रूप से लेखिका ने चित्रण किया है। इसी वजह से यह उपन्यास अपने समकालीन उपन्यासों से अलग दिखाई पड़ता है। दरअसल लेखिका ने स्त्री-पुरुष संबंधों का मूल्यांकन तटस्थ भाव से होकर किया है। यहां पर देखें तो भारतीय

संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति का सवाल नहीं उभरता बल्कि स्त्री की आंतरिक संसार का ही चित्र उभरता है। जो कि स्त्री देहगाथा का विषय है।

"'चित्तकोबरा' उपन्यास में परंपरा और संस्कृति से हठकर निर्भीक रूप से काम कुंठाओं तथा मुक्त प्रेम और यौन संबंधों का चित्रण किया गया है। कथानक में वर्णित पात्र महेश और मनु दोनों पति-पत्नी के रूप में दिखाई देते हैं। जिनके दाम्पत्य संबंध में असंतुष्टि नजर आती है।

इस उपन्यास में एक और जोड़ी, रिचर्ड और जैनी है। महेश की पत्नी के रूप में मनु अपना सभी कर्तव्य निभाती है। उसे वह सब कुछ देती है जो एक आदर्श पत्नी अपनी पति को देती है जैसे सुंदर-सुचारु घर गृहस्थी, खूबसूरत प्यारे बच्चे और मेहमान नवाजी आदि सब कुछ। महेश कर्तव्य में विश्वास रखने-वाला व्यक्ति है तो मनु-प्रेम में विश्वास करने वाली है। रिचर्ड के प्रति काफी आकर्षित होने पर भी वैवाहिक जीवन में दरार पड़ने नहीं देती। वे गोरखपुर में आदर्श दंपत्ति के रूप में मशहूर होते हैं। महेश चाहे कितना भी मनु की जरूरतों का ख्याल करे लेकिन मनु का मानना है कि महेश उसके प्रति उदासीन है। स्वच्छंदतावादी महेश विवाह के बंधन में विश्वास न करने पर भी उसका अनिवार्य है, आम भारतीय पुरुष की तरह ही अपनी पत्नी के जीवन में किसी दूसरे पुरुष के प्रवेश को सहन नहीं करता। महेश का मानना है कि पत्नी की जरूरतों को पूरा करना पति का कर्तव्य है। इसमें प्रेम की कोई आवश्यकता नहीं प्यार और कर्तव्य दोनों अलग-अलग विषय हैं। जरूरी नहीं कि दोनों एक ही जगह या संदर्भ में हो। लेकिन 'काम' ग्रस्त मनु महेश के प्रेमराहित्य को सह नहीं पाती या यों कहें कि इससे वह संतुष्ट नहीं है तो ज्यादा समीचीन होगा। इसलिए वह रिचर्ड की ओर आकर्षित होती है। और पति और रिचर्ड के साथ शारीरिक धर्म निभाती है। महेश मनु के मानसिक भावनाओं की ओर ध्यान नहीं देता। महेश के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करते समय भी मनु का हृदय आत्म चिंतन करता रहता है तो शरीर महेश का साथ देता रहता है।"[6]

अतः "रिचर्ड और मनु की मुलाकात एक नाटक के संदर्भ में होती है। रिचर्ड एक यायावर प्रवृत्ति का व्यक्ति है जो पूरे देश में भ्रमण करते हुए लोगों की सेवा करता है। वह शादीशुदा व्यक्ति है। मनु और रिचर्ड एक दूसरे के प्रति अलौकिक प्रेम का अनुभव करते हैं। रिचर्ड प्रेम में बलिदान भावना को नहीं मानता। बलिदान से परोपकार की भावना उत्पन्न हो जाती है। तथापि रिचर्ड की पत्नी इनके प्रेम से वाकिफ भी है। और अपने तीन बच्चों के मानसिक विकास में इस संबंध को अनुचित और रुकावट मानती है। खास बात यह है कि मनु और रिचर्ड दोनों को बच्चों से काफी प्रेम होता है। अगर रिचर्ड मनु के साथ रहता है तो जैनी बच्चों को लेकर चली जाएगी। उसे यह गवारा नहीं। वे प्रेमपाश में पूरी तरह जकड़े होने पर भी परिवार के प्रति सजग होते हैं। और अपने दाम्पत्य संबंध में दरार की गुंजाइश नहीं देते। रिचर्ड अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़ना नहीं चाहता और मनु भी अपने परिवार का त्याग नहीं करना चाहती। जिसके परिणामस्वरूप वे एक विशेष निर्णय लेते हैं कि तीस साल तक वे अपने-अपने परिवार के साथ रहेंगे। उसके बाद साठ साल के बाद वे फिर मिलेंगे। उनका मानना है कि बूढ़ा सिर्फ शरीर होता है मन नहीं। इस प्रकार समझौता करने के उपरांत वे अलग हो जाते हैं।"[7]

यह सत्य है कि आज भी हमारा भारतीय परिवार आदर्श रूपी जीवन को ही महत्व देता है। पाश्चात्य संस्कृति को नहीं। यह उपन्यास भारतीय सभ्यता पर चोट करती हुई नजर आती है। क्योंकि कोई भी भारतीय नारी अपने पति, परिवार और समाज के विरुद्ध कदम उठाने से कतराती है। लेकिन इस उपन्यास की नायिका मनु में कहीं भी यह भाव देखने को नहीं मिलता। भारतीय दाम्पत्य संबंध में विशेष बात यह है कि वह अपनी सुख सुविधा की बजाय घर परिवार और समाज के बारे में अधिक सोचती है और उनके साथ ही अपने जीवन की चरमावधि मानती है।

मृदुला गर्ग जी इस उपन्यास के माध्यम से आज के समाज की बौद्धिक सभ्यता में पले ऐसे पात्रों की मानसिकता को प्रकट किया है जो, प्रेम और नैतिकता के भिन्न धरातलों को एक साथ अपने जीवन में स्वीकार कर, नैतिकता के अपने मानदंड बनाते चलते हैं। इस रचना पर कई आलोचकों ने अश्लीलता का आरोप इसलिए लगाया है कि भारतीय समाज पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है। और आधुनिकता की, चाह भारतीय संस्कृति में पली बढ़ी नारी के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाल रहा है। लेकिन मृदुला जी का कहना है कि "इस उपन्यास में

पति और पत्नी के मध्य संभोग के दृष्टि का चित्रण कहीं भी उद्‌दीपक नहीं है, अत्यधिक गंभीर है। और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखा हुआ है। नारी के देह और मन की गाथा को न्यायपूर्वक प्रस्तुत करके पुरुष और नारी के बीच की लकीर को मिटाकर दोनों को बराबर तराजू में तोला है। भारतीय परंपरा के विरुद्ध जाती नारी जो सांसारिक मर्यादाओं को तिलांजलि देती है। मृदुला गर्ग जी जहाँ 'चित्तकोबरा' उपन्यास के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक नई गति दी है। वहीं स्त्री की स्वानुभूति का चित्रण करके उन्होंने महिला लेखन के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। यदि देखा जाये तो 'चित्तकोबरा' उपन्यास मृदुला गर्ग जी की प्रयोगशीलता का उत्कर्ष है। चित्त जब भी अपनी कुंडली से बाहर आकर कोबरा की तरह फन फैलाए तनता है, तो वह शरीर में भी स्पंदन करता है, मानस में भी और चिंतन में भी। इसलिए 'चित्तकोबरा' स्पंदन और चिंतन का उपन्यास है। जिसे वासना की गंध और मनुष्यगत संवेगों के संग लिखा गया है।[8] 'चित्तकोबरा' उपन्यास में जीवन की तमाम विसंगतियों के साथ स्त्री के मनोभाव के चित्र देखे जा सकते हैं। तथा प्रमुख रूप से यह स्त्री प्रधान रचना कही जा सकती है।

भाषा-शिल्प के स्तर पर 'चित्तकोबरा' उपन्यास एक नया प्रयोग है। लेखिका ने जहाँ प्रेम के नये रूप को यथार्थ रूप में भाषा के द्वारा परिभाषित किया है। वहीं उन्होंने चेतनामय भाषा तथा पात्रों का मनोविज्ञान भी स्पष्ट किया है। उपन्यास के शीषर्क, पात्र और भाषा में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उपन्यास में प्रतीक, प्रतीकात्मक शीर्षक तथा प्रतीकात्मक चरित्रों की योजना द्वारा लेखक किन्हीं विचार बिन्दुओं को संकेतित करता है। प्रतीक योजना द्वारा वर्णन से बचता हुआ अपने-अभिप्रेत को व्यंजित करता है।[9] डॉ. पद्‌मा अग्रवाल का कहना है कि ''प्रतीक अचेतन अवस्था की भाषा होती है। मन के भीतर की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रतीक सशक्त माध्यम है।''[10]

'चित्तकोबरा' उपन्यास का शीर्षक दो शब्दों से मिलकर बना है। एक संस्कृत शब्द चित्त स्वभाव व अंग्रेजी के शब्द 'कोबरा' साँप से जुड़ा हुआ है। आशय यह कि ''मनु का चित्त उसके अस्तित्व को सर्वदा डंसता रहता है, मनु और रिचर्ड साँप की तरह एक दूसरे के प्रेम में तिरोहित हैं, नाग की रैखिक काया, समय, जीवन और कथा प्रवाह का प्रतीक है।''[11] अत: 'चित्तकोबरा' उपन्यास वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा आत्मकथात्मक शैली है। मृदुला जी को भाषा पर पूर्ण अधिकार है। इन्होंने अपनी शैली को सरल सहज और स्वाभाविक बनाने के लिए समय, वातावरण, तथा पात्रानुकूल भाषा का हमेशा प्रयोग किया है। अपितु ''मृदुला जी की भाषिक विशेषताओं में बिम्बात्मकता प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता, दृश्यात्मकता, बिन्दुक भाषा, पात्रानुकूलता और प्रसंगानुकूलता पाये जाते हैं। विदेशी शब्दों के अन्तर्गत अंग्रेजी शब्द, उर्दू-फारसी शब्द, तत्सम शब्द, मुहावरे, कहावते-लोकोक्तियाँ विशेषण युक्त शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं मे किया है। इसी प्रकार इन्होंने शैली के अंतर्गत वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, संवादात्मक, वार्तालाप शैली, स्वप्न शैली, आंचलिक शैली का प्रयोग कर अपनी रचना को विशेषता प्रदान की है।''[12]

निष्कर्ष: मृदुला गर्ग हिन्दी जगत की प्रख्यात लेखिका हैं। इनके साहित्य में विलक्षणता, औपचारिकता, खुलापन सर्वत्र परिलक्षित होता है। इनका साहित्य इनके व्यक्तित्व को भी उजागर करता है। वे अस्तित्ववादी, अंतश्चेतनावादी, मनोविश्लेषणवादी एवं अपने युग की एक आदर्शवादी रचनाकार हैं। मृदुला जी अपनी रचनाओं के माध्यम से संवेदना और अंतश्चेतना को जगाती हैं। इनकी रचनाओं में बौद्धिक परिपक्वता और गुणवत्ता के कारण सशक्त और सामाजिक सरोकार का परिचय है। जहाँ इनकें रचनाओं में सामाजिक, राजनैतिक, प्रेम और काम, नारी अस्मिता और समस्याओं को चित्रित किया गया है तो वहीं नारी शोषण और उसके द्वारा उत्पन्न 'नारी विद्रोह और जिजीविषा' का चित्रण इनकी रचनाओं में वर्णित है। मृदुला गर्ग जी ने पुरुष प्रधान संस्कृति रुढ़ि-परम्परा को तोड़कर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाली आधुनिक नारी का अंकन उन्होंने बड़े ही सशक्त ढंग से किया है। मृदुला जी मानव की बाह्य पक्ष की बजाए आंतरिक रचना की सृजनकर्ता है।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
डॉ. भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली
दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल: dkumar.brac18@gmail.com

संदर्भ सूची

1. डॉ. कल्पना पटेल, 'मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज', पृ. 30
2. डॉ. रामचंद्र तिवारी, 'हिंदी का गद्य साहित्य', पृ. 326
3. वही, पृ. 326
4. डॉ. एस. दीप्ति, 'मृदुला गर्ग व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ. 119
5. वही, पृ. 133-134
6. वही, पृ. 138
7. वही, पृ. 142
8. दिनेश द्विवेदी, पुनश्च, 'मृदुला गर्ग पर एकाग्र', पृ. 21
9. डॉ. सविता चोखोबा, 'आठवें दशक की लेखिकाओं के उपन्यासों में व्यक्त स्त्री-चरित्र', पृ. 260
10. डॉ. तारा अग्रवाल, 'मृदुला गर्ग का कथा साहित्य', पृ. 270
11. डॉ. एस. दीप्ति, 'मृदुला गर्ग व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ. 249
12. वही, पृ. 221

आधार ग्रंथ

1. गर्ग, मृदुला (2004), 'चित्तकोबरा', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

सहायक ग्रंथ

1. दीप्ति, डॉ. एस. (2018), 'मृदुला गर्ग : व्यक्तित्व और कृतित्व', अमन प्रकाशन, कानपुर
2. जाधव, डॉ. माधवी (2007), 'मन्नू भंडारी के साहित्य में चित्रित समस्याएँ', विद्या प्रकाशन, कानपुर
3. वर्मा, डॉ. सुशील (1998), 'आधुनिक समाज की नारी चेतना', आशा पब्लिशिंग कंपनी, आगरा
4. अग्रवाल, डॉ. तारा (2004), 'मृदुला गर्ग का कथा साहित्य', विद्या प्रकाशन, कानपुर
5. बागलकोट, डॉ. राजू (2006), 'मृदुला गर्ग के कथा साहित्य का मूल्यांकन', अमन् प्रकाशन, कानपुर
6. तिवारी, डॉ. रामचंद्र (2015), 'हिंदी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
7. राय, गोपाल (2008), 'हिंदी कहानी का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
8. सुधांशु, डॉ. अनिरुद्ध कुमार (2016), 'अस्मिता मूलक विमर्श और हिंदी साहित्य', श्रीनटराज प्रकाशन, दिल्ली
9. वर्मा, विमलेश कांति (2009), 'भाषा साहित्य और संस्कृति', ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
10. पटेल, डॉ. कल्पना (2014), 'मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासो में अभिव्यक्त समाज', चिंतन प्रकाशन, कानपुर

जूली कुमारी

शिक्षा के मानदंड और महिला शिक्षा की संचित व्याख्या

पीटर्स के अनुसार, 'शिक्षा कोई अवधारणा नहीं है जो किसी विशेष प्रकार की प्रक्रियाओं की पुष्टि या निर्धारित करती है, जैसे प्रशिक्षण या व्याख्यान जैसी गतिविधि। इसके बजाय यह उन मानदंडों का सुझाव देता है जिनमें शामिल सभी प्रक्रियाएं और गतिविधियां, जैसे प्रशिक्षण, निर्देश इत्यादि के अनुरूप होना चाहिए'। जो मूल्य का है वह गतिविधि के लिए बाहरी नहीं होना चाहिए, बल्कि इसके लिए आंतरिक होना चाहिए। ऐसा ही एक मानदंड यह है कि जो दिया जाता है और जिस तरह से पारित किया जाता है वह मूल्यवान होना चाहिए। इस प्रकार, जब हम किसी को प्रशिक्षण दे रहे होते हैं, तब हम शायद उसे शिक्षित कर रहे होते हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि यह हमेशा सच हो, क्योंकि हम उसे जेब काटने या यातना देने की कला का प्रशिक्षण दे रहे होंगे। लेकिन यह मांग कि कुछ मूल्य का संचार किया जाना चाहिए, इस अर्थ के रूप में नहीं सोचा जा सकता है कि शिक्षा स्वयं कुछ मूल्य का नेतृत्व या उत्पादन करे। जो मूल्य का है वह शिक्षा के लिए कुछ बाहरी नहीं होना चाहिए, जैसे बेहतर बनाना 'सुधार' के लिए बाहरी नहीं है; यह बल्कि एक मानदंड है जिसे किसी भी चीज को उचित ठहराना चाहिए जिसे सुधार कहा जाना चाहिए।

उसी तरह, शिक्षा की एक आवश्यक विशेषता को अक्सर एक बाहरी अंत के रूप में निकाला जाता है। इस प्रकार लोग अक्सर सोचते हैं कि शिक्षा से कुछ ऐसा पैदा होना चाहिए जो उसके लिए मूल्यवान और बाहरी हो, जबकि सच्चाई यह है कि सार्थक होना शिक्षा का एक हिस्सा है। शिक्षा के उपकरण और मोल्डिंग मॉडल (क्रमशः यंत्रवत और जीव) दोनों ही प्रक्रिया द्वारा लाए गए अंत के रूप में या बच्चे के दिमाग पर लगाए गए पैटर्न के रूप में सार्थक होने की कल्पना करके वांछनीयता की इस आवश्यक विशेषता का एक कैरियर प्रदान करते हैं। इसके उद्देश्य हैं न कि इसके उद्देश्य।

उपरोक्त थीसिस की एक गतिविधि के शैक्षिक होने के लिए, 'क्या सार्थक है', गतिविधि के अंत तक शिक्षा के बाहर नहीं होना चाहिए, 'उद्देश्य' शब्द की व्याख्या से बेहतर समझा जा सकता है। इसे और स्पष्ट करने के लिए हम निशानेबाजी और फेंकने जैसे उदाहरण ले सकते हैं। लक्ष्य किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित करना है जिसे हिट या महसूस किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, गतिविधि के क्षेत्र में एकाग्रता कुछ है। इसे उद्देश्य या मकसद से स्पष्ट रूप से अलग किया जा सकता है। यही कारण है कि शिक्षा के संदर्भ में उद्देश्य शब्द का प्रयोग अक्सर किया जाता है। इसलिए शिक्षा के 'उद्देश्य' के बारे में प्रश्न पूछना स्पष्ट होने का एक तरीका है और जो हासिल करने योग्य है उस पर ध्यान केंद्रित करना है। यह शिक्षा के लिए बाहरी उद्देश्यों के उत्पादन के लिए नहीं पूछना है।

दूसरी ओर, एक व्यक्ति कह सकता है कि वह लोगों को प्रशिक्षित करना चाहता है ताकि उन्हें अच्छी नौकरी मिल सके। ऐसी स्थिति में, वह लक्ष्य के बारे में नही बल्कि शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में बात कर रहा है,

क्योंकि अच्छी तरह से भुगतान वाली नौकरी प्राप्त करना गतिविधि के लिए आंतरिक नहीं बल्कि बाहरी है। महात्मा गांधी के अनुसार, शिक्षा से मेरा तात्पर्य बच्चे और मनुष्य शरीर, मन और आत्मा में सर्वश्रेष्ठ का एक सर्वांगीण चित्रण है।

शिक्षा में शामिल प्रक्रियाएं अनिवार्य रूप से सार्थक होनी चाहिए।

शिक्षकों शिक्षित होने की दृष्टि से माना जाए या शिक्षक के दृष्टिकोण से। यह एक मौलिक भ्रम है जिसे आर. एस, पीटर्स ने इंगित किया है। शिक्षा के बारे में सोचने के इन दोनों तरीकों में हम शायद ही कभी इस बात पर विचार कर रहे हैं कि शिक्षा के कुछ अंतिम उत्पाद मूल्यवान होने चाहिए, और इसमें शामिल गतिविधियों और प्रक्रियाओं की परवाह या ध्यान केंद्रित नही कर रहे हैं। स्पष्ट रूप से पर्याप्त गतिविधियाँ या प्रक्रियाएँ जो शिक्षा की सामग्री का एक हिस्सा बनती हैं, उन्हें या तो उपकरण या आंतरिक रूप से मूल्यवान माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, विज्ञान या बढ़ईगीरी को अपने आप में मूल्यवान और उत्पादन बढ़ाने या घरों के प्रावधान के साधन के रूप में मूल्यवान समझना संभव है। इस प्रकार यह पूछना उचित है कि ऐसी गतिविधियों में किसी को निर्देश देने या प्रशिक्षण देने का उद्देश्य क्या हो सकता है। लेकिन यह पूछना उतना ही बेतुका है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या है, यह पूछना उतना ही बेतुका है जितना कि यह पूछना कि नैतिकता का उद्देश्य क्या है। कुछ शिक्षक कहने के लिए प्रक्रियाओं और गतिविधियों को सूचित करना है। स्वयं किसी ऐसी चीज में योगदान या शामिल करना जो मूल्यवान या सार्थक हो। जैसा कि गिल्बर्ट राइल (दि कन्सेप्ट आफ माइंड) के पास होगा, शिक्षा एक कार्य शब्द के साथ-साथ एक उपलब्धि शब्द भी है।

के. कांतम्मा (1990) ने अपने एम.फिल. (प्रौढ़ शिक्षा) शोध, "Status of women in relation to education, employment and marriage" में महिलाओं की स्थिति का शिक्षा, व्यवसाय तथा विवाह के संदर्भ में अध्ययन किया। इसका मुख्य उद्देश्य बालिकाओं पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना था। इन्होंने अपने शोध में पाया कि शिक्षित महिलाएँ निर्णय लेने में शीघ्रता करती हैं, उनके विचार प्रगतिशील होते हैं तथा वे वार्तालाप तथा व्यवहार करने में भी कुशल होती हैं।

उषा नायर (1991) ने अपने स्वतंत्र अध्ययन में भारत में ग्रामीण लड़कियो की सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा का अध्ययन यूनेस्को के सहयोग से नीति निर्धारण तथा योजना निर्माण हेतु किया। पिछले चार दशकों में नामांकन में तेजी से वृद्धि हुई है, जो कि उच्च ठहराव दर से मेल नहीं खाती है। परन्तु प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण लड़कियाँ इस मामले में बहुत पीछे हैं। यह अध्ययन मुख्यत् द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण पर आधारित है। तथा शैक्षिक प्रेक्टिशनर्स के साथ अन्त प्रतिशत क्रिया से भी प्रदत्त प्राप्त किये गये। यह रिसर्च पॉलिसी रिसर्च के अन्तर्गत सूचनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा पुनः संरचनात्मक संदर्भों में किया गया है। मुख्य निष्कर्षों में से नॉन एनरोलमेटं तथा ड्राप आउट, दोनों घटनाओं की जाँच हेतु कार्यक्रमों की रणनीति विकसित किये जाने की आवश्यकता है।

यू. नायर (1991) ने अपने स्वतंत्र शोध, "Universal primary education of rural girls in India" में भारत के ग्रामीण क्षेत्र में बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा की स्थिति, ग्रामीण क्षेत्र में बालिका-शिक्षा की समस्याएँ तथा उनमें सुधार हेतु प्रभावी उपाय, ग्रामीण क्षेत्र में बालिका-शिक्षा के विकास हेतु कार्य-योजना का निर्माण तथा उसके क्रियान्वयन हेतु ढाँचा सुझाने हेतु अध्ययन किया। इनके अध्ययन के निष्कर्ष से यह प्रतीत होता है कि बालिका-शिक्षा हेतु प्रभावी योजना बनाने की आवश्यकता है, बालिका-शिक्षा के विकास हेतु इसे राष्ट्रीय महत्व के विषयों में सम्मिलित किया जाए तथा इस हेतु पर्याप्त बजट का प्रावधान किया जाए। बालिकाओं के विद्यालय त्यागने की प्रवृत्ति तथा अनामांकित बालिकाओं की समस्याओं के निदान हेतु आवश्यक तथा प्रभावी रणनीति बनाने की आवश्यकता है। महिला अध्ययन केन्द्रों की स्थापना मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत की जाए।

Assistant Professor, Dept. of Geography
B.Ed Teacher Training College,
Khagaria, Bihar
E.mail : julikumarioutlook@gmail.com

संदर्भ सूची

- संस्करण वासुकि, एन. (1990), ''एट्टियूड्स ऑफ ओमेन टुवर्ड्स ओमेन्स एजुकेशन'', एम.फिल. एजुकेशन, कोयम्बटुर
- पाठक पी.डी. एवं त्यागी एस.डी.: भारतीय शिक्षा आयोग, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार (शिक्षा विभाग) नई दिल्ली
- शर्मा, आर.ए.: शोध प्रबन्ध लेखन, रॉयल बुक डिपो, मेरठ
- सिंह, आर. (2001) : ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की शैक्षणिक कार्यदशाओं का समाज शास्त्रीय अध्ययन पी.एच.डी (समाजशास्त्र) डॉ.बीआर. अम्बेडकर विष्वविद्यालय

शोध-पत्र

सर्वेश्वर की कविताओं में अभिव्यक्त प्रतिरोध

डॉ. मीना भारती

सर्वेश्वर 'नई कविता' के प्रमुख हस्ताक्षर है। उनकी कविता का मूल स्वर प्रतिरोध है। वे अपनी कविता में मध्यमवर्ग को साथ लेकर चलते हैं और उनसे सम्बन्धित सामाजिक प्रश्नों को उठाते हैं। उनकी कविताओं में एक ओर सामाजिक परिवेश का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर वैयक्तिक स्तर की जानकारी भी अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन की हताश भावना, कुंठित व्यक्तित्व, नीरस जीवनचर्या आदि को आधार बनाकर सामाजिक व्यवस्था के कर्णधारों का विरोध एवं प्रतिरोध किया है। इस तरह उनके काव्य का मूल आधार जड़ीभूत एवं मूल्यहीन होते हुए व्यक्ति, समाज और परिवेश के प्रति चिन्ता है जो उनकी कविता में प्रतिरोध के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

समसामयिकता सर्वेश्वर का खास गुण है। यही कारण है कि सर्वेश्वर अपने समय की तमाम चिंताओं को कविता में दर्ज करते नजर आते हैं। सर्वेश्वर अपनी कविता के माध्यम से आम जनता की तकलीफों, समस्याओं एवं चुनौतियों को अभिव्यक्त करते हैं। 'तीसरा सप्तक' में दिए अपने महत्वपूर्ण वक्तव्य में वे लिखते हैं-''जब चारों ओर लोग इस बात पर कमर बाँधे हों कि वे आप की बात नहीं समझेंगे, तब आप के सामने दो ही रास्ते रह जाते हैं या तो चुप रहें अपनी बात न कहें, या फिर उसे इस ढंग से कहें कि सुनने वाले तिलमिला उठें, उनकी कलई उत्तर जाये। ... जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाये रहने-भर से काम नहीं चलेगा। बल्कि जो असत्य है उस का विरोध करना पड़ेगा और मुँह खोल कर कहना पड़ेगा कि वह गलत है।''[1] सर्वेश्वर ने दूसरा रास्ता अपनाया और खुल कर प्रतिरोध किया। उन्होंने अपनी कविता में सत्य को बिना किसी लाग-लपेट के अभिव्यक्त किया। यह जानते हुए कि सच कड़वा होता, सर्वेश्वर ने सच कहा। कवि का मानना है कि कड़वी दवाई ही गहरे जख्म का माकूल इलाज हो सकता है। सर्वेश्वर एक जगह अपनी जवाबदेही रेखांकित करते हुए कहते हैं –

''मैं नया कवि हूँ-
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है;
मैं नया कवि हूँ-
इसी से मानता हूँ
चश्मे के तले ही दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ-
सत्य कहता हूँ
झूठी मुसकानें नहीं बेचता।''[2]

सच की अभिव्यक्ति प्रतिरोध का अनिवार्य शर्त है। सर्वेश्वर अपनी कविताओं में सच को पूर्णता में बरता है। कवि मर्म को सहलाना नहीं, कुरेदना अपना कर्तव्य समझते हैं। इसलिए कवि झूठ और मक्कारी से भरे परिवेश में सच लिखते हैं। अपनी कविताओं में प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए नया लीक गढ़ते हैं। सर्वेश्वर लिखते हैं –

''लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पन्थ प्यारे हैं।''[3]

सर्वेश्वर की यह प्रतिबद्धता उन्हें आम आवाम से जोड़ता है। सर्वेश्वर आम आवाम के साथ है और अपनी कविता में उन्हीं के जीवन संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं।

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

'विपत्ति, संघर्ष और निराशा' को अपना साथी मानने वाले कवि सर्वेश्वर लिखते हैं – ''मैं उस आदमी के साथ उसकी यातना में खड़ा हूं। संवेदना के स्तर पर में ही वह आम आदमी हूं जिसे लड़ाई का भी कोई रास्ता दिखाई नहीं देता है।''[4] इस तरह सर्वेश्वर आम जनता के साथ एकात्म का संबंध स्थापित करते हैं और कवि का 'संघर्ष, विपत्ति और निराशा' आम आवाम के संघर्षों, तकलीफों एवं चुनौतियों से घुल-मिल जाता है।

सर्वेश्वर की कविता आम आदमी के पक्ष को अभिव्यक्त करते हैं। अपनी कविता में सर्वेश्वर नया आदर्श गढ़ते हैं जो इस प्रकार हैं –

''कविता नहीं है कोई नारा
जिसे चुपचाप इस शहर की
सड़कों पर लिखकर घोषित कर दूँ
कि 'क्रांति हो गयी'।''[5]

यह जानते हुए भी कि कविता से क्रांति नहीं हो सकती, कवि फिर भी पूरी जिम्मेदारी के साथ कविता लिखते हैं। इस संबंध में सर्वेश्वर लिखते हैं –''मैं यह जानता हूं कि कविता से समाज नहीं बदला जा सकता। जिससे बदला जा सकता है वह क्षमता मुझमें नहीं है। फिर मैं क्या करूं? चुप रहूं? उसे खुश करने का नाटक करूं, भडेती करूं? वह मेरे मान का नहीं। सच तो यह है कि मैं कविता लिखकर केवल अपना होना प्रमाणित करता हूं। मैं यह मानता हूं कि हम जिस समाज में हैं, जिस दुनिया में हैं वहां हमें अपना होना प्रमाणित करना है।''[6], स्पष्टत: कवि कविता लिखकर अपने होने को प्रमाणित करता है। यहाँ प्रामाणिकता का संबंध केवल व्यक्ति सर्वेश्वर से नहीं है, बल्कि उस सामाजिक सामूहिकता से भी है जिसका प्रतिनिधित्व कवि करते हैं। 'पथराव' शीर्षक कविता में वे स्पष्ट कहते हैं –

''मैं जानता हूँ पथराव से कुछ नहीं होगा
न कविता से ही।
कुछ हो या न हो
हमें अपना होना प्रमाणित करना है।''[7]

इस तरह देखें तो सर्वेश्वर कविता लिख कर स्वयं को प्रमाणित करते हैं। स्वयं को प्रमाणित करने का अर्थ है, प्रतिरोध का रास्ता अख्तियार करना है। वे कविता लिख कर सर्वेश्वर क्रांति के सूत्रधार की तलाश करते हैं। साथ ही क्रांति की जमीन भी तैयार करते हैं।

''कुआनो नदी उतनी ही उथली है,
नाव उतनी ही छोटी कीचड़ में फँसी हुई,
मुर्दे उतने ही बेशुमार,
कहाँ हो, ओ क्रांति के सूत्रधार!''[8]

''हम तो जमीन ही तैयार कर पायेंगे
क्रान्ति बीज बोने कुछ बिरले ही आयेंगे।
हरा-भरा वही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को।''[9]

साहित्य कभी क्रांति नहीं लाता, वह तो एक हथियार है जिसे समाज का कोई भी व्यक्ति इस्तेमाल कर सकता है। सर्वेश्वर इसी भाव से क्रांति की जमीन तैयार करते हैं। वे आम आवाम की मंद चेतना को जागृत करना चाहते हैं, ताकि वह अपने हक-अधिकार के लिए विरोध एवं प्रतिरोध कर सकें।

सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना को लेकर आम आवाम प्राय: उदासीन रहा है। चेतना की असंपन्नता ही उनके शोषण का कारण रहा है। सर्वेश्वर कविता लिख कर उस चेतना को विकसित करने का प्रयास करते हैं, जो अपने अधिकार के लिए विरोध एवं प्रतिरोध कर सकें। इस संबंध में सर्वेश्वर लिखते हैं – ''राजनीतिक चेतना कविता में भावपक्ष की विरोधी तो नहीं है। आज की राजनीति देखकर यदि आप में गुस्से का भाव आता है तो आप उस भाव से कविता लिखिए। अच्छी कविता होगी। कविता में भावपक्ष जीवन का शृंगार पक्ष ही नहीं है। राजनीतिक चेतना आपकी समझ को खोलती है और यह जरूरी नहीं है कि यदि आपकी समझ विकसित है तो आप महसूस करने की ताकत खो चुके हों, दोनों का साथ-साथ रहना और अच्छा है।''[10] इस विचार-विमर्श को सर्वेश्वर आगे बढ़ाते हैं। वे कविता के माध्यम से आमजन के भीतर सामाजिक-राजनीतिक चेतना का विस्तार एवं प्रसार करते हैं। वे उनके भीतर गौरव की भावना का विकास करते हैं और उन्हें प्रतिरोध के मार्ग पर खड़ा करते हैं। 'धूल-1' शीर्षक कविता में वे आम आवाम को संबोधित करते हुए कहते हैं –

''तुम धूल हो-
पैरों से रौंदी हुई धूल।
बेचैन हवा के साथ उठो,
आँधी बन
उनकी आँखों में पड़ो

जिसके पैरों के नीचे हो।''[11]

सर्वेश्वर शोषित, पीड़ित, दमित, उपेक्षित लोगों को स्पष्ट बता देना चाहते हैं कि तुम्हारी मुक्ति का रास्ता शोषण, दमन, अत्याचार, अपमान सहने से इनकार करने एवं शोषकों का सीधा विरोध करने से निकलेगा। विरोध और प्रतिरोध के रास्ते पर मजबूती के साथ चलकर ही तमाम तरह के शोषण, दमन से मुक्ति मिल सकती है। और जो भी आदमी इस रास्ते को एक बार पहचान लेता है, उन्हें कोई भी खत्म नहीं कर सकता। 'धूल-2' कविता में सर्वेश्वर कहते हैं-

''एक बार रास्ता पहचान लेने पर
तुम्हें कोई खत्म नहीं कर सकता।''[12]

सर्वेश्वर आम जनता को उस रास्ते पर ले जाना चाहते हैं, जहाँ अपने हक-हकूक के लिए सशक्त आवाज उठाया जा सके। 'भूख' शीर्षक कविता में वे सौन्दर्य की नई परिभाषा गढ़ते हैं। वे चाहते हैं कि आम आवाम अपने भूख को मिटाने के लिए किसी के आगे झुके नहीं, बल्कि अपने भूख व सम्मान के लिए लड़ें और अपने हक की रोटी खुद ही हासिल करें। इस कविता में वे लिखते हैं -

''जब भी
भूख से लड़ने
कोई खड़ा हो जाता है
सुन्दर दीखने लगता है।''[13]

इस तरह सर्वेश्वर उस आभिजात्य सौन्दर्य का भी प्रतिरोध करते हैं, जिसने आम आवाम को कुंठित करने का काम किया। भूखा आदमी दुनिया का सबसे ताकतवर आदमी होता है, बशर्ते कि उसे अपनी शक्ति का ज्ञान हो। सर्वेश्वर आम आदमी को उन्हें उनकी प्रतिरोधी क्षमता का अहसास कराते हैं।

सर्वेश्वर 'भेड़िया' सीरीज की अपनी कविता में 'भेड़िया' को शोषकों के प्रतीक के रूप में और 'मशाल' को शोषित, पीड़ित जनता के संगठित प्रतिरोध के रूप में सामने रखकर पूरे प्रभाव व बिंबात्मक ढंग से अभिव्यक्त करते हैं।

''भेड़िया गुर्राता है
तुम मशाल जलाओ।
उसमें और तुममें
यही बुनियादी फर्क है
भेड़िया मशाल नहीं जला सकता।''[14]

सर्वेश्वर का स्पष्ट मानना है कि शोषितों को शोषकों के शोषण, दमन, अत्याचार से मुक्ति के लिए संघर्ष और प्रतिरोध के रास्ते पर चलना होगा। शोषित ही संघर्ष और प्रतिरोध कर सकते हैं। मशाल जला सकते हैं। इस मशाल अर्थात् प्रतिरोध से भेड़िये अर्थात् शोषित भाग खड़े होंगे, उन्हें पराजित होना होगा।

सर्वेश्वर की कविता में राजनीतिक पाखण्ड, भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतियों का चित्रण तो मिलेगा पर उसमें किसी प्रकार का राजनीतिक मतवाद नहीं। वस्तुतः सर्वेश्वर की कविता में सामाजिक-राजनीतिक चेतना तो है पर वह किसी दल विशेष के साथ प्रतिबद्ध नहीं है।

''साम्यवाद या पूँजीवाद
मैं दोनों पर थूकता हूँ
और पूछता हूँ
जिसके पैर में
तुम जूते नहीं दे सकते
उसके हाथ में तुम्हें
बन्दूक देने का क्या अधिकार है?''[15]

साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों पर एक साथ थूकने वाले सर्वेश्वर आम जनता के पक्ष में खड़े होते हैं और अवसरवादी सत्ता-व्यवस्था का प्रतिरोध करते हैं।

सर्वेश्वर जीवनपर्यन्त कविता के माध्यम से प्रतिरोध को अभिव्यक्त करते रहे हैं। इस क्रम में उन्हें संघर्ष और निराशा के दौर से भी गुजरना पड़ा। संघर्ष के दौरान उनका आत्मबल कमजोर होने की बजाय, मजबूत ही हुआ। उनकी लोक प्रतिबद्धता और भी सघन हुई। कवि संवाद और संबोधन के माध्यम से लगातार आम आवाम से जुड़े रहे। यही वजह है कि सर्वेश्वर की नजर में आम आदमी के जान की कीमत किसी भी ईश्वर, ज्ञान-विज्ञान एवं संविधान से ज्यादा बड़ा हैं। 'कभी मत करो माफ' शीर्षक कविता में वे स्पष्ट कहते हैं -

''इस दुनिया में
आदमी की जान से बड़ा
कुछ भी नहीं है
न ईश्वर
न ज्ञान
न चुनाव
न संविधान''[16]

आज की परिस्थितियाँ बड़ी क्रूर हैं। मामूली आदमी और ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मारा जा रहा है। हत्या

की इस संस्कृति में वे आम आदमी के जान को स्थापित करते है। वे एक बेकसूर की मौत को राष्ट्र के पतन का घोतक मानते हैं। इस कविता के दूसरे भाग में वे किसी हत्यारे को कभी माफ नहीं करने पर जोड़ देते हैं। वे इस कहते हैं कि –

''आखिरी बात
बिलकुल साफ
किसी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार,
चाहे लोकतंत्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।''[17]

इस तरह देखें तो सर्वेश्वर की कविताओं में प्रतिरोध स्वाभाविक लय के साथ जुड़ा हुआ है। उन्होंने अपनी कविता में प्रतिरोध को कहीं भी जबरदस्ती फिट करने का प्रयास नहीं किया है। प्रतिरोध का स्वर उनकी कविता का अभिन्न हिस्सा है। आम जनता से जुड़ा कवि हमेशा वर्चस्वकारी सत्ता एवं व्यवस्था का विरोधी रहा हैं। क्योंकि यही वह कारक है जो समाज में अव्यवस्था फैलती है। सर्वेश्वर अपनी कविता के माध्यम से उस अव्यवस्था की पहचान करते है, उसके मूल स्रोतों की पड़ताल करते हैं, उसे समझते हैं, उसे दूर करने का प्रयास करते हैं और उसका प्रतिरोध करते हैं।

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, संपा. 'तीसरा सप्तक', नई दिल्ली भारतीय ज्ञानपीठ, 2020, पृ. 212
2. जैन, वीरेंद्र, संपा. 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रथावली खण्ड एक', नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 151
3. वही, पृ. 263
4. जैन, वीरेंद्र, संपा. 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रथावली खण्ड दो', नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 6
5. वही, पृ. 79
6. वही, पृ. 6
7. वही, पृ. 79
8. वही, पृ. 28
9. वही, पृ. 180
10. वही, पृ. 379
11. वही, पृ. 107
12. वही, पृ. 108
13. वही, पृ. 106
14. वही, पृ. 101
15. जैन, वीरेंद्र, संपा. 'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रथावली खण्ड एक', नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 285
16. जैन, वीरेंद्र, संपा. 'सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ग्रथावली खण्ड दो', नई दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 372
17. वही, पृ. 374

परमेश्वरी

लोक चिंतक एवं यथार्थवाद के लेखक डॉ. निशंक की कहानी 'नई जिंदगी' में मानवतावादी दृष्टिकोण

शोध सार :

किसी भी साहित्य की कृति को समझने व जानने लिये हमें उस साहित्यकार की व्यक्तिगत यात्रा को समझना आवश्यक होगा क्योंकि साहित्य या साहित्य के रचियताओं की कृति साहित्यकार की मानस जात होती है। अतएव साहित्यिक कृतियों में वे सब गुण विद्यमान होते हैं, जो साहित्यकार के वंशानुगत एवं परिवेशगत विचार, भाव, एवं संस्कार शामिल होते हैं।

डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक उन साहित्यकारों में से एक है। जिन्होंनें बहुत ही कम समय मे हिंदी साहित्य की उनक बुलंदियों को छुआ है, जिसे प्राप्त करने के लिये साहित्यकारों की पूरी उम्र निकल जाती है। निशंक अपने साहित्य में जनकल्याण एवं समाज सेवी धारणा को कायम कर राष्ट्र के गौरव व सम्मान को आगे बढ़ाने के लिए कभी पीछे नहीं हटे। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार जायसी, तुलसी, कबीर, सूर और पंत, प्रसाद एवं निराला आदि कवियों ने अपने मनोभावों व विचारों द्वारा समाज को एक नई दिशा प्रदान किया है। जिससे समाज में चल रही रुढ़िवादी सोच को बदलने का साहस हमारे भारतीय साहित्यकारों ने बहुत सरलता से देकर समाज में अपनी अमीट छाप छोड़ी है।

प्रस्तावना :

निशंक जी संवेदनशील व्यक्ति हैं, वे आजकल के बुद्धिजीवी व बुद्धिवाद के इस युग में भी भावुकता को महत्व देते हैं। उनके हृदय में केवल मनुष्य ही नहीं अपितु अन्य जीव जन्तु, पशु-पक्षी इन सभी जीवों के लिये दया भाव रखते हैं। उनके कहानियों में प्रायः यह जनकल्याण व राष्ट्रहित की भावना देखने को मिलती है। उनका हृदय, दया, प्रेम, करुणा, संवेदना, सहानुभूति, परोपकार, सहयोग व त्याग की भावना से परिपूर्ण है। उनकी कहानी 'नई जिंदगी' के द्वारा उन्होंने मानवीय दया का वर्णन बहुत ही सहजता एवं नम्रता के साथ समाज में व्याप्त मानवीय मूल्य, उनके गुण व अच्छाईयों-बुराईयों का वर्णन कर समाज की कुरीतियों व विसंगतियों का पर्दाफाश किया है। उनकी साहित्यिक भाषा सरल, सहज व स्पष्ट है, जो आम जनता एवं पाठकों को सहजता में कहा गया है, कि चौरासी योनियों के पश्चात मनुष्य जीवन की प्राप्ति होती हैं। इसलिये मनुष्य पृथ्वी पर ईश्वर की एक अद्‌भुत एवं अनुपम कृति है। मनुष्य के अंदर अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक संपदाएँ छिपी हुई हैं। 'इसी से हम अनुभव कर सकते हैं कि कहानीकार कितने संवेदनशील हैं और मानव जीवन को कितना महत्व देते हैं।'

नई जिंदगी साहित्य की दृष्टि से :-

इस कहानी का मुख्य अर्थ सदियों से हमारे भारतीय समाज के यथार्थ रूपों को बताने व अभिव्यक्त करने में साहित्य एक सशक्त माध्यम रही है। पुराने जमाने में लोक प्रेरित पंचतंत्र की कहानियाँ एवं मध्यकाल में आख्यान मूलक कहानी तथा वर्तमान काल में, प्रेमचंद युगीन

सामाजिक कहानियों में देखा गया है। नई जिंदगी कहानी मानवतावादी दृष्टिकोण का मूल आधार है। इस कहानी के आरम्भ में प्रकृति की मनोहर दृष्टि व उनकी सुंदरता का बखान किया गया है। 'प्रातःकाल की इस सुनहरी बेला में चिड़ियों का चहचहाना नव प्रभात का संदेश दे रहा था। सामने की ओर बर्फ से आच्छादित पहाड़ियाँ अत्यधिक मनमोहक लग रही थीं। मंद-मंद चल रहे पवन के झोकों से जहाँ आनन्द की अनुभूति हो रही थी वहीं गरम कपड़ों से पूरी तरह ढके अंग, प्रत्यंग में भी एक सिहरन सी दौड़ जाती थी। साथ-साथ आस-पास की सारी पहाड़ियाँ बर्फ से पूरी ढंक सी गई थी।'

'नई जिंदगी' कहानी में एक ओर प्रकृति तथा उत्तराखण्ड की सौन्दर्य और जीवटता की अद्‌भूत तस्वीर झलकती है। हिमालय क्षेत्र में सुन्दर-सुन्दर पहाड़ी इलाके जो धरती को स्वर्ग का अहसास करा देती हैं। 'निशंक जी की रचनाओं का प्रयोजन आम-आदमी और उसकी भावना ही है, वैसे भी प्रत्येक रचना का अपने समय का महत्व होता है, यही कारण है, कि रचना अपने समय का महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाती है।' इसी कारण इन्होंने अपनी रचना दायित्व और सामाजिक दायित्व को एक-दूसरे से बांधने की कोशिश की है। अपनी रचना के प्रति ये कल्पनाशीलता के साथ-साथ अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति भी सचेष्ट रहे हैं, क्योंकि ये बचपन से इन्होंने इन तमाम समस्याओं और संकेतों से समझ में आ जाती हैं। निशंक जी बाल्यकाल से ही लेखन किया कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप उनके रचनाओं में देश भक्ति व मानव सेवा के साथ-साथ राजनीतिक क्षेत्र मे प्रवेश कर जनता की सेवा कर समाज के समक्ष राजनीतिज्ञ के रूप में भी अपनी पहचान बनाई है तथा उन्होंने राजनीति के द्वारा समाज सेवा को अपना मुख्य माध्यम बनाकर वे समाज को नई दिशा प्रदान कर देश के उन उज्ज्वल भविष्य के लिये अथक प्रयास कर रहे हैं। कहानी नई जिंदगी के माध्यम से डॉ. रमेश पोजारियाल निशंक ने मानवतावादी दृष्टिकोण पर अपना ध्यान केन्द्रित कर समाज में मानवीय सेवा का बीड़ा, अपने कंधों में उठा लिया है। निशंक जी बहु प्रतिभा के धनी हैं, उन्होंने अपने जीवन के आरम्भिक काल में ही अनेक कष्टों का सामना कर वे सदा समाज में मानवता को जीवित रखने के लिये सद्‌भाव, प्रेम व सहयोग द्वारा लोगों को नई शक्ति प्रदान की है।

मूल आलेख :

डा/. रमेश पोखरियाल निशंक की कहानी नई जिंदगी आधुनिक समाज की दैनिक घटनाओं का एक साक्षात प्रमाण है। हिन्दी साहित्य के साथ ही साथ समाज के सम्पर्क को यह अनुपम उदाहरण 'नई जिंदगी' कहानी के द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस कहानी में रचयिता के यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ उनके समर्थ आदर्शवादी विचारधारा से भी हम परिचित हो सके। यह कहानी बनावटी न होने के कारण इसे आज भी पाठक द्वारा काफी पसंद किया जाता है। इस कहानी के पात्र दुष्यंत जो अपने नैतिक जिम्मेदारी के प्रति पूरी तरह जागरूक एवं सजग है। यह कहानी मानव जीवन के दैनिक क्रियाकलाप व गरीबी एवं मानव जीवन के सामान्य गतिविधियों का लेखा-जोखा है। 'एक स्वस्थ समाज के लिये जिन मानवीय गुणों को इन घटनाओं के माध्यम से कहानियों में स्पष्ट कर निशंक जी आशा करते हैं कि लोग इन गुणों का आत्मसात कर एक बेहतर मनुष्य समाज की स्थापना करेंगे। जहाँ हर व्यक्ति एक-दूसरे के सुख-दुख, मान-सम्मान का ख्याल रखेंगे।' निशंक जी अपनी बात के आरंभ में ही लिखते हैं 'मनुष्य जीवन ईश्वर का अनमोल उपहार है। शास्त्रों में कहा गया है कि चौरासी योनियों के पश्चात मनुष्य जीवन की प्राप्ति होती है इसलिए मनुष्य पृथ्वी पर ईश्वर की एक अद्‌भूत एवं अनुपम कृति है। मनुष्य के अंदर अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक संपदाएं छिपी हुई है। इसी से हम अनुभव सकते हैं कि कहानीकार कितने संवेदनशील हैं और वे मानव जिंदगी को कितना महत्व देते हैं।''[1]

नई जिंदगी साहित्य की दृष्टि से -

इस कहानी का अर्थ सदियों से हमारे भारतीय समाज के यथार्थ रूपों को बताने व अभिव्यक्त करने में लोक प्रेरित पंचतंत्र की कहानियां एवं मधयकाल में आष्पाक्ष मूलक कहानी तथा वर्तमानकाल में प्रेमचंद युगीन सामाजिक कहानियां मेंदेखा गया है। नई जिदंगी कहानी मानवतावादी दृष्टिकोण का मूल आधार है। इस कहानी के आरम्भ में प्रकृति की मनोहर दृष्टि व उनकी सुंदरता का बखान किया गया है। ''प्रातःकाल की इस सुरहरी बेला में चिड़ियों का चहचहाना नव प्रभात का संदेश दे रहा था

सामने की ओर बर्फ से आच्छदित पहाड़ियां अत्यधिक मनमोहक लग रही थीं। मंद-मंद चल रहे पवन के झोकों सा जहां आनंद की अनुभूति हो रही थी वहीं गरम कपड़ों से पूरी तरह ढके अंग-प्रत्यंग में भी एक बर्फ से पूरी ढक से गई थी।''[2]

नई जिदंगी कहानी में ''एक ओर प्रकृति तथा उत्तराखण्ड की सौन्दर्य और जीवन्तता की अद्भुत तस्वीर झलकती है, हिमालय क्षेत्र में सुन्दर-सुन्दर पहाड़ी इलाके जो धरती को स्पर्श का अहसास करा देती है। निशंक जी की रचनाओं का प्रयोजन आम-आदमी और उसकी भावना ही है वैसे भी प्रत्येक रचना का अपने समय का महत्व होता है। यही कारण है कि रचना अपने समय का महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाता है। इसी कारण इन्होंने अपनी रचना दायित्य और सामाजिक दायित्व को एक-दूसरे से बांधने की कोशिश की है। अपनी रचना के प्रति ये कल्पनाशीलता के साथ-साथ अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति भी सचेष्ट रहे हैं क्योंकि ये बचपन से इन्होंने इन तमाम समस्याओं और संकेतों से जूझते रहे हैं और इस कारण से इन्होंने इस बात को महसूस किया है कि जीवन में आये संकेतों से जितना वह व्यक्ति जूझते हैं उतना ही उस व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ता है। यही कारण है, कि इनके गीतों में प्रेरणा प्रोत्साहन और संकल्प के स्वर और अधिक मुखर हो गये हैं।''[3]

निशंक जी सदैव ही अपने रचनाओं द्वारा मानवता की सेवा के लिये मानवतावादी दृष्टिकोण को ऊपर उठाया है, वे अपने साहित्य में आम लोगों की पीड़ा को हरने के लिये तथा उनके कष्टों को दूर करने का जरिया निशंक जी की कविताएँ व उनके द्वारा लिखी कथाएँ व कहानियाँ लोगों के दिलों में उत्साह व जोश पैदा कर देती हैं। निशंक की कहानियाँ मानव कल्याण के लिये अत्यन्त लाभकारी व कल्याणवर्धक रही हैं। वे मानव तथा मानवता की सेवा का जज्बा, प्रत्येक भारतीय नागरिकों के हृदय में वतन की सेवा जुनून सब के दिलों में भर देती हैं। नई जिंदगी कहानी के पास दुष्यंत के माध्यम से लेखक ने समाज में मानवता की सेवा तथा इंसानियत को बनाये रखने हेतु इस कहानी की रचना की, जिस प्रकार एक फलदार वृक्ष स्वयं उस फल को नहीं खाता, सूर्य और चंद्रमा सदैव प्राणियों की सुरक्षा हेतु ठण्ड में धूप और रात्रि में शीतलता का अहसास कराकर हमको अपने जीवन मे निःस्वार्थ सुख का अनुभव कराती है। ''मनुष्य मात्र के जीवन का प्रश्न हो अथवा समस्त प्राणि जगत के जीवन का यह परोपकारी नदी सभी को जीवन दान दे रही है। कहीं-कहीं भटकते प्राणियों को शक्ति प्रदान करती हैं तो कहीं प्यासों की प्यास बुझाती है। इसके लिये अमीर-गरीब, छूत-अछूत में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं। इस जल को अमृत समझ चाहे इसका पान करो अथवा कुलादि के परिमार्जन का कार्य, इसके लिये ऊँच-नीच का कोई भेदभाव है ही नहीं। यह तो सर्वथा परहित में निहित हैं।''[4]

लेखक ने 'नई जिंदगी' के पात्र दुष्यत के द्वारा समाज में व्याप्त मनुष्यों के व्यवहार एवं उनके मनोदशा का वर्णन कर रहे हैं। एक ओर तो उन्होंने समाज में व्याप्त पुरुषों के क्रूरता पर तीक्ष्ण प्रहार कर मानव सभ्यता का पाठ पढ़ाया वहीं दूसरी तरफ वे उसी समाज में रह रहे नेक व सभ्य लोगों के व्यक्तित्व जो इंसानियत को बनाये रखने तथा परोपकार करने वाले व्यक्ति की प्रशंसा भी करते हैं। दुष्यंत ने अपने निजी जीवन में अनेक कुकर्म किये तथा भ्रष्टाचारी, नशाखोरी पत्नी को धोखा देना, पास-पड़ोसी, सगे सम्बन्धी इन सबसे उचित तालमेल न रखना, गाली-गलौच करना, जुआ खेलना जैसी गंदी आदतों का शिकार हो गया था जिसके चलते उसने अपनी योग्य देवी जैसी पत्नी को धोखा दिया और दुष्यंत इन्हीं वासनाओं का शिकार होकर अपनी धर्म पत्नी को हमेशा-हमेशा के लिये खो दिया। ''इसी लालचीपन और दुर्गुणों के कारण पत्नी से उसकी एक न बनती थी जब तक दुष्यंत नौकरी पर रहा पत्नी को कुछ राहत थी, किंतु पेंशन आ जाने के बाद चौबीस घंटे शराब में धुत होकर अनाप-शनाप बकता रहता था। पत्नी को एक-एक क्षण गुजारना दूभर हो गया था। संतान के अभाव से दुखी व दुष्यंत के चिड़चिड़े स्वभाव से परेशान होकर आखिर एक दिन उसने आत्महत्या कर ली।''[5]

दुष्यंत अब अकेले रहने लगा, घर में नौकर भी उसकी इसी बुरी आदतों से परेशान होकर नौकरी छोड़ देते थे, दुष्यंत का उग्र स्वभाव और विक्षित मानसिकता उसके पास कोई भी व्यक्ति उसके साथ रहना पसंद नहीं करते थे। उससे वह बेहद अकेला सा हो गया। खाली घर उसको काटने को दौड़ता था। बेबस व लाचार समय का

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

मारा दुष्यंत गली–गली भटकता रहा अंततः उसने घर से बाहर रहने का फैसला किया और मजबूर होकर उसने होटल में रहना शुरू कर दिया, सुबह से दोपहर इधर उधर टहतला रहता और अपना बाकी समय वह होटल मे रहकर शराब पीना तथा सट्टेबाजी में लगा देता था। उसने घर जाना छोड़ दिया था। दुष्यंत की जिंदगी भर की पूँजी जैसे धीरे–धीरे खत्म होते जा रही थी और नौकरी के बाद जो पेंशन मिल रहा था उससे उसके रोज का गुजारा कर नामुमकिन था। धीरे–धीरे उम्र बीतती गई, वह वृद्ध हो चला था और उसके वृद्धावस्था में उसे एक घूट पानी पिलाने वाला भी उसके पास न था। वह दिन–रात यही सोच सोचकर परेशान होता रहता था। एक दिन वह चलते चलते रास्ते से एक मजदूर को बड़े गौर से देखकर हैरान हो गया क्योंकि वह एक जवान व्यक्ति से मुलाकात के पश्चात् भूख व गरीबी से व परिस्थिति से मारा वह जवान व्यक्ति बूढ़ा हो गया था।

''दुष्यंत ने उससे उसका नाम पूछा। उसने कहा अमीरदास, अमीरदास सुनकर उसे हंसी आई। उसके शहर में एक बहुत बड़ा सेठ था, जिसका नाम गरीबदास था, ईश्वर की भी क्या लीला है गरीबदास को भरपूर सुख–समृद्धि दी और अमीरदास को कंगाल बना दिया। उसने धीरे से बोरियों से ढके इन बच्चों को देखा गोरे–चिट्टे, किंतु दरिद्रता और भूख की महामारी ने इन मासूम चेहरों को झुलसा दिया था। बच्चों को, देखते ही उसके हृदय में वात्सल्य जाग उठा। उसने दोनों बच्चों को बांहों में समेटकर सीने से लगा लिया।''[6]

दुष्यंत उन बच्चों तथा बूढ़े पिता बारिश में भीगते देखकर उनके हृदय में वात्सल्य, दया, करुणा जैसी चीजों ने उन्हें अपने घर जाने में मजबूर कर दिया। मासूम बच्चियों की ऐसी दशा दुष्यंत से देखी न गई। वह उस बूढ़े व्यक्ति अमीरदास से कहता है, कि तुम सब मेरे साथ चलो मेरा बड़ा सा मकान है, जो इस वक्त बेजान पड़ा हुआ है, कोई नहीं रहता, तुम दोनों बच्चियों के साथ मेरे साथ रहना तुम्हारा यहाँ सड़क पर अकेले रहना ठीक नहीं है, ऊपर से इतनी तेज बारिश। दुष्यंत के भाव भरे शब्दों सुनकर अमीर दास आत्मीयता से भर उठे और वह एकटक दुष्यंत के चेहरे को निहारने लगे।

दुष्यंत के बार–बार आग्रह करने पर अमीरदास उनको मना नही कर पाये और वे अपने दोनों बच्चों के सहित उनके घर जाने के लिये राजी हो गये। दुष्यंत को अपने कानों पर विश्वास नहीं रहा मानो उनके सूने घर आंगन में खुशियों की बरकत होते देख खुशी से फूले नहीं समाये। अमीरदास मन ही मन सोचने लगा कि यह व्यक्ति इस काली अंधेरी रात में मेरे व मेरे बच्चों के लिये किसी देवता से कम नहीं है, वे दुष्यंत को साक्षात् ईश्वर के प्रतिरूप मानने लगे।

दुष्यंत का घर जंगल के जैसे वीरान था। अब बच्चों के कदम लगते ही घर खुशियों से भर उठा। दुष्यंत ने अमीरदास को अपना घर सौंपते हुए कहा कि ले भाई अब से यह घर जो मेरी धर्म पत्नी के इस दुनिया से जाने के बाद उजड़ गया था आपके आने से घर के चारों तरफ खुशियाँ ही खुशियाँ नजर आ रही हैं, दुष्यंत बोलते हैं, इस घर को चाहे आप सजाओ या संवारो वो आपकी अमानत है।

दुष्यंत की इस सज्जन व्यक्तित्व की कल्पना किसी ने भी नहीं की थी। वह व्यक्ति समाज को मानवता का पाठ पढ़ा कर समाज में अपनी एक अलग ही छवि बना ली है।

दुष्यंत ने अमीरदास के बच्चों को अपने घर में लाकर दूसरे दिन स्कूल में दाखिला करवा दिया, दुष्यंत के जीवन में एकाएक परिवर्तन आने शुरू हो गये। दुष्यंत अब गलत संगति से बाहर निकलकर अब अपनी बाकी जीवन शांति पूर्ण अमीरदास व उनके दोनों बच्चों के साथ बिताने का फैसला किया और वह अब होटल जाना, शराब पीना, बीड़ी, सिगरेट, आदि विसंगतियों को छोड़ने लगा था। दुष्यंत की पत्नी की यही इच्छा थी वह मरने से पहले दुष्यंत के साथ एक नया जीवन बिताना चाहती थी, लेकिन उसके जीते जी वह पूरा न हो सका। इस बात का अफसोस दुष्यंत को खलने लगी थीं। इसी कारण दुष्यंत ने अपने वीरान सुने पड़े मकान को अमीरदास के नाम कर दिया।

इधर बच्चों की खुशी का ठिकाना न रहा उनको, जैसे नई जिंदगी मिल गई थी।

''अमीरदास की भावनाओं की कद्र करते हुए दुष्यंत ने उसे अपने विभाग में सरकारी नौकरी पर लगा दिया था। घर का सारा कामकाज निपटाने के बाद अमीरदास नौकरी

पर जाता और सायंकाल घर लौटकर सारा काम करता। इससे पहले वह जब-तब अपने मनुष्य योनि में जन्म लेने को कोसता रहता था, किंतु अब वह पूरी तरह से संतुष्ट था। जीवन में किसी और खुशी की चाह अब उसे न रही दुष्यंत के व्यवहार व व्यक्तित्व में अचानक बदलाव उसके आस-पास में रहने वाले लोगों को आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे लोग आपस में यही बात करते कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी का सगा न हो सका, जिससे सात फेरे लेकर भी उसकी खुशियों तथा उसके तकलीफों को अपना न सका, आज वहीं दुष्यंत को यह क्या हो गया है, रोड पर पड़े भिखारी को अपना घर-बार सौंप दिया।

''दुष्यंत का यह बदला रूप वास्तव में देखने लायक हो गया था। उसके चेहरे का तनाव, उसका उग्र रूप, उसका कटु-व्यवहार सब न जाने कहाँ लोप हो गये थे, सबको विस्मय था कि जीवन भर से पाले ढेर सारे दुर्व्यसनों को दुष्यंत ने एक ही झटके में छोड़ डाला। लोग उससे स्नेह करने लगे थे। दुष्यंत में आए इस परिवर्तन से लोग बहुत खुश थे।''[7]

सच में दुष्यंत के चारों तरफ अब दु:ख के बादल हट गये थे। उनके जीवन में अब खुशियाँ ही खुशियाँ थीं। सारी दुनिया उनको अपनी बुरी बात के कारण बुरी लगती थी वही लोग उसे अच्छे व सच्चे लगने लगे थे। उसे लगने लगा था कि वह बुरे संगत के कारण अपने जीवन के अच्छे लम्हों को पीछे छोड़ दिया था, उसको अपनी पत्नी की अच्छाईयों की भी कद्र न रही। दुर्व्यसनों के कारण वह सब कुछ खो दिया लेकिन वह अपने आप को तसल्ली देता है। शायद ईश्वर सचमुच मे परीक्षा लेता है। दुष्यंत अपने किये कुकर्मों का प्रायश्चित करना चाहता है, इसीलिये वह दोनों बच्चों की सेवा पूरी ईमानदारी के साथ करने के लिये जुट जाता है और उन दोनों बच्चों को अपने कँधों में बिठाकर पूरे गली मुहल्लों में घुमकर अपनी खुशी जाहिर करता है। बच्चों के साथ वह अपनी बाकी का जीवन उनकी खुशियों के लिये अपने आप को समर्पित करने में तैयार रहता है। शायद इसी कारण वह अपने आप को भी वह भूल गया था।

यह सच है, कि हमें मानव जीवन 84 लाख योनियों के जन्म के पश्चात् प्राप्त होती हैं, कि हम समाज में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियों को अपनाकर समाज के खिलाफ खड़े हो जाते हैं और अपने अभद्र व्यवहार से समाज के अन्य सामाजिक, लोग व सामाजिक माहौल को खराब करने में कर जाते हैं। नशाखोरी, भ्रष्टाचार, चोरी, शराब जैसी गंदी चीजों का शिकार होकर हम अपने जीवन के हसीन लम्हों को खो देते हैं। दुष्यंत ने अपने आप को बदलकर समाज के उन व्यक्तियों के लिये मिशाल बने हैं जो नशा, चोरी, भ्रष्टाचार के शिकार होकर अपना सब कुछ हार चुके हैं।

निष्कर्ष :

इस कहानी से लेखक डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी ने समाज से बुराईयों का दमन करने के एक छोटी सी कोशिश कर समाज में मानवता के दीपक को सदैव जलाये रखने की तथा समाज में शांति स्थापित करने की कसम खा रखी है, जिससे हमारे भारत देश से बुराईयों का दमन हो और चारों तरफ शांति और खुशियों का माहौल हो। लेखक ने समाज में मानवता को बनाये रखने के लिये कई सारी कहानियों का उद्भवन किया जिससे स्वयं भारतीय समाज का कल्याण हो सके।

''नि:सन्देह डॉ. निशंक जी ने अपने सभी उपन्यासों और कहानियों से मानवीय जीवन के उदान्त, शाश्वत, सार्थक व सकारात्मक जीवन मूल्यों की सहज लेखनी प्रदान की है। राजनीतिक व सामाजिक जीवन के व्यस्त, कर्तव्यों का निर्वाहन पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ करते हुये सार्थक साहित्य रचना, डॉ. निशंक को विशिष्टता प्रदान करता है। आशा ही नहीं विश्वास है कि हम भविष्य में भी डॉ. निशंक की शब्द साधना से लाभान्वित होते रहेंगे।''[8]

उनके साहित्य में भावुकता, संवेदनशीलता व सहिष्णुता का भाव झलकता है। वे बाल्यकाल से अनेक कठिनाईयों को सहन किये हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे किसी अन्य व्यक्ति की दु:ख व पीड़ा को भलीभाँति समझ पाते हैं और उन पीड़ितों की सहायता करने में लग जाते हैं। वे एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ भी है और वे राजनीति को समाज के परोपकार करने के लिये अपनाये हैं, जिससे वे समाज में शांति स्थापित करते हुए लोगों की मदद कर सकें।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
भारतीय विश्वविद्यालय दुर्ग, छत्तीसगढ़
ईमेल-nishantbaghel222@gmail.com

संदर्भ सूची

1. डॉ. योगनाथ शर्मा 'अरुण' डॉ. निशंक के साहित्य सृजन, मनन एवं मूल्यांकन दस्तावेज भाग-2, डॉ. कुसुम कुंज मालाकार, अनंग प्रकाशन 2022, दिल्ली, पृ. क्र. 168
2. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, अंकुर पब्लिकेशन, संस्करण 2014 पृ.क्र. 15
3. डॉ. योगनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, साहित्य सृजन, मनन एवं मूल्यांकन दस्तावेज भाग-2, डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव, अनंग प्रकाशन 2022, दिल्ली, पृ. क्र. 287
4. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, अंकुर पब्लिकेशन, उ.प्र. संस्करण 2014, पृ.क्र. 16
5. वही, पृ.क्र. 18
6. वही, पृ.क्र. 19
7. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ, अंकुर पब्लिकेशन, उ.प्र. संस्करण 2014, पृ.क्र. 20
8. डॉ. योगनाथ शर्मा 'अरुण' डॉ. निशंक के साहित्य सृजन, मनन एवं मूल्यांकन दस्तावेज भाग-2, डॉ. विनोद कुमार गोयल - निशंक के कथा साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति, अनंग प्रकाशन 2022, पृ.क्र. 275

शाहिद अख्तर

कोइलवर में बालू उत्खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएं : एक भौगोलिक अध्ययन

बालू उत्खनन प्राथमिक आर्थिक गतिविधि की श्रेणी के अंतर्गत शामिल है। बिहार की अर्थव्यवस्था में खनन क्षेत्र की महती भूमिका है। बालू उत्खनन ने कोइलवर में सोन नदी पारितंत्र को गंभीर नुकसान पहुंचाया है।

कोइलवर भोजपुर जिला का एक प्रशासनिक प्रखंड है। इसकी भौगोलिक अवस्थिति $25^{0}56'96''$ उत्तरी अक्षांश एवं $84^{0}79'32''$ पूर्वी देशान्तर है। कोइलवर प्रखंड का क्षेत्रफल 171 वर्ग किलोमीटर है।

प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित होगा। प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण अनीश सूची के माध्यम से एकत्र किए जाएंगे। आवश्यकतानुसार द्वितीयक आंकड़ों का भी प्रयोग किए गए हैं। तथ्यों के विश्लेषण एवं निष्कर्ष हेतु सुदूर संवेदन तकनीक, जीआईएस, आलेख मानचित्र आदि तकनीक का प्रयोग होगा।

शोधपत्र का मुख्य उद्देश कोइलवर से बालू उत्खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं का पता लगाना, प्रदूषण की प्रभाविता का पता लगाना, समाधान का उपाय बताना।

बालू उत्खनन से कोइलवर में वायु प्रदूषण, मृदा क्षरण, उत्खात भूमि का सृजन, नदी जल में भारी धातुओं के संकेंद्रण/सांद्रता में वृद्धि, नदी जल प्रदूषण, भूमिगत जलस्तर का गिरना, वनस्पति आवरण का नष्ट होना, जैव विविधता में ह्रास आदि मुख्य पर्यावरणीय समस्याएं हैं। कोइलवर में बालू उत्खनन के मार्ग में कई चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक खनन प्रणाली, खनन प्रबंधन, मृदा प्रबंधन, एकीकृत जलीय कृषि, ग्रामीण पर्यटन, अवैध खनन पर कठोर कार्रवाई, व्यापक एवं गहन निगरानी आदि उपायों द्वारा प्रदूषण का शमन एवं न्यूनीकरण किया जाएगा।

मुख्य शब्द :

उत्खात भूमि, भूमिगत जल स्तर, सुदूर संवेदन एवं जीआईएस, खनन प्रबंधन, मृदा प्रबंधन, ग्रामीण पर्यटन आदि।

परिचय :

कोइलवर निचली सोन घाटी में अवस्थित एक महत्वपूर्ण बालू खनन केंद्र है। यहाँ से उत्खनित बालू की आपूर्ति निकटवर्ती क्षेत्रों के साथ-साथ दूर-दराज के क्षेत्रों में भी की जाती है। सोन बालू अपने लाल रंग एवं मोटे दानेदार क्रिस्टलीय संरचना के लिए प्रसिद्ध है। अपनी इन संरचनाओं के साथ यह सीमेंट से मिलकर मजबूत पकड़ बनाती है। कोइलवर से उत्खनित बालू चूंकि नदीय बालू है। इसी कारण यह अशुद्धियों से लगभग मुक्त है। इसमें गाद, मिट्टी एवं मृत्तिका का अभाव होता है। उत्खनन के पश्चात निष्कर्षण के बिना ही सीधे इसका उपयोग किया जाता है।

कोइलवर बालू की प्रसिद्धि के कारण इसकी मांग अत्यधिक है। इस बढ़ती हुई मांग की सतत आपूर्ति हेतु अवैध एवं अनियंत्रित खनन की जाती है। कोईलवर में बालू की अवैध एवं अनियंत्रित एवं अवैज्ञानिक खनन ने गम्भीर पर्यावरणीय एवं परिस्थितिकीय समस्याओं को उत्पन्न किया है। इन पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय समस्याओं का दुष्प्रभाव खनन में संलग्न मजदूरों और निकटवर्ती अधिवासीय क्षेत्र पर पड़ा है। खनन में संलग्न मजदूरों के स्वास्थ्य गंभीर रूप से समस्याग्रस्त हैं। इन समस्याओं में अस्थमा सिलिकोसिस, टायफॉईड, मांसपेशी में खिंचाव, सुनने की

क्षमता में कमी, आंखों में जलन, फाइब्रोमायल्जिया Otis Media आदि बीमारियां सामान्यत: श्रमिकों में पाया जाता है।

बालू खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं में वायु प्रदूषण प्रमुख हैं जिसमें खनन स्थल पर PM- 2.5 PM- 10 जैसे निलंबित ठोस कणों की सांद्रता में वृद्धि, खनन मशीनों एवं वाहनों से निकलने वाले हानिकारक गैस का वायु में सम्मिश्रण, सतही जल एवं भूमिगत जल में भारी धातुओं, शीशा, पारा, जिंक, मैंगनीज की सांद्रता में वृद्धि आदि हैं। साथ ही भूमिगत जल का गिरता स्तर एवं उसका संदूषण धड़ल्ले से हो रहा है। कोईलवर में बालू उत्खनन ने मृदा के संघटन को बदलकर उसकी गुणवत्ता में ह्रास किया है। मृदा की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में गिरावट आई है। नदी पेटी से बालू खनन के पश्चात नदीय वनस्पति आवरण एवं नदीय जीव जंतुओं की प्रजातियां एवं संख्या में कमी आई है। कोइलवर की जैव विविधता में कमी आयी है और नदीय पारितंत्र ध्वस्त हो चुका है। नदी की पेटी में बालू खनन के पश्चात नदी कर्तन, तटीय अस्थिरता, उत्खात भूमि का विस्तार, कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में गिरावट आदि समस्याएं दृष्टिगत हुई है।

अध्ययन क्षेत्र :- कोइलवर प्रखंड मुख्यालय भोजपुर जिला में अवस्थित है। यह सोन नदी के किनारे स्थित एक प्रखण्ड मुख्यालय है। इसका भौगोलिक विस्तार $25^{0}4'$ उत्तरी अक्षांश एवं $84^{0}25'$ पूर्वी देशान्तर है। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय आर्द्र मानसूनी जलवायु है। इस पूरे भौगोलिक क्षेत्र में उष्णकटिबंधीय मानसूनी पर्णपाती वनस्पति पाई जाती है। अध्ययन क्षेत्र समुद्र तल से औसतन 67 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा लगभग 100 सेंटीमीटर है।

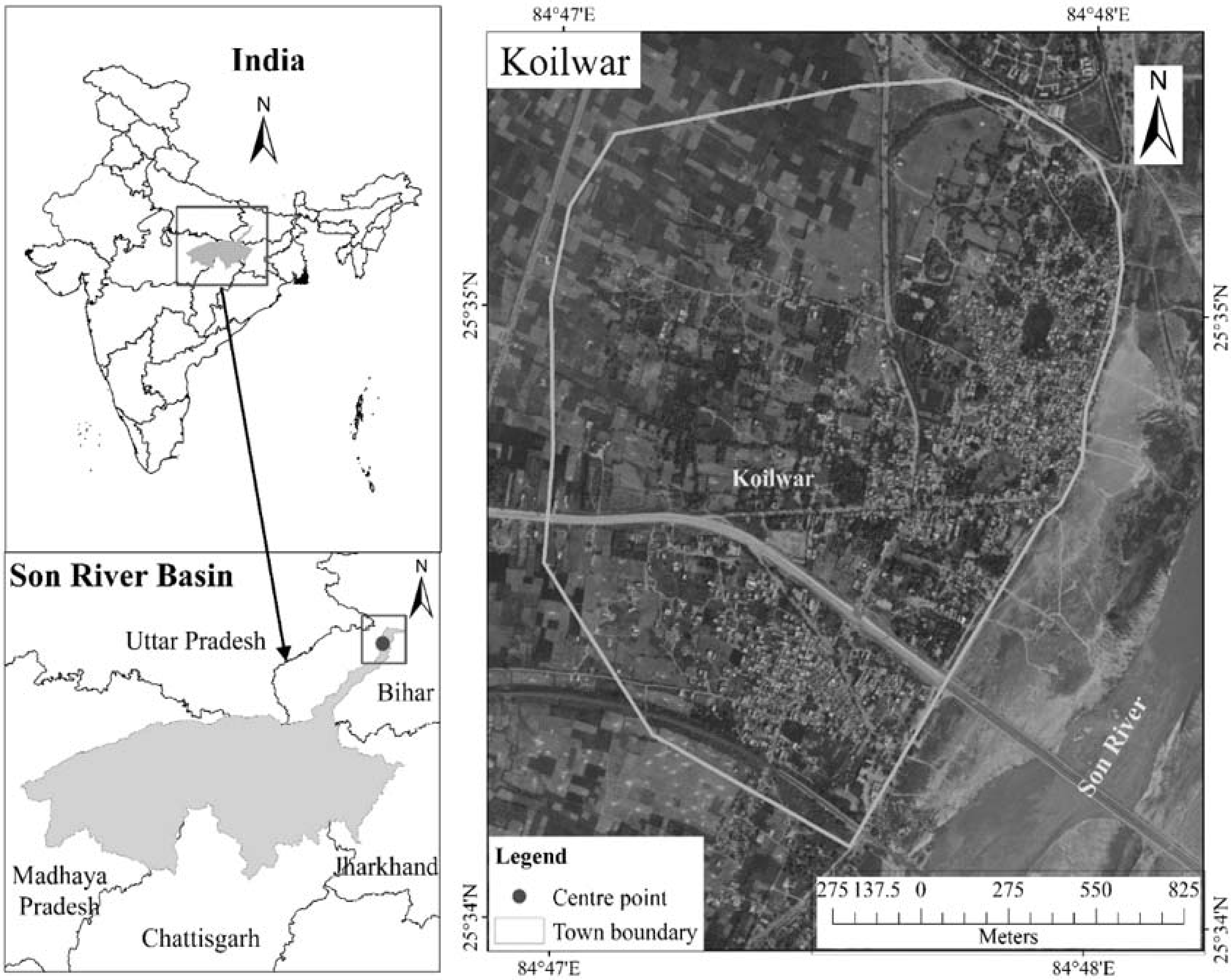

विधि तंत्र :- प्रस्तुत शोध प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित होगा। प्राथमिक आंकड़ों के संग्रहण हेतु अनुसूची, व्यक्तिगत इंटरव्यू, सर्वेक्षण, अवलोकन आदि माध्यमों से किया जाएगा। इसके साथ-साथ तथ्यों का विश्लेषण, शोध की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता को सुनिश्चित करने और सरल तथा बोधगम्य बनाने के लिए जीआईएस, सुदूर संवेदन तकनीक, मानचित्र, आलेख आदि को व्यवहार में लाया गया है।

उद्देश्य :- प्रस्तुत शोधपत्र कोईलवर में बालू खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं से संबद्ध है। इस शोध के मुख्य उद्देश्य निम्न है:-

(i) कोइलवर में बालू खनन से उत्पादन पर्यावरण समस्याओं का पता लगाना

(ii) पर्यावरणीय समस्याओं का निकटवर्ती अधिवासित लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना

(iii) पर्यावरणीय प्रदूषण की गहनता की जांच करना

(iv) बालू उत्खनन से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु उपाय ढूंढना।

कोइलवर सोन नदी के किनारे पर अवस्थित एक प्रमुख नगर भी है। यह नगर परिषद की श्रेणी का शहर है। निचली सोन घाटी का यह मुख्य बालू उत्खनन केंद्र है। कोइलवर से उत्खनित बालू की लोकप्रियता ने इसकी मांग में बेतहाशा वृद्धि की है। यही कारण है कि इन बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए कोइलवर में अवैध एवं अनियंत्रित बालू खनन निरंतर जारी है। बालू के निरंतर अत्यधिक खनन ने विविध पर्यावरणीय समस्याओं को उत्पन्न किया। इन पर्यावरणीय समस्याओं में से कुछ का विवरण निम्न है:-

(i) नदी जल संदूषण :- बालू उत्खनन नदी जल की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। इसके अंतर्गत मुख्यत: पंकिलता में बढ़ोतरी, नदी जल तापमान में बदलाव, पर्यवसान के वितरण तथा उपलब्धता में बदलाव तथा प्रदूषकों की सांद्रता में वृद्धि के साथ ही लवणीय जलों का अतिक्रमण आदि सम्मिलित है।

''पंकिलता में वृद्धि का मुख्य कारण धारा में खनन तथा बालू रोधिका का शीर्ष सतही खनन है।''[1] बालू खनन के कारण ही नदीय जल में मैगनीज, क्रोमियम एवं लोहा की सांद्रता, भारी धातुओं एवं प्राकृतिक विषकारियों आदि में वृद्धि हुई है।

(ii) भूमिगत जलस्तर का गिरना :- बालू नदी तल पर स्थित प्राकृतिक स्पंज होते हैं। यह नदियों में प्रवाहित जल को अवशोषित कर लेती है। ये जल धीरे-धीरे रिसकर जमीन के अंदर प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार भूमिगत जल रिचार्ज हो जाते हैं परन्तु जब नदी की पेटी से बालू उत्खनित कर हटा दिया जाता है तो यह प्राकृतिक स्पंज समाप्त हो जाते हैं। अब नदी तल पर बालू के स्थान पर बारीक कण वाले अवसाद आच्छादित हो जाते हैं। यह अत्यधिक महीन कण क्ले एवं सिल्ट होते हैं जो नदी तल की प्रकृति को कठोर बना देते हैं। इनसे रिसकर जल भूमि के अंदर प्रवेश नहीं कर पाता है जिससे भूमिगत जल रिचार्ज नहीं हो पाता है और भूमिगत जलस्तर धीरे धीरे नीचे चला जाता है।

(iii) प्राकृतिक पर्यावास का क्षय :- बालू खनन के कारण जल पंकिलता में वृद्धि होती है। जल में सूर्य प्रकाश के प्रवेश में बाधा उत्पन्न होती है। सूर्य प्रकाश के अभाव में जल के अंदर उगने वाले शैवाल, कवक, घास, वनस्पति एवं प्लैंक्टन का विकास नहीं हो पाता है। यह जलीय जीवों को आवास एवं भोजन प्रदान करता है।

बालू एवं बजरी के संस्तर पर ही मछलियों की कुछ प्रजातियां एवं खरयाल अंडे देते हैं। इसके खनन ने इन जीवों के लिए अधिवास संकट को जन्म दिया है। रेत तथा बजरी खनन चयनात्मक तौर पर आकार विशेष के अवसादों का उन्मूलन कर के मछलियों के प्रजनन पर्यावास का ह्रास कर सकते हैं।[2]

(iv) वनस्पतियो का ह्रास:- बालू खनन का नदीय वनस्पति के आवरण एवं सघनता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बालू खनन के कारण तटों की अस्थिरता से वनस्पतियों का कटाव हो जाता है। ''राजस्थान के पलरीभोपटन गांव में बजरी एवं रेत खनन के कारण वनस्पति का प्रत्यक्ष लोप, उत्खनन तथा अपशिष्ट डंपिंग से मृदा परिच्छेदिका में बाधा, उस क्षेत्र के जल विज्ञान तथा अध:स्तर के पोषण सांद्रता बाधित होने से वनस्पति आवरण में ह्रास हुआ है।''[3]

(v) जैव विविधता का ह्रास :- बालू खनन से प्राकृतिक पर्यावास क्षय, वनस्पतिय ह्रास, भूमिगत जल स्तर में कमी, जलीय प्रदूषण आदि के संचयी प्रभाव के कारण ही जैव विविधता में कमी आ रही है। साथ ही बालू खनन से पोषण चक्र साथ-साथ अन्य प्राकृतिक चक्र भी बाधित हो जाता है जिसका जैव विविधता पर गंभीर दुष्प्रभाव पड़ता है।

(vi) नदीय प्राकृतिक अपवाह तथा जलस्तर में बदलाव:– बालू खनन से चैनल में भौतिक बदलाव होता है। चैनल में भौतिक बदलाव के अनुसार ही स्थानीय अपवाह एवं जल स्तर में परिवर्तन दृष्टिगत हुई है। मिंगिस्ट एवं गेब्रेमधीन तथा विजगा व अन्य ने "प्रवाह दर में बढ़ोतरी के साथ बाद के शोध में धारा की क्षमता में वृद्धि को उच्च प्रवाह हेतु उत्तरदायी कारक।"[4, 5]

(vii) नदी आकारिकी में बदलाव :– बालू खनन के कारण नदी के ढाल में अकस्मात परिवर्तन, चैनल कर्तन से चैनल आकर, अवसाद की संरचना तथा उपलब्धता में बदलाव और प्रवाहकाल वृहत स्तर पर नदी आकारिकी में बदलाव से जुड़ा होता है।

(viii) उपयोगी भूमि का अपरदन:– बालू तथा बजरी खनन नदी के प्रवाह की गति में वृद्धि करती है और तटीय अपरदन को द्रुत कर पूर्व के उपयोगी भूमिका लोप कर देती है। Harvey & Lisley (1998) के अनुसार बालू खनन के कारण लुप्त हुई भूमि का निकट भविष्य में पुन: प्राप्ति की संभावना नगण्य होती है।

(ix) वायु प्रदूषण:– बालू के खनन, संग्रहण, परिवहन एवं विपणन की समस्त प्रक्रिया में धूल कण उत्पन्न होता है। यह धूल कण वायु में निलंबित रहते हैं एवं वायु जनित है। धूल कण वायु में लंबित होकर आसपास के क्षेत्रों में फैल जाते हैं। इससे वायु में निलंबित ठोस कणों की सांद्रता में वृद्धि होती है और वायु प्रदूषित हो जाती है।

(x) मृदा प्रदूषण एवं अवनयन:– बालू खनन प्राय: खुले खदानों में होता है। इसके अंतर्गत बड़े भौगोलिक क्षेत्र के ऊपरी संस्तरीय परत को हटा दिया जाता है। ध्यातव्य है कि ऊपरी संस्तरीय मृदा ही सर्वाधिक उपजाऊ मृदा होती है। इसके साथ ही बालू का विपणन पूर्व संग्रहण किया जाता है। बालू मृदा के साथ मिलकर उसके संघटन को बदल देती है। बालू की अधिकता के कारण मृदा की जल धारण क्षमता में कमी आ जाती है।

बालू उत्खनन के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव के न्यूनीकरण एवं शमन हेतु नदीय बालू का संपोषणीय एवं वैज्ञानिक विधि से उत्खनन होना चाहिए। बालू उत्खनन से पूर्व संदर्भित स्थान का पर्यावरणीय प्रभाव आकलन किया जाना चाहिए। इसके साथ ही नदीय बालू का विकल्प तैयार करना, नदी तटबन्ध का संरक्षण, बालू खनन पर मौसमी प्रतिबंध लगाना, अवसाद के दुष्प्रभाव को सीमित करना, प्रदूषण पर नियंत्रण एवं शमन, भूमिगत जल संरक्षण, मृदा प्रबंधन, विस्तृत खनन योजना, प्रबंधकीय योजना, कानूनी उपाय, समुदाय सहभागिता, इको पर्यटन, सतत एकीकृत जलीय कृषि एवं अवैध खनन को रोकने हेतु सीसीटीवी कैमरा इंस्टालेशन, ड्रोन से निगरानी, खनन स्थल का मानचित्रण, वाहनों में जीपीएस ट्रैकिंग डिवाइस द्वारा निगरानी आदि उपाय अपनाएं जाने चाहिए।

निष्कर्ष: बालू आधुनिक सभ्यता में मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। बढ़ती जनसंख्या एवं तकनीकी उपभोक्तावादी जीवन शैली ने बालू की मांग को बढ़ाया है। बालू उत्खनन के अनेक पर्यावरणीय दुष्परिणाम वैश्विक स्तर पर दृष्टिगोचर हो रहा है और कोइलवर भी इससे अछूता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि बालू खनन संपोषणीय एवं वैज्ञानिक तरीके से हो जिससे इसके दुष्प्रभावों का न्यूनीकरण किया जा सके।

शोधार्थी
एच.डी. जैन कॉलेज,
वी. के. एस. यू. आरा
Email – shahidakh94@gmail.com

संदर्भ सूची

1. Kondolf, G., 1993. Geomorphic and environmental effects of instream gravel mining- Landscape and Urban Planning, vol. 28, pp – 225 –243.
2. Harvey, B.C., & Lisley, T.E., 1998. Effects of Suction Dredging on Streams : A Review and and evaluation Strategy, FISHERIES HABITAT, vol- 23(8), pp- 8–17.
3. Kumar, N., & Kumar, A., 2014, Floristic diversity Assessment in River Sand mining near palri Bhoptan village, Kisangarh Tehsil, Ajmer District, Rajasthan, India. Asian Journal of Earth sciences. Vol- 7(2), pp- 51-59.
4. Mingist, M. & Gebremedhin, S., 2016. Could Sand mining be a major threat for the declining endemic Labeobarbus Species of take Tana, Ethiopia\ Singapore Journal of Tropical Geography vol- 37(2), pp – 195-208.
5. Wyga, B. Et al. 2009. Hydropmorphological Conditions, potential fish habitats and the fish community in a mountain river subjected to variable human impacts, the czarny Dunajee Carpathians. Wiley Interscience, RIVER RESEARCH AND APPLICATION vol. 25, pp–517–536.

साधना नाई

बाणोच्छिष्टं जगतसर्वम् / बाणभट्टस्य रचनाशैली

भूमिका :-

हितोपदेशे नारायणशर्म्मा वदति–

''संसारं बिषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
काव्यामृतरसास्वादः संगमः सज्जनैः सह।।''

अर्थात् संसाररूपविषवृक्षस्य अमृतरूपौ फलद्वयम्–काव्यरसस्य आस्वादनम् सज्जनसंगति च। युगे युगे त्रिकालजयी काव्यं साहित्यरसिकानाम् तृष्णां निवृत्तं कृत्वा दयालुसामाजिकवर्गान् चमत्कारिकम् आनन्दं धारयति। कविः प्रजापतितुल्यः ब्रह्मस्वरूपः। स केवलं स्वप्रीत्या एव सृजति।

गद्यचिह्नैः सह आलंकारिणः वदन्ति–**'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्'** अथवा **'अपादः पदसन्तानो गद्यम्'**। काव्यमिव अत्र छन्दस्य बन्धनं न भविष्यति। पद्यलेखनापेक्षया गद्यलेखनं कठिनतरम्। अतः वक्तुं शक्यते–**'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'**। (–काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः)

संस्कृतगद्याकाशे महाकवि बाणभट्टस्य उच्चतमः स्थानः प्राप्यते। महाकवि दण्डी, महाकवि सुबन्धुः बाणभट्टश्च संस्कृतगद्यकाव्यस्य त्रयः स्तम्भाः स्वीकृयते। बाणभट्टस्य कादम्बरी हर्षचरितश्च संस्कृतगद्यबाङ्मये अति प्रसिद्धः ग्रन्थः अस्ति। आचार्यवाणभट्टः ज्योतिषि तेजसा संस्कृतगद्यस्य दरवारे आविर्भवति। तस्य कालातीतप्रतिभायाः महत्त्वमानि उदाहरणानि 'कादम्बरी' इति काल्पनिककथाधारितं आख्यानकाव्यं, ऐतिहासिककथाधारितं कथाकाव्यं 'हर्षचरितं' च। एतयोः गद्यकाव्ययोः बाणभट्टस्य सफलता अभवत्। सुन्दरस्वरैः, तालैः, रसैः, भावैः च अलंकृताः बाणभट्टस्य वचनं युवानां पाठकानां हृदयं गृह्णाति। विदग्धमुखमण्डनस्य कविः धर्मदाससूरिः एवं कथयति–

''रुचिस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत् किं तरुणी, नहि नहि बाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।''

समयकालः–

भारतस्य इतिहासानुसारं पुष्यभूतिवंशीयसम्राट् हर्षवर्धनस्य शासनकालः 606-647 ई. पर्यन्तम् आसीत्। स्थानेश्वरः तस्य राजधानी आसीत्। बाणभट्टेन लिखित हर्षचरितग्रन्थात् स्पष्टं भवति यत् बाणभट्टः महाराजहर्षवर्धनस्य आश्रयेण हर्षस्य राज्यसभा अलंकृतः अभवत्। अतः षष्ठशताब्द्याः अन्ते सप्तमशताब्द्याः मध्यभागे च बाणभट्टः जीवितः आसीत् इति कल्पयितुं शक्यते। अस्य निष्कर्षस्य समर्थने अनेके सूचनाप्रदाः तर्काः कर्तुं शक्यते–

1. 1150 तमे वर्षे अलंकारशास्त्रज्ञः रुय्यकः तस्य 'अलंकारसर्वस्व' ग्रन्थे हर्ष्चरितस्य नाम अनेकवारं उल्लेखयति।

क. **'यस्तपोवनमिति मुनिभिः .... इत्यादि हर्षचरिते स्त्रीकण्ठजनपदवर्णने'**

ख. **'यथा हर्षचरिते राज्यवर्धनं प्रति श्रीहर्षोक्तिषु यदि वाल इति सुतराम् अपरित्याज्योऽस्मि ....'**

2. क्षेमेन्द्रः स्वस्य औचित्यविचारचर्चायां कविकण्ठाभरणे च अनेकवारं बाणभट्टस्य उल्लेखं करोतिख्र

क. **'न तु यथा भट्टबाणस्य जयत्युपेन्द्रः स चकार' (–औचित्यविचारचर्चाः)**

ख. **'यथा च भट्टबाणस्य कटु, क्वनन्तो मलदायकाः' (–कविकण्ठाभरणम्)**

3. एकादशशताब्द्याः उत्तरार्धे भोजः स्वस्य सरस्वतीकण्ठाभरणग्रन्थे बाणभट्टस्य गद्यस्य प्रशंसाम्

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

अकरोत्–

'यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः'।

4. 1000 तमे वर्षे धनञ्जयः स्वस्य दशरूपकग्रन्थे बाणस्य नाम उल्लेखं करोति–

'यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य ....' ।

उपर्युक्तप्रमाणात् अष्टमशताब्द्याः द्वादशशतकस्य च मध्ये बाणभट्टः कवित्वेन पर्याप्तं यशः प्राप्तवान् इति कल्पयितुं शक्यते। एवं षष्ठशताब्द्याः अन्ते बाणभट्टः प्रादुर्भूतः इति निष्कर्षः कर्तुं शक्यते।

कविपरिचयः–

बानभट्टः हर्षचरितस्य प्रथमद्वितीयतृतीययोः उच्च्छ्वासेषु किञ्चित् भागेषु स्वस्य परिचयं करोति। बाणभट्टस्य पूर्वजः वत्सः आसीत्। यस्मात् वात्स्यायनवंशस्य आरम्भः अभवत्। बाणस्य प्रपितामहः वात्स्यायनगोत्रस्य कुवेरः आसीत्। सः गुप्तवंशराजैः पूज्यः आसीत्। अस्य कुवेरस्य चतुर्णा पुत्राणां मध्ये कनिष्ठः पुत्रः पाशुपतस्य एकमात्रपुत्रः अर्थपतिः बाणस्य पितामहः अस्ति। तस्य अष्टमपुत्रः गुणवानः याज्ञिकः चित्रभानुः बाणभट्टस्य पिता राज्यदेवी माता च आसीत्। बाणभट्टः सम्राटदत्तः उपाधिः 'वश्यवाणी–कवि–चक्रवर्ती' आसीत्। बाणभट्टस्य जन्मः शोननद्याः पश्चिमतटे स्थिते प्रीतिकूटग्रामे अभवत्। बाल्ये एव सः स्वमातरं त्यक्तवान्। चतुर्दशवर्षे सः अभिषिक्तः अभवत्। बाणस्य धर्मशास्त्रे निपुणतां दृष्ट्वा हर्षवर्धनः तं सभापण्डितस्य पदे स्वीकृतवान्। हर्षवर्धनस्य आश्रयेण बाणभट्टेन कादम्बरी, हर्षचरितम् इति गद्यकाव्यद्वयं रचितम्। परन्तु यदा बाणभट्टः कादम्बरीकथाकाव्यम् असमाप्तं त्यक्त्वा मृतः तदा तस्य पुत्रः पुलिन्दः भूषणभट्टः वा तत् सम्पन्नवान्।

काव्यपरिचयम् –

क. हर्षचरितम् -

बाणभट्टस्य हर्षचरितम् आख्यायिकावर्गस्य गद्यकाव्यं अष्टमोच्छ्वासेषु विभक्तम् अस्ति। अस्य हर्षवर्धनस्य जीवनेतिहासस्य आधारेण अस्ति। बाणभट्टस्य हर्षचरितम् संस्कृतसाहित्ये ऐतिहासिककाव्यस्य प्रारम्भिकम् उदाहरणम् अस्ति। प्रथमोच्छ्वासः 'वात्स्यायनवंशवर्णनम्' इति ख्यातः, यत्र लेखकः आत्मकथात्मकं विवरणं ददाति। 'राजदर्शनम्' इति द्वितीयोच्छ्वासः बाणभट्टः राजा हर्षवर्धनस्य अनुग्रहप्राप्तेः विषये कथयति। तृतीयोच्छ्वासः 'राजवंशवर्णनम्'। 'चक्रवर्तीजन्मवर्णनम्' इति चतुर्थे उच्च्छ्वासे राजाप्रभाकर–वर्धनस्य राज्ञी यशोमतिस्य च पुत्रस्य जन्मवृत्तान्तं वर्णितमस्ति। 'महाराजमरणवर्णनम्' इति पञ्चमे उच्छ्वासे राजाप्रभाकर–वर्धनस्य मृत्युः वर्णितमस्ति। षष्ठोच्छ्वासः 'राजप्रतिज्ञावर्णनम्' इति ख्यातः। सप्तमे उच्छ्वासे हर्षस्य अभिषेकवर्णनम् भवति। अष्टमे उच्छ्वासे हर्षस्य विन्ध्यवने विचरणस्य विषयः अस्ति।

ख. कादम्बरी –

कादम्बरी इति कथावर्गस्य गद्यकाव्यमस्ति। अस्य द्वौ भागौ स्तः। पूर्वभागस्य रचना बाणभट्टेन कृता। बाणभट्टस्य मृत्योः अनन्तरं तस्य पुत्रः पुलिन्देन भूषणभट्टेन वा उत्तरभागस्य रचना अभवत्। अस्य गद्यकाव्यस्य स्रोतः पैशाचीभाषायां लिखितः गुणाढ्यस्य 'बृहत्कथा' अस्ति। अत्र मित्रद्वयस्य जन्मत्रयस्य प्रेमकथा अभिलिखिता अस्ति। एकः पुण्डरीकः, यः द्वितीयजन्मनि वैशम्पायनः, तृतीयजन्मनि शुकपक्षि इति जातः। अन्यः चन्द्रदेवः, यः द्वितीयजन्मनि चन्द्रापीड़ः तृतीयजन्मनि च शूद्रकः इति जायते।

कादम्बरी - हर्षचरितम् इत्येतदतिरिक्तं चण्डीशतकम् इति काव्यं बाणभट्टस्य कृतिः इत्यपि बहुभिः मन्यते।

बाणभट्टस्य रचनाशैली –

बाणभट्टस्य लेखनशैल्याः न केवलं भारतीयसंस्कृतज्ञाः, प्राच्य–पाश्चात्य संस्कृतसाहित्यसमीक्षकाः प्रशंसन्ति। अर्थगौरवापन्नः सुललितपदविन्यासः पाञ्चालीरीतेः मूलकथाः सन्ति। पाञ्चालीरीतेः एतत् वैशिष्ट्यं बाणभट्टस्य वाग्विन्यासे वर्तते। अतः सः भारतीयसाहित्य मीमांसकमध्ये प्रशंसितः अस्ति –

''शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।।''

(–सूक्तिमुक्तावली)

क. रीतिः –

बाणभट्टः पाञ्चालीरीतेः कविः। तस्य लेखनशैली माधुर्य्यं सौकुमर्य्यं च एतयोः गुणयोः सम्पन्ना अस्ति। यद्यपि बाणभट्टस्य कादम्बरीकाव्ये पाञ्चालीरीतेः प्राधान्यम् अस्ति, तथापि तेन वैदर्भी, गौड़ी, लाटी इत्यादि रीतोऽपि स्थाने स्थाने वर्णनात्मकविषये दृष्टिपातं कृत्वा अनुसरणं कृतमस्ति। अतः पण्डिताः वदन्ति –

''अतिरेकेण पाञ्चालीरीतिः, अन्यपि रीतयोऽल्पाधिकभावेन परिलक्ष्यन्ते।''

1. गौड़ी–

कादम्बरीकाव्ये गौड़ीरीतेः प्रयोगः विन्ध्याटव्याः भयंकररूपस्य वर्णने लक्ष्यते – **'प्रेताधिपनगरीव सदा सन्निहित-मृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च।'** अपि च – **'च्युतचपलचाष पक्षश्रेणीशरित सृतयः, त्विषिमन्ययूखलतालात-प्लोष कल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफलस्फुलिङ्गा ङ्गराङ्किताङ्ग ....'।**

2. वैदर्भी–

वैदर्भीरीतेः उत्तमः प्रयोगः संलापेषु, प्रवचनेषु, संवादेषु अपि द्रष्टुं शक्यते। यथा कादम्बरीकाव्ये–**'लब्धापि दुःखेन परिपाल्यते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।'** पुनः पितृशोकविह्वलहर्षस्य अवस्थावर्णने बाणभट्टेन वैदर्भीरीतिः प्रयुक्ता अस्ति–**'श्रियं शाप इति, महीं महापातकामिति, राज्य रोग इति, भोगान् भुजङ्गा इति, निलयं निरयः इति बन्धु बन्धनमिति, जीवितमयश इति देहं द्रोह इति, कल्पतां कलंक इति, आयुर रम्यफलमिति, आहारं विषमिति, विषममृतमिति ....'।**

3. पाञ्चाली–

पाञ्चालीरीतेः प्रयोगः हर्षचरिते मन्दाकिनीवर्णने दृश्यते– **'अनेकनाकनायकनिकायकामिनीकुचकलशविलुलितविग्रहाम् ...... निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरागस्य ..... विक्रयवीथिमिव पुण्यपण्यस्य दत्तार्गलामिव नरकनगरद्वारस्य, नेमिमिव कृतयुगस्य सप्तसागररा-जमहिषीं मन्दाकिनीमनुसरन्तो मर्त्यलोकमवतातर'।**

ख. अलंकारः–

अलंकारप्रयोगे बाणस्य कौशलं प्रशंसनीयम्। कादम्बरी हर्षचरितकाव्ये च उपमा-दीपक-उत्प्रेक्षा-परिसंख्या-स्वभावोक्तिः इत्यादयः अलंकाराणां उत्तमः प्रयोगः अस्ति।

1. उपमा–

शुकनासादिवर्णने कविः उपमानां प्रयोगः कृतवान् अस्ति। 'युधिष्ठिर इव धर्मप्रभवः, वशिष्ठ इव दशरथस्य'। विन्ध्याटवीवर्णने श्लेषानुप्राणितउपमानाम् उदाहरणमस्ति– **'प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहित मृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च .... कात्यायनीव प्रचलित खड्गभीषणा रक्तचन्दनालंकृता च'।**

2. अनुप्रासः–

हर्षचरिते–**'ललाटलुलितचारूचामीकरचक्रमे'।** कादम्बरीकाव्ये–**'नवनालिनदलकोमलेन ....'।**

3. परिसंख्या–

कादम्बरीकाव्ये परिसंख्यालंकारस्य उदाहरणानि – **'यत्र च मलिनता हविर्धुमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु ....'।**

4. दृष्टान्तः –

'न हि अल्पीयसा शोककारणेन क्षेत्रीक्रियन्ते एवंविधा मूर्तयः'।

ग. गुणः –

समासबहुल ओजगुणः गद्यकाव्यस्य आत्मा अस्ति। काव्यादर्शकारः एवं कथयति–**'ओजः समासभूयस्त्वम् एतद् गद्यस्य जीवितम्'।** एतादृशं समासबहुलपदविन्यासं वयं बाणभट्टस्य काव्ये प्राप्नुमः। बाणस्य काव्ये गुणस्य विषये कथ्यते–**'बाहुल्येन माधुर्य्यं गुणः, प्रसादगुणोऽपि न विरलः।'** यथा–**'पूर्वापरजलनिधिविला ....'।**

घ. रसः – बाणभट्टः शृङ्गार-रौद्र-भयानक-वीभत्स-करुणरसः सन्निवेशेन निपुणः आसीत्। कादम्बरीकथाकाव्ये महश्वेत्याः दुर्लभदुःखस्य चित्रणं कृत्वा अतुलं विप्रलम्भशृङ्गाररसस्य प्रतिपादयति।–

'हा नाथ! जीवितनिवन्धन! आचक्ष्व, क्व मामेकाकिनी मशरणनामकरुण विमुच्य यासि?'

पुनः बाणभट्टः हर्षचरितस्य पञ्चमे उच्छ्वासे म्रियमाणं पितरं दृष्ट्वा हर्षस्य शोकं वर्णयति–

'अकाण्डे खल्वयं समुपस्तितो महाप्रलयो व्यभ्र इव वज्रपातः। सामान्योऽपि तावच्छोकः सोच्छ्वासं मरणम्, ...अनुपादिष्टौषधो महाव्याधिः, अनुपरतस्यैव नरकवासः ....अव्रणो वज्रसूचीपातः'। अतः वक्तुं शक्यते – **'रसभरेन समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जानोऽयम्।'**

ङ. शब्दचयने दक्षता –

बाणभट्टः शब्दचयनस्य अद्भुतप्रतिभायाः चिह्नं त्यक्तवान् अस्ति। बाणभट्टः स्वतन्त्रतया संस्कृतभाषायाः विशालशब्दकोषे प्रविष्टवान्। तस्य तत् किमपि वर्णनं शब्दसमृद्धे, अर्थवैभवे कल्पनावैभवे च अद्भुतम् अस्ति। तस्य कृतिषु भाषाव्यञ्जनयोः अद्भुतः संयोगः दृश्यते। बाणभट्टस्य वर्णनं

चित्रवत्। सः कस्मिन् अपि वर्णने सर्वदृष्टिकोणात् विषयं दृष्टवान्। सः वर्णने किमपि मुख्य गौण लघु बृहत् तुच्छातितुच्छं वस्तु न उपेक्षितवान्। अतः प्राच्यसमीक्षकाः वदति– **'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'।**

च. गद्य –

बाणभट्टस्य ग्रन्थेषु मुक्तकम्, उत्कलिका चूर्णकम् च– एते गद्याः प्रकाराः सन्ति। कविः चित्रात्मकवर्णनस्य स्थाने सामान्यतया उत्कलिकाशैल्याः आरम्भं कृत्वा चूर्णकं मूक्तकशैल्यां च समाप्तः भवति। अतः दण्डी वदति– **'यत्नेव च विचित्रवक्राक्तिविजम्भितं हर्षचरिते प्राचुर्येण भट्टबाणस्य विभाव्यते'।**

1. **मुक्तकम्–**मुक्तकम् समासरहितः रचना। आख्यानस्य अन्तं कविः समासरहितः मुक्तकशैलीम् अत्यन्तं सरलस्य संस्कृतभाषायाः प्रयोगं करति–**'शुन्यमिव, सुप्तमिव, मुषितमिव, विलक्षितमिव, छलितमिव, मुरछितमिव स्कन्धावार समाससाद'।**

2. **उत्कलिका–**उत्कलिकाशैली दीर्घः समासयुक्तः रचना। कादम्बरीकथाकाव्ये दृश्यते–**'कृताहारस्य वैशम्पायनविरह शोकाग्नेर्वहिरपि मन्तापदानाय-सहायकमिव कर्तुमुपरिस्थितश्चातिकष्टमष्टास्वपि दिक्षु युगवत्प्रसारितकरः करोम्ययत्नेनैव सतापमित्याकल्ययेव गगनतलमध्यमारूढ़े सवितार, आतपब्याजन रजतद्रव मिवोक्तप्तमुद्गिरत रश्मिजाले निर्भिद्य विशन्तीय्यिव शरीरमात पकणिकासु पुञ्जयमान प्राणिसघातासु तलप्रवेशात्संकटायमानासु पादपच्छायासु, बहिरालोकयितुं चाप्यपारषुतिन्य दृष्टिषु, ज्वलत्स्विवदिङ्मुखंषु, दुःस्पर्शासु मूमिषु निःसंचारेसु पथिषु, उत्थाय सरसप्ततीरककल्पित-मनवरताहज्वाला सारसेकनिवारितोष्णाकर किरणसम्पातम्आदिः स्थानस्थानेषु पवनबलकुटिलभि कोटिहोमघूमलेखाभि-रुल्लासन्तोभिवम गहिषविषाणकोटि भिरिवोल्लिख्यमानम् कृतान्तपाशबगुराभिरिवावेष्टय मानम् .....क्वचित्प्रतिशायितस्निग्ध बान्धवारा ध्यमानाहिर्बुध्नम्, क्वचिद्दोपि कादह्यमानकुलपुत्रक प्रसामद्यानमातृमण्डलम् आदि'।**

3. **चूर्णकम्** - चूर्णकमस्ति अल्पयुक्तः रचना। कादम्बय्या चूर्णकस्य उदाहरणम् - **'सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः ......।'** अपि च सन्ध्यावर्णने - **'अनेन च समयेन परिणतं दिवसः। नानोत्थितेन मुनिजनोनार्घविधि-मुपपादयता यः क्षितितले दत्तहस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्त चन्दनांग रागं रविरूददवहत्।'** पुनः च हर्षचरितस्य पञ्चमे उच्छ्वासे - **'पुत्र! नार्हसि एवं भवितुम्, भवद्विधा न हि अमहासत्त्वाः। महासत्त्वता हि प्रथमम् अवलम्बनं लोकस्य, पश्चात् राजवीजिता। ...... क्व भवान्? क्व वैक्लव्यम्'।**

छ. चरित्रचित्रणे निपुणता –

बाणभट्टस्य पात्रचित्रणं बहु उत्तमम् अस्ति। चन्द्रापीड़-कादम्बरी-शुकनास-महाश्वेता-पुण्डरीक-पत्रलेखा-पात्राणि कादम्बरीकाव्ये अतीव प्रवाहपूर्णतया व्यवस्थितानि सन्ति। हर्षचरितम् आख्यायिकायां पुष्यभूतिगोत्रस्य राजाप्रभाकरवर्धनः, राज्ञीयशोमती, राज्यवर्धनः, राजश्री, तदतिरिक्तं वैद्यकुमारादि चरित्रचित्रणम् असाधारणकौशलस्य कृते प्रसिद्धम् अस्ति।

1. **महाश्वेता वर्णनम् –**

'क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्'।

2. **चाण्डालकन्या वर्णनम् –**

'असुगृहीतामृतापहरणकृत-कपटपटुवेशविलासिनी-वेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, संचारिणीमिवेन्द्र-नीलमणिपुत्रिकाम्, आगुल्फावलम्बिना नीलकञ्चुकेनाच्छन्न-शरीरम्, उपरिरक्तांशु-कविरचितावगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतित सन्धातपाम् एककर्णावसक्तदन्त-पत्रप्रभाधवलि-तकपोलमण्डलाम् उद्यदिन्दुकिरणच्छुरितमुखीमिव विभावरीम्।'

3. **पुण्डरीकं प्रवोधयति कपिञ्जलः कथयति –**

'सखे पुण्डरीक! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। ...... क्व ते तद् धैर्यम्। क्वासाविन्द्रियजयः। क्व तद् वशित्वं चेतसः। क्व सा प्रशान्तिः। ..... सर्वथा निष्फला प्रज्ञा। निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासो, निरर्थकः संस्कारो, निरुपकारको गुरूपदेशविवेको, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता।'

4. **पितृविह्वलहर्षस्य शोकस्य वर्णनम् -**

'श्रियं शाप इति, महीं महापातकामिति, राज्य रोग इति, भोगान् भुजङ्गा इति, निलयं निरयः इति बन्धु

बन्धनमिति, जीवितमयश इति देहं द्रोह इति, कल्पतां कलंक इति, आयुर रम्यफलमिति, आहारं विषमिति, विषममृतमिति ......'।

5. कादम्बरी दशावर्णनम् –

'अथ तस्याः कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, सम्भ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशमभवत्। उरुकम्प एव गति करोध, नूपुररवाकृष्टहंसमण्डलमपयशो लेभे। निःश्वासप्रवृत्तिरेवांशुकं चलं चकार, चामरानिलो निमित्तानां ययौ। अन्तःप्रविष्टचन्द्रापीड़ लोभेनैव पपात हृदये हस्तः, स एव करः स्तनावरणव्याजो बभूव'।

ज. प्रकृतिवर्णनम् –

महाकविबाणभट्टः प्राकृतिकदृश्यानां वर्णने निपुणः आसीत्। कादम्बरी इत्यस्य प्रकृतेः वर्णनं अतीव विचारणीयं सजीवं च अस्ति। केचन महकव्याः प्रकृतिरूपचित्रणमात्रे कुशलाः सन्ति, केचन प्रकृतेः भयानकतयाः वर्णने चतुराः सन्ति। परन्तु महाकवि बाणभट्टेन प्रकृतेः मधुराणि घोराणि च दृश्यानि चित्रितानि सन्ति। यथा सः विन्ध्याटवीवर्णने प्रकृतेः क्रूरं चित्रं रचयति तथा महर्षिः जाबाली–आश्रमस्य वर्णने सात्विक–स्पन्दनं निर्वहति – यः स्वभावतः सुन्दरम्। बाणभट्टस्य काव्ये ऋतुवर्णनम् अपि अस्ति। प्रदोषः, चन्द्रोदयः इत्यादयः विविधाः प्राकृतिकाः दृश्याः कवीनां सम्यक् चित्रिताः सन्ति। यथा –

1. हर्षचरितकाव्ये अच्छोदसरोवरवर्णनम् –

अत्र चन्द्रापीड़स्य अच्छोददर्शनविषये मन्तव्यम् – **'अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्। आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः। दृष्टा आह्लादानामवधिः। वीक्षिता मनोहराणां सीमान्तलेखा'।**

2. कादम्बरीकाव्ये प्रभातवर्णनम् –

'एकदा तु प्रभातसध्यारागलोहिते गगनतले कमलिनीमधुरक्तपक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनी-पुलिनादाप-रजलेनिधितलमवरति चन्द्रमसि, परिणतरङ्गरोम-पाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले गजरुधिररक्तहरि-सटालोमलोहिनिभीः आतप्तला-क्षिकतन्तुपाटलाभः आयामिनीभिरशिशिरकिरणदीधि-तिभिः पद्मरागशलाका- सम्मार्जनीभिरिव समुत्सार्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे'।

3. कादम्बरीकाव्ये सन्ध्यावर्णनम् –

कादम्बरी कथामुखे जाबालितपोवने सन्ध्यावर्णनम् – **'क्वापि विहस्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनु-रिवकपिला परिवर्तमाना सन्ध्या तपोधनैरख्रश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोकविधुरा कमलमुकुल-कमण्डलुधारिणी हंसपतिदुकूलपरिधाना मृणालधवल-यज्ञोपवीतिनी मधुकरमण्डलाक्षवलयमुद्वहन्ती कमलिनी दिनपतिसमागमव्रतमिवाचरत्। अपरसागराम्भसि पतिते दिवाकरे वेगोत्थितमम्भःसीकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्। अचिराच्च सिद्धकन्यका विक्षिप्तसन्ध्यार्चनकुसुमशब लमिव तारकितं वियदराजत। क्षणे चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्वविप्रकीरणैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः'।**

4. हर्षचरितकाव्ये ग्रीष्मकालस्य उष्णतावर्णनम्–

हर्षचरितस्य द्वितीयोच्छ्वासे ग्रीष्मकालस्य भीषणं उष्णता गौड़ीरीतिमाध्यमेन द्रष्टव्यः – **'च्युतचपलचाष पक्ष-श्रेणीशरित सृतयः, त्विषिमन्ययूखलतालातप्लोष कल्माषवपुष इव स्फुटितगुञ्जाफलस्फुलिङ्गा ङ्गराङ्किताङ्ग ....'।**

5. वसन्तवर्णनम् - **'अशोक तरुताडनारणितरंगणो मणिनूपुरझङ्कार सहस्र मुखेषु-सकलजीवलोके हृदयानन्ददायकेषु मधुमासादिवसेषु'।**

6. सरोवरस्वच्छतावर्णनम् - कादम्बरीकथाकाव्ये दृश्यते - **'अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनम्-फलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः दृष्टः आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षिता मनोहराणां सीमान्त-लेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजनननानां परिसमाप्तिः, विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः'।**

7. जाबालिआश्रमस्य सुन्दरवर्णनम् - **'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।'**

8. वातावरणस्य वर्णनम् – तावरणस्य सूक्ष्म सठिकवर्णनम् - **'अथ चलति महीपातवन्योन्यमतिरभ ससञ्चलनचालिताङ्गपत्रभङ्गकर-कोटिपाटितानेकपटानाम्, आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम्, असंस्थलोल्ल सितकुङ्कुमपटवासधूलिपटलपिञ्जरीकृतदिशामालोलमा लतीकुसुमशेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्धावलम्बिभिः**

कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्ड-स्थलानाम्, गमनप्रणाम-लालसानाम्, अहमहमिकया वक्षःस्थलप्रेङ्खालितहार-लतानाम्, उत्तिष्ठतामासीद-तिमहान् सम्भ्रमो महीपतीनाम्'।

झ. सूक्तयः– संस्कृतगद्याकाशे बाणभट्टस्य गद्यकाव्यः उत्कृष्टोऽस्ति। कादम्बर्याम् हर्षचरिते च मानवजीवनसम्बन्धिनाः सूक्त्याः प्रसिद्धोऽस्ति। कादम्बर्याः शुकनासोपदेशे गुरूपोदेशः, लक्ष्मीस्वभाववर्णनम्, राजास्वभाववर्णनम् च अत्युपयुक्तं प्राप्यते।

1. शुकनासोपदेशे लक्ष्मी चञ्चला कथ्यते। अपि च – **'तिर्यक् चलति। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। ......'**। अमृतसहोदराऽपि कटुविपाका।

2. शुकनासोपदेशे प्राचीनकाले राजास्वभावः किमर्थमासीत् – अयम् परिलक्षितः भवति। अपि च – **'राजाज्ञाः परिपालयति प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनोभयात्'।**

3. अपि च – **'यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्भितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः'।**

4. प्राचीनकाले ये ये दुर्गुणानि सत्गुणानि वा लक्ष्म्याः ये ये आसन् इदानीमपि सन्ति–

'न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।'

5. **अत्यधिकः अमानुषीशक्तिः, अप्रतिमसौन्दर्यम्, अत्यधिकः राजशक्तिः अत्यधिकः धनसम्पत्तिश्च एकः एकः अनर्थकारी किमुत समवायः। यथा– 'गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयानामेकैकमप्येषा-मायतनम्, किमुत समवायः'।**

6.पञ्चमोच्छ्वासे हर्षचरिते बाणभट्टः कथयति यत् – **'लोके हि लोहेभ्यः कठिनतराः खलु स्नेहमया बन्धनपाशाः, यद् आकृष्टाः तिर्यं च अपि एवम् आचरन्ति'** इति ।

7. अपि च – **'परिवर्त्तमान एकः कालः शैलानिवानन्तः।'**

8. अपि च – **'दुःखदग्धानां भूतिरमङ्गला चाप्रशस्ता च निरुपयोगा च भवति।'**

उपसंहारः –

वर्तमानयुगं विस्तारयुगं न, अपि तु न्युनीकरणयुगम्। बाणभट्टयुगे साहित्यपिपासाः जनाः भोजनं निद्रां विना काव्यरसाः पिबन्ति स्म। यथा– ''कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।'' कविः बाणभट्टः विदग्धपाठकसमाजस्य रुचिं मानसिकतां च चिन्तयित्वा साहित्यस्य निर्माणं कृतवान्। अतः सः स्वस्य असाधारणप्रतिभायाः कालस्य आवश्यकतां पूरितवान्। अतः एव गोवर्द्धनाचार्यः स्वस्य आर्यासप्तशत्यां बाणप्रशंसया वदति –

''जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रगलभ्यमधिकमाप्तुं बाणी बाणो वभूवेति।।''

बाणभट्टस्य शैल्याम् सूक्ष्मनिरीक्षणशक्तिः, अलंकृतवर्णनप्रणाली, प्रकृष्टप्रकृति-प्रेमवर्णनम्, अद्भूतचरित्रचित्रणवर्णनम्, अलंकारवर्णनम्, रसपरिपाकवर्णनम्, उत्कृष्टउर्वरकल्पनावर्णनम्, अजस्रशब्दराशिवर्णनम्, मौलिकार्थस्योद्भावना इत्यादयः समग्ररूपेण परिलक्ष्यते। बाणभट्टस्य रचनाशैल्याम् उत्कलिकाशैली, आविद्धशैली, चूर्णकशैल्याशः अलंकारनिरूपणम्, रसनिरूपणम्, प्रकृतिचित्रणः, चरित्रचित्रणः सम्यकरूपेण वर्णिताः सन्ति। बाणभट्टस्य सूक्तायाः वैदर्भीमार्गः अतिप्रसिद्धोऽस्ति। कविराज माधवभट्टः राघवपाण्डवीय-ग्रन्थे कथयति यत् –

''सुबन्धु बाणिभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्ग निपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा।।''

अपि च –

''शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणस्योक्तिषु सा यदि।।''

कविचन्द्रदेवः बाणस्य रचनाम् श्लेषः, रसाभिव्यक्तिः, अलंकारः, अर्थनिरूपणम्, कथावर्णने च सर्वेषु दृष्टेषु श्रेष्ठं कथयन् कविताविन्ध्याटव्या पञ्चाननः (सिंहः) अकथयत्–

''श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽदृ लङ्कारे
कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आ सर्वत्रगभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारीकविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।।''

बाणस्य असाधारणकविप्रतिभायाः विषये प्राच्यपाश्चात्यसमीक्षकाः अतीव मुखराः सन्ति। धनपालः

वदन्ति – **'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्'** अर्थात् बाणः एकः सर्वान् कवीन् नाशयति स्म। एवं प्रकारेण बाणस्य रचना गुणपूर्णा इति दृष्टम्। अतः वक्तुं शक्यते – **'बाणोच्छिष्टं जगतसर्वम्'।**

Research Scholar
Dept. of Sanskrit, Pali & Prakrit
Visva Bharati University
Santiniketan, WB- 731235

संदर्भ सूची

1. बाणभट्टः, हर्षचरितम्य सम्पादक-चक्रवर्ती, डॉ. अलकाय संस्कृत पुस्तक भाण्डार, 2002
2. बाणभट्टः, कादम्बरीय सम्पादक- शास्त्री, श्री कृष्णमोहनय चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसीय 1982
3. खण्डेलवाल, डॉ. जयकृष्णप्रसाद, संस्कृत साहित्य का इतिहास; साहित्य भाण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, मेरठ; 1786
4. आचार्य, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास; प्रकाशक-रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद; 2004
5. त्रिपाठी, डॉ. राधावल्लभ, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; 2001
6. बाणभट्टः, हर्षचरितम्; व्याख्याकार- श्रीमोहनदेवपन्तः, प्राचार्यः; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
7. बाणभट्टः, कादम्बरी-शुकनासोपदेशः; व्याख्याकार- शास्त्री, रामपालय चौखम्बा पाब्लिशर्स, वाराणसी
8. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास; शारदा निकेतन, वाराणसी-5, 1997

भवभूति के समानधर्मा आलोचक

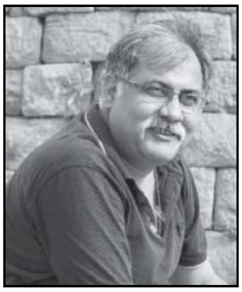

डॉ. अनिल कुमार

हिंदी आलोचना के इतिहास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल राजनीति का गाँधी-काल है। वैज्ञानिक प्रगति तथा इस प्रगति से उद्भूत नवीन चेतना का दबाव भारतीय मानस पर पड़ रहा था। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय मध्यकालीन चेतना को जगा दिया था। यह संभवत: पहला अवसर था कि जब भारतीय मानस एकबारगी समूचे राष्ट्र की चिंता से आन्दोलित हुआ था। पहली बार किसी विदेशी सत्ता के प्रति गहरा असंतोष पैदा हुआ था। यूँ तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल का साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश तो कालानुसार भारतेन्दुयुग में ही हो जाता है परन्तु उनकी सभी परिपक्व और महत्वपूर्ण कृतियाँ 1920 के बाद प्रकाशित हुई थीं। ''सन् 1919 से 1929 तक, जलियांवाला बाग कांड से लेकर रावी तट पर पूर्ण स्वाधीनता की प्रतिज्ञा तक, भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण काल है। शुक्लजी का अधिकांश आलोचनात्मक कार्य इसी दौर में सम्पन्न हुआ था। सन् 1920 में 'विश्वप्रपंच' की भूमिका, सन् 22 में 'बुद्ध-चरित' की भूमिका, सन् 23 में 'तुलसीदास', सन् 24 में 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका, सन् 25 में 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका, सन् 29 में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', इन सबके साथ रस-मीमांसा और अनेक निबन्ध।''[1] शुक्लजी अपनी इन आलोचनात्मक भूमिकाओं तथा इतिहास में अपना काल-चिंतन किस प्रकार अनुस्यूत कर देते हैं, यह देखने योग्य है। आचार्य शुक्ल का यह समय अत्यंत बेचैन समय है। प्राचीन सामंतवादी गढ़ ढह रहे थे और पूंजीवाद का जन्म हो चुका था। ''भारतीय भाषाओं में उपलब्ध आधुनिक चिंतन का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि परम्परा के नाम पर संस्कृति काव्यशास्त्र और आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य चिंतन को अनायास ही उसके प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है।''[2] अंग्रेजों के आने से भारत में आधुनिकीकरण का ऐसा रूप उभर कर आया जिसने भारतीयता को एकबारगी जड़विहीन कर दिया। जड़विहीन होने के कारण ही वे जड़ की तलाश कर रहे थे। यही कारण है कि भारतेन्दु धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास खोज रहे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए साहित्य की जमीन तलाशना प्रारंभ करते हैं। अपनी आलोचनात्मक कृतियों के पूर्व वे आलोचना की जमीन तैयार करने में लगे थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी काल में उनके प्रकाशित निबंधों तथा अनुवाद को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। ''इन लेखों को पता नहीं क्यों आलोचक और विद्वान मनोवैज्ञानिक लेख कहते आए हैं जबकि इनमें कोई मनोवैज्ञानिक गुत्थी नहीं सुलझायी गयी है। ये लेख दरअसल मानव-राग-विराग का वह ईंट-गारा-लोहा-लक्कड़ है जिनसे साहित्य की इमारत का निर्माण होता है।''[3] ये निबंध शुक्लजी के साहित्यालोचन के आधार हैं। जड़हीन शास्त्रीयता को शुक्लजी ने अपनी व्यावहारिक बौद्धिकता से सार्थकता प्रदान की। उनकी 'रस-मीमांसा' को सामान्यतया शास्त्र के रूप में देखा जाता है परन्तु 'शास्त्रीयता की इस मोटी परत को हटाकर शुक्लजी के रसवाद को जरा उलटिए-पलटिये तो उसमें व्यक्ति और समाज के अंतर्जगत और बाह्यजगत, रूप और वस्तु, अनुभूति और विचार जैसी मानव-जीवन की हमारी परिचित इकाइयों को ही एक नये समीकरण में कसने की सृजनात्मक

उठान दिखाई देगी।'[4] शुक्लजी का युग सामाजिक और राजनीतिक रूप से उथल-पुथल का युग है। जो विवेक और ज्ञान भारतेन्दुयुग के लेखकों एवं कवियों को सहज ही प्राप्त था, शुक्लजी उसकी बौद्धिक व्याख्या करते हैं। शुक्लजी के समय की विचारधारा जन की विचारधारा बनने की ओर अग्रसर है। ''कोऊ नृप होइहिं, हमें का हानि'' वाली मानसिकता भी गांधीजी के आगमन से टूट रही थी। स्वभावतः साहित्य को जिन्दा रहने के लिए समाज से खाद-पानी की जरूरत पड़ी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बौद्धिक निर्माण का काल द्विवेदी युग है। भारतेन्दुयुग की चेतना द्विवेदीयुग में विकसित हो रही थी। द्विवेदीजी ने अपने युग में साहित्य को समाज तथा विज्ञान से जोड़ने में अप्रतिम योगदान दिया। ''साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने (द्विवेदीजी) तय कर लिया था कि हिन्दी गद्य का विकास करना है, आधुनिक हिन्दी को विविध विषयों के विवेचन का माध्यम बनाना है, कविता में ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करना है।''[5] एक ऐसे दौर में जब साहित्य में जनता अपना अस्तित्व स्थापित कायम कर चुकी थी, साहित्य को स्थायित्व प्रदान करनेवाले ''दर्शन'' की जरूरत थी। अपने तमाम ग्रामीण संस्कार और पाश्चात्य ज्ञान को लेकर आचार्य शुक्ल इस चुनौती को स्वीकार करते हैं।

उन्नीसवीं सदी के प्रायः सभी इतिहास ग्रंथ संग्रह ही थे। फ्रांसीसी लेखक ''गार्सा-द-तासी'' ने ''इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी'' (1839 एवं 1846) में सत्तर कवियों का संग्रह वर्णानुक्रम से किया तो ''शिव सिंह सरोज'' (1877) में ''शिव सिंह सेंगर'' ने एक हजार कवियों का वृत्त तैयार किया। ''ग्रियर्सन'' ने ''माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव नॉर्दर्न हिन्दोस्तान'' (1889) में ''शिवसिंह सरोज'' की ही सामग्री को कालक्रमानुसार इतिहास का रूप देने की कोशिश की। बीसवीं सदी में आकर हमारी चेतना ने नया आकार ग्रहण किया राष्ट्रीयता की भावना ने भारतीय मानस में जड़ पकड़ ली थी। विदेशी सत्ता के समक्ष अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की आकांक्षा प्रबल हुई। ''वर्तमान तो उनका दास था, इसलिए अतीत का सहारा लिया गया। स्वतंत्रता के संग्राम में इतिहास का उपयोग पहली बार करने की चेष्टा की गयी। इस प्रवृत्ति ने एक ओर अतीत के छिपे रत्नों को खोजने के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर इन रत्नों को पुराने-से-पुराना सिद्ध करने तथा विदेशी प्रतिभाओं की तुलना में गौरवशाली दिखाने का प्रोत्साहन दिया। इस भावना ने पूर्ववर्ती इतिहासों के तथ्यपरक कंकाल को त्वचा से ढंककर आकार प्रदान किया।''[6] नागरी प्रचारिणी सभा ने इस आकांक्षा को मूर्त किया और अपने अथक प्रयास से (1900 ई. से 1911 तक) आठ भागों में अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। इन्हीं रिपोर्टों को आधार बनाकर मिश्रबंधुओं ने ''मिश्रबंधु विनोद'' (1913) नाम से तीन भागों में लिखा। ये सभी इतिहास ग्रंथ सिर्फ संकलन मात्र थे। इनके द्वारा यह तो जाना जा सकता था कि किस कवि ने कौन-सी पुस्तक लिखी तथा उसका विषय क्या है। परन्तु इन इतिहासों से उस समय के समाज की प्रवृत्तियों का ज्ञान कठिन था। कवि विशेष के समय के समाज का क्या और कितना प्रभाव साहित्य पर पड़ा इसे सर्वप्रथम आचार्य शुक्ल ने इतिहास में दर्शाया। इतिहास में कवि परिचय के साथ उसकी आलोचना का प्रारंभ आचार्य शुक्ल ने किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में आलोचना की भाषा का काफी परिष्कार हुआ था। द्विवेदीजी ने वास्तव में भाषा को ठीक करने पर अधिक ध्यान दिया। विशुद्ध आलोचना के रूप में मिश्र-बंधुओं की ''हिंदी नवरत्न'' का प्रकाशन हुआ, जिसमें देव को सबसे बड़ा कवि घोषित किया गया। इसी समय में देव बड़े या बिहारी का भी झगड़ा प्रारंभ हुआ था। तदुपरांत तुलनात्मक समीक्षा का दौर ही चल पड़ा। आलोचना लगभग तथ्यात्मकता की हद तक आ पहुँची थी। उस समय अर्थ-क्रीड़ा पर ज्यादा बल दिया जाता था। इसमें शुक्लजी के समकालीन थे - लाला भगवान दीन, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔंध, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। इन्होंने सूर, तुलसी, कबीर की विस्तृत आलोचना की। वस्तुतः आलोचना की भाषा परम्परा के तत्वों से आबद्ध थी। फलतः यह भाषा भावात्मक ज्यादा थी, विचारात्मक कम। 'भाव से विचार तक आने की प्रक्रिया के बीच में तथ्य एक पड़ाव है और शुक्लजी के ठीक पहले का समीक्षा-कर्म इस पड़ाव पर अटका नजर आता है। विचार के ग्रहण में परम्परा से अधिक मौलिकता और उद्भावना सहायक होती है, तथ्य इस स्तर पर पहुँचानेवाली सीढ़ी है। उधर भाव से तथ्य तक पहुँचने में परम्परा किसी-न-किसी रूप में साथ-साथ चलती है तथ्य के नये ग्रहित संसार में वह परम्परा विषय होती है। शुक्लजी के पूर्ववर्ती समीक्षा इसी विषय पर केन्द्रित

समीक्षा थी जिसमें तथ्य के आवरण से लिपटी परम्परा थी, विचार की ओर खुलती सर्जनात्मकता नहीं। इस समीक्षा का तथ्य परम्परा का तथ्य था।''[7] आलोचना यहाँ गुण-दोष विवेचन था। यहाँ रस, रीति, अलंकार आदि का निरूपण देखना ही ज्यादा महत्वपूर्ण था। इसे सीधे काव्यशास्त्रीय विवेचन कहा जा सकता है। एक ओर जहाँ साहित्य में समाज, व्यक्ति अपनी पूरी ऐतिहासिक परिस्थितियों में वर्णित हो रहा था वहीं आलोचना बिल्कुल शास्त्रीय थी। 'यह सब आलोचना अधिकतर बहिरंग बातों तक ही रही। भाषा के गुण-दोष, रस, अलंकार आदि की समीचीनता, इन्हीं सब परपंरागत विषयों तक पहुँची। स्थायी साहित्य में परिगणित होनेवाली समालोचना जिसमें किसी कवि की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषता दिखायी जाती है, बहुत ही कम दिखाई पड़ी।'[8] शुक्लजी के पूर्ववर्ती आलोचना की यही स्थिति है। यहाँ शुक्लजी आधुनिक आलोचना को परिभाषित करने का प्रयास भी करते दिखते हैं। आलोचना के गद्य में आंतरिक उन्मुक्तता तो है पर वह परंपरा के बोझ से लदा हुआ है। आलोचना के गद्य का बाहरी परिष्कार तो द्विवेदजी कर देते हैं पर उसका आंतरिक परिष्कार होना बाकी था। शुक्लजी के समकालीनों में जो आलोचना प्रचलित हो रही थी ''केशव की काव्य-कला'' (कृष्णशंकर शुक्ल), ''गुप्त जी की काव्यकला'' (प्रो. सत्येन्द्र), ''पद्माकर की काव्य साधना'' (गंगा प्रसाद सिंह) आदि 'कलाओं' और 'साधनाओं' का ताँता बँध गया था। ये समालोचनाएँ अपेक्षाकृत ज्यादा अंतर्वृत्ति थीं। इस प्रकार की समीक्षाएँ 'अध्ययन', 'चिंतन' और 'प्रकृत' समीक्षा का रास्ता हैं। इसे शुक्लजी प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा कहते हैं। इसका उद्गम पश्चिमी प्रभाव से होता है। वैसे पश्चिम से हमारा आमना-सामना उन्नीसवीं सदी में ही आरंभ हो चुका था पर हिन्दी कविता अपनी जातीय परंपरा के कारण इससे बचती चली गयी थी। शुक्लजी का काल छायावाद का उत्कर्ष काल भी था। यह राष्ट्रीयता के निर्माण और अंतर्राष्ट्रीयता के विस्तार के बीच का काल था। पुराने सामंतवादी ढाँचे में दरार पड़ चुकी थी परन्तु ढहा नहीं था। पूँजीवाद का आगमन हो चुका था परन्तु उसकी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट नहीं थीं। गाँधीजी के आगमन से समाज सुधार का कार्यक्रम जन-जन तक पहुँच चुका था। ध्यान देने की बात यह है कि पुराना सब कुछ हिल गया था परन्तु अभी भी पुरानी कसौटियाँ बरकरार थी। हृदय-परिवर्तन अब भी समाज परिवर्तन का कारगर उपाय था। मूल्य-व्यवस्था अब भी ऐसी थी कि नए एवं पुराने दोनों को जगह मिल सके। पश्चिम-परिचय ने इसे और असंतुलित बना दिया था। शुक्लजी की चिंता इसी असंतुलन को लेकर ज्यादा थी। मूल्य-चेतना के स्खलित हो जाने का हर ज्यादा था। तथ्य और भाव के बीच टूटती हुई सरणियों में सामंजस्य स्थापित करना था। 'आचार्य शुक्ल का काम था एक ओर भाषा की वस्तुमत्ता को भाववादी प्रवाह में बह जाने से बचाना तो दूसरी ओर भाषा के ज्ञानकोष में सूक्ष्म भावसत्ता का संचार और प्रसार।'[9]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के लिए जिस शब्दावली का चयन किया वह भारतीय थी। परन्तु उसकी परिभाषा उन्होंने खुद की। पश्चिम के बढ़ते प्रभाव और उसका अंधानुकरण तथा पूरब की गतिहीनता दोनों ओर शुक्लजी सजग और सतर्क दृष्टि से देखते हैं। हम पहले कह आए हैं कि परिवर्तन के वे कायल थे पर वह परिवर्तन थोपा हुआ न हो, सहज हो। यही बात साहित्य में भी है। पश्चिम से उन्हें परहेज नहीं है परन्तु वे बिना ठोके-बजाये उसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे। वे काव्य को कला मानते हैं परन्तु वह केवल कला के लिए नहीं। किसी भी कला को वे जीवन से जोड़कर ही देखते थे। काव्य को वे जीवन की ही अभिव्यक्ति मानते हैं। यह प्रवृत्ति अव्यक्त ईश्वर की अभिव्यक्ति है परन्तु कविता को वे इस अभिव्यक्ति की ही अभिव्यक्ति मानते हैं। अज्ञात के प्रति जिज्ञासा हो सकती है परन्तु उसकी लालसा को वे सिर्फ वाग्जाल ही मानते हैं। ''आचार्य शुक्ल ने कलावाद के विरोध के साथ व्यक्तिवाद का भी विरोध किया था क्योंकि उनकी दृष्टि में व्यक्तिवाद ही कलावाद का मूल स्रोत है। इसलिए आचार्य ने व्यक्ति के विकल्प में लोक, को, व्यक्तिधर्म के विरुद्ध लोकधर्म को, और व्यक्ति हित के ऊपर लोकमंगल को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था।''[10] शुक्लजी ने जो सबसे महत्वपूर्ण काम किया वह था साहित्यिक रूचि का बदलाव। उनके पूर्व और समकालीन आलोचना का मानदंड कमोबेश रीतिवादी ही था। शुक्लजी ने रीतिवाद को स्थानांतरित कर भक्ति साहित्य को स्थापित किया। भक्ति साहित्य उस समय तक के साहित्य में लोक के अधिक करीब है। इस प्रकार साहित्य में लोक का महत्व स्थापित कर शुक्लजी ने साहित्य का जनतंत्रीकरण कर दिया। भक्त कवियों के 'परम सत्ता' में लीन होने की

अवस्था को शुक्लजी ने 'लोक सत्ता' में लीन होने की अवस्था में बदल दिया। कविता शुद्ध अनुभूति पर आधारित हो गई। अत: 'काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता : बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है' और इसीलिए कि 'यह बिम्ब ग्रहण निर्दिष्ट, गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।'[11] मनुष्य का जो अनुभूति-सत्य है वह प्रामाणिक कैसे हो सकता है। जिसे मनुष्य ने देखा परखा न हो, जिससे उसका कभी किसी तरह का संबंध बना ही न हो उसका वर्णन वह कर ही नहीं सकता। वह चाहे भावना के स्तर पर हो या तथ्यों के। शुक्लजी के यहाँ भावना ही तथ्य है जो प्रामाणिक अनुभव से सिद्ध है। जिस प्रकार गाँधीजी अपने कर्म-क्षेत्र में समाज के हित के लिए संघर्षरत थे परन्तु उनका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही है, वैसे ही शुक्लजी ब्रह्म की सत्ता को स्वीकारते हुए भी मूर्त प्रकृति, व्यवहार में ही कविता की साधना मानते हैं।

रहस्यवाद का विरोध शुक्लजी यों ही नहीं करते हैं। कवि जब तक प्रकृति के रहस्यों के प्रति जिज्ञासु है तब तक तो ठीक है लेकिन ज्यों ही अव्यक्त, अभौतिक और अज्ञात की अभिलाषा व्यक्त होने लगती है वह निरी बकवास हो जाती है। ''परिचय के बिना प्रेम हम नहीं मानते। प्रेम के लिए परिचय चाहिए चाहे पूरा, चाहे अधूरा।''[12] जब कवि या साधक अगोचर, अव्यक्त, निर्गुण से प्रेम स्थापित करने लगता है तब शुक्लजी उसे कविता के क्षेत्र से बाहर मानते हैं, साम्प्रदायिक मानते हैं, क्योंकि ''ज्ञान ही भावों के संचार के लिए मार्ग खोलता है। ज्ञान-प्रसार के भीतर ही भावप्रसार होता है।''[13] जिसका हम अपने ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव नहीं कर सकते उसकी भावना संभव नहीं। यह अकारण नहीं है कि शुक्लजी कबीर को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इसी कारण शुक्लजी पर हिन्दूवादी होने का आरोप भी लगाया जाता है। यह ठीक है कि शुक्लजी धर्म को महत्व देते हैं और हिन्दू धर्म को श्रेष्ठ भी मानते हैं। पर उनका धर्म, उनका हिन्दूपन शास्त्रीय नहीं है। वे शास्त्रों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। परम्परा का आधुनिकीकरण करने का उद्देश्य ही लेकर शुक्लजी आगे बढ़े थे। इसी क्रम में इन्होंने कविता को जीवन से जोड़ दिया। धर्म उनके लिए जीवन-मूल्य है क्योंकि ''संसार से तटस्थ रहकर शान्ति-सुखपूर्वक लोक-व्यवहार-संबंधी उपदेश देने वालों का उतना महत्व हिन्दू-धर्म में नहीं है, जितना संसार के भीतर घुसकर उसके व्यवहारों के बीच सात्विक विभूति की ज्योति जगानेवालों का है। हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वर के अवतार नहीं माने गए हैं। अपने जीवन द्वारा कर्म-सौन्दर्य संघटित करने वाले ही अवतार माने गए हैं।''[14] इसीलिए शुक्लजी को तुलसी और तुलसी के राम प्रिय हैं, जायसी प्रिय हैं, कबीर नहीं। वे राम जो साक्षात् सबरी का जूठा बेर खाते हैं, निषाद को 'भरत सम भाई' कहते हैं, वे नहीं जिनका दर्शन कबीर कुंडलिनी जागृत कर करते हैं। यही कारण है कि जायसी और सूर का विरह वर्णन शुक्लजी को ज्यादा आकर्षित करता है।

शुक्लजी की सभी वृत्तियों से मनुष्य का जो रूप उभरता है वह है लौकिक। वे धार्मिक या तत्ववादी दृष्टि से जीवन, जगत और मनुष्य की व्याख्या नहीं करते। वे उसका विरोध करते हैं। जबकि ''प्रत्येक देश में काव्य का प्रादुर्भाव इसी जगत् रूपी अभिव्यक्ति को लेकर हुआ। इस अभिव्यक्ति के सम्मुख मनुष्य कहीं प्रेमलुब्ध हुआ, कहीं दुखी हुआ, कहीं क्रुद्ध हुआ, कहीं डरा, कहीं विस्मित हुआ और कहीं भक्ति और श्रद्धा से उसने सिर झुकाया।''[15] यहाँ स्पष्ट देखा जा सकता है कि यह सबकुछ लौकिक व्यापार है। लौकिक व्यापार देश-काल की सीमा में ही घटित होता है। शुक्लजी विभाव को ही भाव का प्रकृत आधार मानते हैं। विभाव बदलता रहता है। ''इसलिए विभाव की साधना से ही भाव-साधना की जा सकती है। विभाव की साधना इतिहास के भीतर की साधना है।''[16] भौतिकता, विज्ञान, समाज और इतिहास शुक्लजी के सरोकार के विषय हैं लेकिन वैज्ञानिक तार्किक प्रणाली में बद्ध होकर शुक्लजी के लिए एकांगी हो जाते हैं। वाद के रूप में शुक्लजी अध्यात्म को भी अस्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक प्रक्रिया में जरूरत के रूप में अपना गया अध्यात्म शुक्लजी को मान्य है। पूर्व से गया हुआ अध्यात्म यूरोप, अरब आदि में अपनाया गया, उसकी शुक्लजी प्रशंसा करते हैं। ''सामाजिक और राजनीतिक प्रेरणा के बिना हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ अब मरी हुई-सी चीज हैं। राजनीतिक प्रेरणा होने पर उनमें संबंध और सार्थकता की प्रतीति होने लगती है।''[17] शुक्लजी हिन्दी में छायावाद (रहस्यवाद) की अनिवार्यता नहीं मानते। इसे वे 'मानसिक गुलामी' कहते हैं। नवीनता के नाम पर अन्धानुकरण। वस्तुत: शुक्लजी की मानसिकता पुनर्जागरण की मानसिकता है। इसकी केन्द्रीय व्याकुलता है - स्वतंत्रता। ''रहस्यवादी काव्य के विरोध का

उनका आधारभूत कारण है उसकी सामाजिक भूमिका का नहीं होना। शुक्लजी यहाँ रहस्यवाद को ऐतिहासिक क्रम में खारिज करते हैं वहीं अध्यात्मवाद को स्वतंत्र चेतना विहीन मानकर खारिज करते हैं। अध्यात्म को वे ठीक-ठिकाने की वस्तु नहीं मानते। ''योरप ने कहा - भारतवासी बड़े आध्यात्मिक होते हैं, उन्हें भौतिक सुख-समृद्धि की परवाह नहीं होती। बस, दिखा चले अपनी आध्यात्मिकता।''[18]

रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धति निश्चित रूप से वैज्ञानिक नहीं है, जैसा कि हम आज माँग करते हैं। उनके निष्कर्ष नितांत 'सामान्य बोध' (कॉमन सेन्स) पर ही आधारित हैं। शुक्लजी का वर्तमान गुलामी की पीड़ा से पीड़ित था, वैज्ञानिक वादों पर बहस छिड़ चुकी थी। विज्ञान को स्वीकारने की प्रक्रिया को शुक्लजी ने आगे बढ़ाया। हमारे यहाँ विज्ञानवाद के रूप में ही अभी आया था। अस्तु वह जीवन-पद्धति के रूप में न तो स्वीकृत था और न ही अस्वीकृत। उसकी परीक्षा चल रही थी। मंथन हो रहा था। गुलामी की पीड़ा और अंग्रेजी अत्याचार उस समय का मूल भाव था जिसका प्रभाव शुक्लजी छायावादी कविता में देखते थे। सचमुच शुक्लजी के लिए यह बिन्दु अत्यंत ही बेचैन बिन्दु था। अपने समय की कविता (या वाद) को ऐतिहासिक क्रम में 'घटाने' पर भी शुक्लजी अन्विति नहीं बैठा पाये। आगे चलकर डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह छायावाद-रहस्यवाद की व्याख्या इतिहास-दृष्टि से ही करते हैं। डॉ. शर्मा और नामवरजी के पास मार्क्सवाद के रूप में स्वीकृत इतिहास-दृष्टि है। शुक्लजी इस दृष्टि को स्वीकार नहीं कर पाये थे। आखिर था तो वह भी विदेशी ही।

शुक्लजी ने आलोचना का जो अपना ठेठ रास्ता बनाया, वह सीधे-सीधे यथार्थवादी समीक्षकों का रास्ता था। शुक्लजी का तादात्म्य जितना यथार्थवादियों से होता है उतना और किसी से नहीं। इसीलिए आलोचक रामचन्द्र शुक्ल जब प्रासंगिक होंगे तो यथार्थवादी समीक्षक के लिए ही। ''आचार्य शुक्ल के हाथों वस्तुतः हिन्दी की एक निजी प्रौढ़ आलोचना शैली का विकास हो चुका था। यह शैली पश्चिम के कलावाद और हिन्दी के मध्ययुगीन अलंकार-रीतिवाद से भिन्न हिन्दी की अपनी ठेठ मौलिक आलोचना शैली थी। उनकी आलोचना की खास बात यह थी कि उन्होंने शास्त्र की सर्वथा मौलिक व्याख्या कर उसे आधुनिक और समाजोपयोगी बनाया।''[19] यह शुक्लजी के जीवन की सबसे बड़ी देन है। जो साहित्य जीवन से कटकर बिल्कुल चौखट में सिमट गया था, जो आलोचना लक्षण-परीक्षण शैली की चाटुकार थी, उसे शुक्लजी ने समाज सापेक्ष बनाया (या माँग की)। भक्तिकाल के बाद यह हिन्दी साहित्य का सबसे व्यापक आन्दोलन बना। आलोचना का मानदंड शुक्लजी ने शास्त्र से लिया जरूर लेकिन उनकी व्याख्या मौलिक थी। शंकराचार्य के 'जगत् मिथ्या' को शुक्लजी ने 'जगत् सत्य' बनाया और स्वभावतः सारी शब्दावली का अर्थ बदल गया। निश्चित रूप से जब हम जगत् को सत्य मान लेते हैं तो हमारे दर्शनों की व्याख्याएँ अपने-आप उलट जाएँगी। शुक्लजी अपने समय की माँग को अपने साहित्य, आलोचना में प्रस्तुत करते हैं। परंपरा और आधुनिकता, पूरब और पश्चिम, शास्त्र और विज्ञान - सबका सामंजस्य बैठाने का काम शुक्लजी अपने हाथ में लेते हैं। निश्चित रूप से यह विराट् क्षेत्र एक व्यक्ति के लिए अत्यधिक है फिर भी यह चुनौती किसी-न-किसी को तो स्वीकारनी ही थी। शुक्लजी स्वीकारते हैं। शुक्लजी में व्याप्त अंतर्विरोध इसी विराट् फलक की ही देन है। व्यक्ति जब सम्पूर्ण जीवन-जगत् को साधने की प्रक्रिया में हो तब उसमें अंतर्विरोध पैदा अवश्य होंगे। ये अंतर्विरोध शुक्लजी के समय के हैं। उस युग को समझने के लिए शुक्लजी का अंतर्विरोध भी प्रासंगिक हो उठता है। वास्तव में ''वे देश और काल को एक सूत्र में एकाग्र और परिभाषित करना चाहते थे। देश के सन्दर्भ में उनकी दृष्टि संस्कृत क्लासिक्स और हिन्दी भक्ति-काव्य से निर्मित हुई थी। यह उनका संस्कार था। काल की चेतना उनके अपने समय में चारों-ओर से बह-बहकर आनेवाला यथार्थ था। यह यथार्थ उनका परिवेश था।''[20] शुक्लजी के प्रति प्रगतिवादी आलाचकों का रवैया भी दिलचस्प, दुविधापूर्ण और तल्ख रही। वे किसी न किसी रूप में भाववादी, ब्राह्मणवादी और वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक आलोचक मानते थे।[21] तत्कालीन आलोचना के परिवेश में शुक्लजी की स्थिति महाकवि भवभूति की तरह थी। भवभूति का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब देश में चारों ओर दरबारी साहित्य का बोलबाला था। इसीलिए उस महाकवि ने क्षुब्ध होकर कहा - 'जो मेरे काव्य की उपेक्षा करते हैं, करें। वे भी कुछ जानते होंगे लेकिन उनके लिए मैंने यह नहीं लिखा। काल अनंत है, पृथ्वी विशाल है, मेरा भी कोई समानधर्मा कहीं होगा या आगे पैदा होगा।' आलोचना

के क्षेत्र में भवभूति के समानधर्मा आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं।[22]

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
बेनितो हुआरेज मार्ग, नयी दिल्ली-110021
Email: anilkumar@mln.du.ac.in

संदर्भ सूची

1. नित्यानन्द तिवारी, आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. 40
2. वही
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 33वाँ सं.-संवत् 2055 वि., पृ. 224
4. वही, पृ. 233
5. वही, पृ. 248
6. वर्तमान साहित्य, जनवरी-फरवरी, 2000, पृ. 37
7. नित्यानन्द तिवारी, आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.-1994, पृ. 91
8. ठाकुर प्रसाद सिंह, हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई, पृ. 23
9. वर्तमान साहित्य, जनवरी-फरवरी, 2000, पृ. 38
10. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 33वाँ सं.-संवत् 2055 वि., पृ. 246
11. वही, पृ. 239, 251
12. वही, पृ. 274 (इस संदर्भ में विभिन्न आलोचकों की भिन्न वैचारिक दृष्टियाँ हैं। इसे निम्न स्थलों पर विस्तार से देखा जा सकता है- वासुदेव सिंह, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, पृ. 65 (कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', हिन्दी साहित्य युग-धारा, पृ. 388 (रामविलास शर्मा, भारतेन्दुयुग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1998, पृ. 93
13 रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-1, इंडियन प्रेस प्रा. लि., संस्करण 1977, पृ. 93
14. वही, पृ. 33
15. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-2, संपा. विश्वनाथ प्रताप मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण संवत् 2027, पृ. 249
16. नित्यानंद तिवारी, सृजनशीलता का संकट, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 1991, पृ. 11
17. वही, पृ. 12
18. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-2, संपा. विश्वनाथ प्रताप मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण संवत् 2027, पृ. 140
19. निर्मला जैन, हिन्दी आलोचना बीसवीं शताब्दी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 1975, पृ. 32-33
20. मलयज, रामचन्द्र शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1987, पृ. 34
21. मधुरेश, रामचंद्र शुक्ल : कल, आज और कल, संपा. अभय कुमार ठाकुर, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2023, पृ. 277
22. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2014, पृ. 36

शोध-पत्र

डॉ. जहाँ आरा

महाभारतकालीन शिक्षा का व्यावसायिक स्वरूप : एक अध्ययन

भारतीय शिक्षा प्रणाली का मूल उदेश्य व्यक्तित्व निर्माण और नैतिक शिक्षा रही है वैसे तो इस शिक्षा प्रणाली में भी मानव जीवन की भौतिक आवश्यकताएं की पूर्ति की क्षमता निहित है। परन्तु उद्देश्य भिन्न होने के कारण ही तब शिक्षा का परम उद्देश्य ज्ञान और दान रहा है। तब गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम विषय ज्ञान के साथ-साथ सर्वांगीण विकास किया जाता था।

महाभारतकालीन शिक्षा पर यदि दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि उस काल की शिक्षा प्रणाली ने भी लोगों को इस योग्य बना दिया था कि वे उद्योग और व्यापार में प्रवृत्त होकर अपनी प्रतिभा द्वारा अपना जीविकोपार्जन कर सकते थे। सर्वप्रथम जिस क्षेत्र को तद्युगीन समाज में स्थान मिला है तो वह है आयुर्वेद और चिकित्साशास्त्र।

आयुर्वेद और चिकित्सा-महाभारतकाल में आयुर्वेद और चिकित्सा का पूर्ण विकास हो चुका था। महाभारत के शान्तिपर्व में उपलब्ध अश्मा ऋषि और जनक के संवाद से यह ज्ञात होता है कि तद्युगीन समाज में एक ऐसा वर्ग भी था जो आयुर्वेद का ही अध्ययन करता था। उस समय रसायन जानने वाले वैद्यों को 'रसायनविदश्चैव'[1] कहा जाता था। महाभारत में वर्तमान के समान किसी रसायन (दवा) या चूर्ण का कोई नाम उपलब्ध नहीं होता था, किन्तु यह ज्ञात होता है कि वो दवायें कड़वे-कड़वे काढ़े और नाना प्रकार के घृत की बनी होती थीं।[2] काश्यप उस युग में विषविद्या के निपुण चिकित्सक थे। उन्होंने सर्पदंश के प्रभाव का नाश करने वाली औषधि का निर्माण किया था। आदिपर्व में वर्णन आया है कि जब वे परीक्षित के विष के उपचार के लिए जा रहे थे तो तक्षक ने उन्हें धन देकर लौटा दिया था जिस कारण से तक्षक परीक्षित को डसने में सफल सिद्ध हुआ था।[3] सुश्रुत संहिता के रचयिता आचार्य सुश्रुत थे। सुश्रुत का उल्लेख विश्वामित्र के पुत्र के रूप में महाभारत में हुआ है। तद्युगीन समाज में शल्य चिकित्सा भी बढ़-चढ़कर देखने को मिलती है। महाभारत युद्ध के समय कौरवों की सेना में अनेक कुशल चिकित्सक विद्यमान थे जो शल्यतन्त्र में विशेष प्रवीण थे। ये चिकित्सक युद्ध शिविरों में घायल और रोगियों की चिकित्सा करते थे। इन चिकित्सकों ने दुर्योधन का ऐसा उपचार किया था कि उनके शरीर पर कोई शल्य का चिन्ह नहीं था।[4] अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य कहे गये हैं। अयोद्धौम्य के शिष्य उपमन्यु ने क्षुधार्तावस्था में आक के पत्ते खा लिए थे जिसके कारण वह अन्धे हो गये थे। आचार्य ने चक्षुलाभ के लिए अश्विनीकुमारों की स्तुति करने को कहा था।[5] जिसके पश्चात् वह अपने नेत्रों से देखने में सफल हुए थे। उस काल में शारीरिक गठन, सौन्दर्योपचार तथा युवावस्था की शक्ति का सम्वर्धन भी उपचारों के माध्यम से होता था। आदिपर्व में राजा पुरु का वर्णन आया है उसने अपने पिता ययाति को अपना यौवन दे दिया था।[6] देवताओं के श्रेष्ठ वैद्य अश्विनीकुमारों ने च्यवन मुनि को वरुण और मनोहर रूप संपन्न बना दिया था।[7] अर्थात् उस काल में भी चेहरे को मनोहर और सुन्दर बनाने का उपचार होता था। महाभारतकाल के ऋषि-मुनि टेस्टट्यूब बेबी पद्धति से भी सम्भवतः परिचित थे। धृतराष्ट्र के 100 पुत्रों का जन्म शायद टेस्टट्यूब की तकनीक से ही हुआ था। महाभारत में गांधारी के गर्भ धारण की कथा का वर्णन आया है जिसमें गर्भ को मिट्टी के बर्तनों में डालने का सुझाव

व्यास ऋषि ने दिया था।[8] इन सभी का विकास अलग-अलग बर्तनों में हुआ था, जिसे हम टेस्टट्यूब की तकनीकी से जोड़ सकते हैं। इससे यह पता चलता है कि पौराणिक ऋषि वैद्य भ्रूण को अलग रखकर उसे तैयार करना भी जानते थे। महाभारत के आश्वमेधिकपर्व अध्याय 69 में वर्णित परीक्षित पुनर्जन्म एवं अध्याय 80 में वर्णित अर्जुन पुनर्जन्म प्रसंगों ने आधुनिक चिकित्सा पद्धति को भी पीछे छोड़ दिया है। कृष्ण ने परीक्षित को अपनी विशेष शक्ति से जीवित कर दिया था। संभवत: यह कोई नाड़ी उपचार रहा होगा, क्योंकि यहाँ कृष्ण द्वारा किसी औषधि का प्रयोग नहीं किया गया। इस प्रकार हम देखें तो महाभारतकाल में आयुर्वेद और चिकित्साविज्ञान बहुत विकसित था। आज भी चिकित्साविज्ञान में दिन प्रतिदिन उन्नति हो रही है। नयी-नयी तकनीकी आ गई हैं, परन्तु कहीं-न-कहीं इतनी उन्नति होने पर भी उपलब्धियों में कमी दिखाई पड़ती है। दिन प्रतिदिन हर बीमारी के लिए दवाईयों का आविष्कार हो रहा है, परन्तु किसी ऐसी दवा का अविष्कार नहीं हो रहा जिससे बीमारियाँ जड़ से समाप्त हो जायें। अत: वर्तमान में इस पर ध्यान देने की आश्यकता है।

पशुचिकित्सा- पशुचिकित्सा भी तद्युगीन समाज में जीविकोपार्जन का साधन हुआ करते थे। अज्ञातवास की अवधि में नकुल अपने भाईयों से कहते हैं कि मैं विराट का अंगरक्षक बनूँगा, क्योंकि मैं अश्वों की प्रकृति, अश्वरोगों की समाप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा में पारंगत हूँ।[9] सहदेव (तन्तिपाल) ऐसे वृषभों के लक्षणों को भी जानते थे जिनके मूत्र को सूँघने मात्र से वन्ध्या गाय भी गर्भ धारण कर लेती थी।[10]

वनस्पति-विज्ञान-प्राचीनकाल से ही वन वाणिज्य के प्रमुख आधार रहे हैं। वैश्य पुत्र तुलाधार महाभारतकाल में रस, गन्ध, वनस्पति, औषधि, मूल, फल बेचा करता था। दूसरों से खरीदकर वह पीने योग्य रसों का भी विक्रय करता था।[11] तत्कालीन समाज में लोगों को वनस्पति का अच्छा ज्ञान होता था।[12] भारद्वाज मुनि ने भृगु को जो वनस्पति संबंधी ज्ञान दिया है उससे यह ज्ञात होता है कि उन्हें वनस्पति के विषय में अच्छी जानकरी थी। उनकी यह मान्यता थी कि सभी वनस्पतियाँ, वृक्ष, पौधे इत्यादि चेतना युक्त हैं। वृक्षों के भीतर जो गर्मी है उसी से उनके पत्ते, छाल, फल-फूल कुम्हलाते हैं, मुरझाकर झड़ जाते हैं, इससे उनमें स्पर्श होना भी सिद्ध है। वायु, अग्नि और बिजली की कड़क आदि भीषण शब्द होने पर वृक्षों के फल-फूल झड़कर गिर जाते हैं। शब्द का ग्रहण तो श्रवणेन्द्रिय से ही होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वृक्ष भी सुनते हैं। लता वृक्षों को चारों ओर से लपेट लेती है और उसके ऊपरी भाग तक चढ़ जाती है। बिना देखे किसी को जाने का मार्ग नहीं मिल सकता। इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष देखते भी हैं। पवित्र और अपवित्र गन्ध से तथा नाना प्रकार के धूप गन्ध से वृक्ष नीरोग होकर फूलने-फलने लगते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि वृक्ष सूंघते भी हैं। वृक्ष अपनी जड़ से जल पीते हैं और कोई रोग होने पर जल में औषधि डालकर उनकी चिकित्सा भी की जाती है इससे सिद्ध होता है कि वृक्ष रसेन्द्रिय से भी मुक्त हैं। वृक्षों के कट जाने पर नया अंकुर आने से वे अचेतन नहीं हैं।[13] इस प्रकार देखें तो यह पंच महाभूतों से निर्मित हैं तथा इन्हीं पंच इन्द्रियों के द्वारा यह अपने विविध कार्यों को करते हैं। इनमें चेतना है, इनकी भी जन्म, वृद्धि और मृत्यु होती है।

वास्तव में महाभारत के वृक्ष-चेतना सम्बन्धी प्रतिपादन आज भी शोध का विषय बने हुए हैं। महान भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बसु ने वह सब प्रमाणित करने की दिशा में सराहनीय कार्य किया जिसे हमारे मनीषी ऋषि अपने काव्यों में कह गये थे। वसु ने स्वनिर्मित यंत्र क्रेस्कोग्राफ और कृत्रिम आँखों द्वारा छुई मुई तथा वन चंडाल के पौधों पर संवेदनशीलता के कई प्रयोग किये थे कि पौधों में पेशियां, रक्त, हृदय और पादप प्रत्यंग का पाया जाना तथा उनमें बुद्धि, रुदन, गायन, शयन, जागरण, वेदना और आनन्द की भावना का निहित होना आदि का अनुभव उन्होंने किया था। हर्ष की बात यह है कि वर्तमान में भी वैज्ञानिक उन्हीं तथ्यों पर आने लगे हैं। अमेरिकी वैज्ञानिक क्लीव वैक्सटर एक प्रयोग संचालित कर पालीग्राफ यन्त्र की सहायता से पौधों की संवेदनशीलता देखने में सफल हुए।[14]

स्थापत्यशिल्प - प्रासाद एवं गृहनिर्माण के जो उदाहरण महाभारत में उपलब्ध हैं, उन शिल्पकलाओं की निपुणता व सौन्दर्य पाठकों को विमुग्ध कर देती है। शिल्पकला उस युग में काफी उन्नत थी। तद्युगीन समाज में शास्त्रीय विधान के अनुसार भूमिमापन की व्यवस्था विधिवत् रूप से की जाती थी।[15] हस्तिनापुर में परीक्षा प्रदर्शन हेतु बना विशाल प्रेक्षागार[16], पुरोचन द्वारा जतुगृह का निर्माण जो सन

 Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

के तनों, सर्ज्जरस, घी, लाख आदि आग्नेय द्रव्यों के संयोग से बनाया गया था। घी, तेल, चर्बी, तथा बहुत सी लाख मिट्टी में मिलवाकर दीवारों पर लेप करवाया गया था। यह भवन बहुत धन खर्च करके सुन्दर से सुन्दर बनवाया गया था। धृतराष्ट्र के आदेश पर पाण्डव कृष्ण के साथ खाण्डवप्रस्थ गये और वहाँ जाकर उन्होंने वन को स्वर्ग में परिणत कर दिया था जिसकी शोभा अद्‌भुत थी।[17] विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया खाण्डवप्रस्थ नगर ही इन्द्रप्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। युधिष्ठिर का सभा मण्डप भी अत्यन्त मनोमुग्धकारी था। वह सभागृह वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना था।[18] कैलाश पर्वत पर दानवराज वृषपर्वा का जो मणिमय यज्ञमण्डप मय द्वारा बनाया गया था उसके अन्दर मय ने मणिरत्नों की पुष्करिणी बनायी थी। शिल्पकारों की निपुणता के कारण असली और नकली में भेद करना कठिन था।[19] राजसूय यज्ञ के पूर्व सहस्रों की संख्या में शिल्पियों ने ब्राह्मणों तथा अतिथियों के निवासार्थ आवास का निर्माण किया था। अश्वमेध में भी स्थपतियों तथा शिल्पियों ने निर्माण किया था।[20] महाभारत युद्ध के समय कृष्ण ने सैकड़ों दक्षशिल्पियों को राजाओं के शिविर निर्माण में लगाया था। इन सब उद्धरणों से यही स्पष्ट होता है कि महाभारतकाल में शिल्पकला कितनी उत्कृष्ट थी।

संगीतकला- महाभारत में प्राप्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि तद्युगीन समाज में संगीतकला का अच्छा विकास हो चुका था। उस काल में संगीत इतने व्यावसायिक धरातल पर था कि लोग नर्तक, गायक, वादक, नियुक्त कर अपनी कन्याओं को शिक्षा देते थे। विविध उत्सवों में मनोरंजन के लिए गायन किया जाता था। यज्ञ-सत्र में भी नृत्य-गीत आदि का आयोजन होता था। कृष्ण द्वारा परीक्षित को पुनः प्राण देने पर महान उत्सव का आयोजन हुआ था। इस उत्सव में मल्ल, नट, इनल, ग्रन्थिक, सूत, मागध, आदि सभी ने कृष्ण की स्तुति की थी।[21] परिवारों में संगीत की नियमित शिक्षा देने के लिए शिक्षक की नियुक्ति की जाती थी। बृहन्नला (अर्जुन) ने अज्ञातवास में संगीत शिक्षा के द्वारा राजसेवा की थी। उसने विराट पुत्री उत्तरा को गीत और नृत्य की शिक्षा दी थी।[22] गाने-बजाने में कुशल विशेषज्ञ, राजसभाओं में नियुक्त किये जाते थे जो राजाओं और महर्षियों का मनोरंजन करने के साथ-साथ उनकी उपासाना भी करते थे। महाभारत में संगीतकला दो रूपों में विभक्त हुई दिखाई पड़ती है, प्रथम वह जो धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों पर की जाती थी। वह सामगान का रूप धारण करने के कारण 'गान्धर्व' के नाम से प्रसिद्ध हुई। द्वितीय वह जो लौकिक समारोहों में की जाती थी जिसका उद्देश्य केवल मनोरंजन होता था।

सामगान का प्रयोग- इस गान का प्रयोग याज्ञिक अनुष्ठानों, जन्म, मृत्यु, अन्त्येष्टि क्रिया जैसे अवसरों पर होता था।[23] महाभारतकाल में षड्‌ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद्‌ इन सात स्वरों का पूर्ण विकास हो चुका था।[24] संगीत के लिए गान्धर्व शब्द का प्रयोग किया जाता था। इसमें साम के साथ-साथ गीत, वादन, नृत्य को भी सम्मिलित किया जाता था।[25] महाकाव्यकाल के श्रेष्ठ संगीतज्ञों में हाहा, हुहु, नारद तथा तुम्बरु का नाम उल्लेखनीय है। हाहा, हूहू, का वर्णन आदिपर्व में उपलब्ध है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में संगीतज्ञ चित्ररथ और तुम्बरु आये थे जिनका अभिषेक वीणावादक नारद ने किया था।[26]

देखा जाए तो महाभारतकालीन संगीत की पृष्ठभूमि वैदिक काल की भाँति आध्यात्मिक ज्ञान से आप्लावित थी।

युद्ध विद्या- आज नये-नये परमाणु बम, मिसाइल इत्यादि का आविष्कार हो रहा है। कभी-कभी यह परीक्षण में सफल सिद्ध भी नहीं होते। फिर भी वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं और नूतन युद्ध प्रणाली से युद्ध के लिए परमाणु बम और मिसाइलें तैयार हो रही हैं। ठीक इसी प्रकार से महाभारत युद्ध में प्रयुक्त हुए अनेक अस्त्र-शस्त्र को हम कैसे भूल सकते हैं जिनके बिना इस युद्ध की कल्पना ही नहीं की जा सकती। निश्चित ही उस समय इन अस्त्र-शस्त्रों को बनाने वाले इस विद्या में निपुण रहे होंगे। महाभारत युद्ध में विविध प्रकार के धनुष-बाणों का प्रयोग हुआ था। इसके अतिरिक्त ढाल, तलवार, अंकुश, तोमर, फरसे, ऋष्टि, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, श्रेष्ठशक्ति, गदा, लोहे की गोलियाँ, प्रतोद, पाश इत्यादि मानवीय अस्त्रों का वर्णन आया है। शतघ्नी, दंडे, खड्‌ग, शूल, मुद्‌गर, कम्पन, मुसल, छूरे, क्षुरप्र, नलकि, वस्तदन्त, अस्थिसन्धि, चक्र नाना प्रकार के युद्धोपकरण होते थे।[27] वक्षस्थल की रक्षा हेतु तत्कालीन योद्धा कवच का प्रयोग करते थे। साधारण सैनिकों के कवच लौहनिर्मित ही होते होंगे, परन्तु राजा तथा विशेष पदाधिकारियों के स्वर्ण कवचों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[28] वीर भुजाओं में गोह के चमड़े से बने हुए

दस्ताने पहनते थे।[29] उस काल में हाथियों को भी कवच पहनाये जाते थे। अर्जुन ने भगदत्त के हाथी के कवच को भारी बाण वर्षा से काट डाला था।[30] उपर्युक्त विवेचनों से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में युद्ध सम्बन्धी अस्त्रनिर्माण- कला अपनी चरमोत्कर्ष अवस्था पर थी।

इस प्रकार हम देखें तो किसी भी राष्ट्र को तब तक शिक्षित और सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता जब तक वह अपनी सांस्कृतिक विरासत का विस्तार एवं संरक्षण न कर सके। महाभारतकालीन शिक्षा व्यवस्था को देखकर हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में आयुर्वेद, चिकित्सा, पशुचिकित्सा, वनस्पतिविज्ञान, स्थापत्यशिल्प, संगीतकला, युद्धविद्या आदि का वर्णन यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली
ईमेल : jahanara18may@gmail.com

संदर्भ सूची

1. शान्तिपर्व, 28/46
2. वही, 28/45
3. आदिपर्व, अध्याय-39
4. भीष्मपर्व, 77/10
5. आदिपर्व, 3/58
6. वही, 70/42
7. आरण्यकपर्व, 123/10-17
8. आदिपर्व, अध्याय-107
9. विराटपर्व, 11/7
10. वही, 3/10
11. विक्रीणानः सर्वरसान्सर्वगन्धांश्च वाणिज....। शान्तिपर्व, 254/2
12. परिच्छिन्नैः काष्ठतृणैर्मयेदं शरणं कृतम्...। वही, 254/7
13. वही, 177/11-15
14. साभार उद्धृत्, महाभारत के वन और वृक्ष, पृ., 97-98
15. ततः पुण्ये शिवे देशे शान्तिं कृत्वा महारथाः।
    नगरं मापयामासुर्द्वैपायनपुरोगमाः।। आदिपर्व, 199/28
16. वही, अध्याय-125
17. वही, 199/27, 37, 38
18. सभापर्व, अध्याय-3
19. वही, 3/30
20. उद्योगपर्व, 149/78
21. आश्वमेधिकपर्व, 69/7
22. विराटपर्व, 11/12
23. स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः। वही, 10/12
24. गायन्ति दिव्यतानैस्ते यथान्यायं मनस्विनः। सभापर्व, 4/33
25. शान्तिपर्व, 99/22-23
26. सभापर्व, 49/10
27. द्रोणपर्व, 29/16-18
28. वही, 60/14
29. वही, 35/23
30. वही, 28/8

शोध-पत्र

सतत विकास और लोकतंत्र

शिखा जायसवाल

Abstract:

भारत व वैश्विक जगत में जलवायु परिवर्तन, असमानता और सामाजिक न्याय जैसी वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने में सतत विकास की अवधारणा और लोकतंत्र दोनों को पूरक कारक के रूप में पहचाना जा रहा है। यह शोधपत्र सतत विकास-जिसे आर्थिक वृद्धि, पर्यावरण प्रबंधन और सामाजिक समावेशन द्वारा परिभाषित किया जाता है- और लोकतांत्रिक शासन के बीच जटिल संबंधों की खोज करता है, जिसकी विशेषता पारदर्शिता, सार्वजनिक भागीदारी और जवाबदेही है। कुछ केस स्टडी और उपलब्ध साहित्य की समीक्षा के माध्यम से, इस शोधपत्र का उद्देश्य यह है कि कैसे लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं नीति निर्माण में सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देकर, समान संसाधन वितरण का समर्थन करके और सरकारी जवाबदेही सुनिश्चित करके सतत विकास को सक्षम बनाती हैं। इसके विपरीत, शोधपत्र लोकतंत्रों के सामने आने वाली चुनौतियों पर भी विचार करता है, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित और विकाशशील देशों के मध्य मतभेद और लोकतंत्र में चुनावी प्रक्रिया जिसमें लोकलुभावनवाद की नीति दीर्घकालिक स्थिर योजना में बाधा डालने वाली प्रवृत्ति, जो पर्यावरण संरक्षण को कमजोर कर सकती है। अंततः यह सहयोगी ढांचे, अभिनव नीति उपकरण और संस्थागत सुधारों के माध्यम से सतत विकास और लोकतांत्रिक शासन दोनों को आगे बढ़ाने के अवसरों को संबोधित करता है। लोकतांत्रिक शासन को स्थिरतायुक्त लक्ष्यों के साथ संरेखित करने में आने वाली बाधाओं की खोज और समन्वय पर जोर देते हुए, इस शोधपत्र का उद्देश्य इस तथ्य का व्यापक अवलोकन करना है कि किस प्रकार ये शक्तियां सामूहिक रूप से एक अधिक लचीले, समतापूर्ण और टिकाऊ वैश्विक समाज के निर्माण में योगदान कर सकती हैं।

Key words – सतत विकास, लोकतंत्र, जलवायु परिवर्तन, समावेशी विकास और सहभागिता

परिचय (Introduction)

जब प्रतिस्पर्धात्मक विकास की अवधारणा मानव अस्तित्व के लिए चुनौती बनाने लगा अर्थात् पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हुआ तब सतत विकास (Sustainable Development) की अवधारणा का जन्म हुआ जिसका आशय ऐसा विकास है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता है, बिना भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता को प्रभावित किए। यह आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखने का सिद्धांत है। यह विचार 1987 में ब्रुंडलैंड रिपोर्ट ''हमारा साझा भविष्य'' (Our Common Future) के माध्यम से विश्व स्तर पर प्रचलित हुआ। सतत विकास का अर्थ है संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, ताकि पर्यावरणीय संसाधनों का दुरुपयोग न हो और आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति निरंतर बनी रहे। इसका उद्देश्य सभी के लिए समान अवसर प्रदान करना और पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा करना है। विकास की रणनीत का निर्धारण शासन के ऊपर निर्भर करता है इसलिए शासन के सर्वोत्तम रूप में लोकतंत्र को देखा जाता है, जिसमें सबकी भागीदारी के साथ समान, समावेशित और न्याय पूर्ण विकास सुनिश्चित हो सके।

लोकतंत्र (Democracy) एक ऐसा शासन प्रणाली है जिसमें सत्ता का स्रोत जनता होती है। इसका मूल ग्रीक शब्द 'डेमोस' (जनता) और 'क्राटोस' (शक्ति) से है, जिसका अर्थ है ''जनता का शासन।'' यह शासन प्रणाली समानता, स्वतंत्रता, और सहभागिता के सिद्धांतों पर आधारित है। लोकतंत्र का तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसमें जनता को शासन करने का अधिकार है, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या प्रतिनिधि के माध्यम से। यह प्रणाली लोगों को अपने अधिकारों की सुरक्षा, निर्णय लेने में सहभागिता, और सत्ता में पारदर्शिता सुनिश्चित करती है। सतत विकास और लोकतंत्र में समन्वय के साथ ही चुनौतियां भी दिखाई देती है मुख्यतया चुनाव में दलों द्वारा लोक-लुभावनी योजनाओ की घोषणा जो पर्यावरणीय हितो के कभी-कभी प्रतिकूल भी होती है।

औद्योगिक युग से पूर्व कृषि आधारित समाज प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करता था। जनसंख्या और तकनीकी सरलता के कारण संसाधन प्रबंधन आमतौर पर संतुलित था। लेकिन औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण के साथ-साथ असमान विकास व सामाजिक विषमताओं में वृद्धि हुई। 1960 का दशक में पर्यावरणीय समस्याओं को लेकर वैश्विक चिंता बढ़ी। रेचल कार्सन कीसाइलेंट स्प्रिंग (1962) ने रासायनिक प्रदूषण के दुष्प्रभाव उजागर किए। तब विश्व का ध्यान पर्यावरणीय मुद्दे पर गया और चिंता व्यक्त की गयी और सर्वप्रथम स्टॉकहोम सम्मलेन का आयोजन हुआ और उसी क्रम में 1987 के बुंडलैंड रिपोर्ट ने सतत विकास को एक वैश्विक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत किया। 1992 रियो पृथ्वी सम्मेलन में ''एजेंडा 21'' और अन्य संधियों ने सतत विकास को लागू करने के लिए आधारभूत ढांचा प्रदान किया। जिस दिशा में संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य (SDGs, 2015) ने 2030 तक गरीबी, असमानता और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं का समाधान करने के लिए एक ठोस एजेंडा निर्धारित किया। पेरिस समझौते ने जलवायु परिवर्तन के खिलाफ वैश्विक स्तर पर ठोस कदम उठाने पर जोर दिया।

सतत विकास के तीन प्रमुख आयाम हैं:

1. **पर्यावरणीय आयाम (Environmental Dimension):**
   - पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा और प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग।
   - प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करना।
   - जल, मिट्टी और जैव विविधता का संरक्षण।
2. **आर्थिक आयाम (Economic Dimension):**
   - आर्थिक विकास को स्थिर और समावेशी बनाना।
   - हरित प्रौद्योगिकी (Green Technology) और नवाचार को बढ़ावा देना।
   - संसाधनों का टिकाऊ उत्पादन और उपभोग।
3. **सामाजिक आयाम (Social Dimension):**
   - शिक्षा, स्वास्थ्य और लैंगिक समानता में सुधार।
   - गरीबी उन्मूलन और सभी के लिए रोजगार सुनिश्चित करना।
   - सांस्कृतिक विविधता और सामुदायिक सशक्तिकरण को प्रोत्साहित करना।

सतत विकास और लोकतंत्र के अंतर-सम्बन्ध की विवेचना के लिए आवश्यक है कि लोकतंत्र के सिद्धांत और उसके मूल्यों का अध्ययन किया जाये और किस प्रकार लोकतंत्र पर्यावरण को बचाने में सहायक सिद्ध हो सकता है, लोकतंत्र को समझाने के लिए विभिन्न सिद्धांतों का विकास हुआ है:

1. शास्त्रीय सिद्धांत (Classical Theory)

- यह सिद्धांत प्रत्यक्ष लोकतंत्र पर आधारित है, जिसमें नागरिक सीधे निर्णय लेते हैं।
- यह प्राचीन एथेंस के लोकतंत्र का मॉडल है।

2. प्रतिनिधिक लोकतंत्र (Representative Democracy)

- इसमें नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं, जो उनके लिए निर्णय लेते हैं।
- यह आधुनिक लोकतंत्र की आधारशिला है।

3. बहुलतावादी सिद्धांत (Pluralist Theory)

- यह सिद्धांत विभिन्न समूहों और संगठनों की भूमिका को महत्व देता है जो नीतियों को प्रभावित करते हैं।
- यह प्रतिस्पर्धा और विविधता को लोकतंत्र की ताकत मानता है।

4. परामर्शात्मक लोकतंत्र (Deliberative Democracy)

- यह संवाद और चर्चा पर जोर देता है।
- इस सिद्धांत के अनुसार, विचार-विमर्श से लिए गए

निर्णय अधिक वैध और प्रभावी होते हैं।

5. सहभागी लोकतंत्र (Participatory Democracy)

• यह सिद्धांत केवल मतदान तक सीमित न रहकर नागरिकों की गहन भागीदारी पर जोर देता है।

• यह विकेंद्रीकरण और स्थानीय स्तर पर सहभागिता को प्रोत्साहित करता है।

लोकतंत्र के उद्देश्य (Objectives of Democracy)

1. राजनीतिक समानता सुनिश्चित करना सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना।

2. जवाबदेह शासन (Accountable Governance) शासकों को उनके कार्यों के लिए जिम्मेदार ठहराना।

3. मौलिक अधिकारों की रक्षा करना, प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता और अधिकार सुनिश्चित करना।

4. सामाजिक न्याय का प्रोत्साहन संसाधनों और अवसरों का न्यायसंगत वितरण।

5. संघर्षों का शांतिपूर्ण समाधान संवाद और समझौते के माध्यम से विवादों को हल करना।

6. कानून का शासन (Rule of Law) सभी नागरिक और सरकार कानून के अधीन हैं।

7. सार्वभौमिक मताधिकार (Universal Suffrage) सभी योग्य नागरिकों को मतदान का अधिकार।

8. मुक्त और निष्पक्ष चुनाव (Free and Fair Elections) नियमित, पारदर्शी और प्रतिस्पर्धात्मक चुनाव।

9. शक्ति का पृथक्करण (Separation of Powers) कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का विभाजन।

10. बहुलवाद और सहिष्णुता (Pluralism and Tolerance) विविध विचारों और संस्कृतियों का सम्मान।

11. स्वतंत्र न्यायपालिका (Independent Judiciary) न्यायपालिका की स्वायत्तता जो संवैधानिक अधिकारों की रक्षा करती है।

12. सक्रिय नागरिक समाज (Active Civil Society) गैर-सरकारी संगठनों और मीडिया का लोकतंत्र में महत्वपूर्ण योगदान।

लोकतंत्र के मूल्य (Values of Democracy)

1. स्वतंत्रता (Liberty) विचार, अभिव्यक्ति और कार्य की स्वतंत्रता।

2. समानता (Equality) हर व्यक्ति के लिए समान अवसर और अधिकार।

3. व्यक्ति की गरिमा (Dignity of the Individual) हर नागरिक के सम्मान और मानवाधिकार की रक्षा।

4. सहभागिता (Participation) शासन प्रक्रियाओं में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी।

5. पारदर्शिता और जवाबदेही (Transparency and Accountability) सरकार की खुली कार्यप्रणाली और उत्तरदायित्व।

6. सामाजिक एकता (Social Cohesion) विभिन्न समूहों के बीच सद्भाव और सहयोग।

सतत विकास और लोकतंत्र के बीच समन्वय

सतत विकास (Sustainable Development) और लोकतंत्र (Democracy) के बीच गहरा और परस्पर जुड़ा हुआ संबंध है। दोनों ही व्यवस्थाएँ समानता, भागीदारी, और अधिकारों की रक्षा पर जोर देती हैं। सतत विकास के तीन प्रमुख आयाम – आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय – तभी प्रभावी रूप से लागू हो सकते हैं, जब समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना हो। जिसमें शासन और नागरिक दोनों की भागीदारी आवश्यक है। लोकतंत्र एक ऐसी प्रणाली है जो लोगों को उनके निर्णयों में भाग लेने का अधिकार देती है, और सतत विकास यह सुनिश्चित करता है कि इन निर्णयों से समाज के सभी वर्गों को लाभ मिले, विशेष रूप से आने वाली पीढ़ियों को। सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals & SDGs) जैसे जलवायु कार्रवाई, गरीबी उन्मूलन, और शिक्षा तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब सरकारें पारदर्शी, जवाबदेह और समावेशी हों। लोकतांत्रिक संस्थाएँ निर्णय लेने में जनता की भागीदारी को सुनिश्चित करती हैं, जिससे सतत विकास की नीतियों को अधिक समर्थन मिलता है।

परन्तु आज लोकतंत्र में लोकलुभावन राजनीति (Populism) का उदय, सतत विकास के लिए कई बार बाधा बन सकता है। लोकलुभावन नेता अक्सर अल्पकालिक लाभ देने वाले नीतियों को प्राथमिकता देते हैं, जो दीर्घकालिक सतत विकास के लक्ष्यों को हानि पहुँचा सकती हैं। जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक समस्याओं को लोकलुभावन राजनीति के तहत नकारा जा सकता है। लोकलुभावन सरकारें कभी-कभी दीर्घकालिक पर्यावरणीय और सामाजिक नीतियों को अनदेखा करती हैं क्योंकि ये त्वरित राजनीतिक लाभ नहीं देतीं। उदाहरण के लिए, कुछ सरकारें प्राकृतिक

संसाधनों का दोहन करके आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देती हैं, जिससे पर्यावरणीय क्षति होती है। दिल्ली में पर्यावरणीय मुद्दे को इस क्रम में देखा जा सकता है। लोकलुभावन राजनीति अक्सर समाज में विभाजन पैदा करती है, जो सतत विकास के सामाजिक आयाम को कमजोर करता है। यह लोकतांत्रिक संस्थाओं को कमजोर कर सकता है, जो सतत विकास नीतियों के कार्यान्वयन के लिए आवश्यक हैं।

चुनाव, लोकतंत्र की आधारशिला हैं, लेकिन ये सतत विकास के लक्ष्यों को कई तरह से प्रभावित कर सकते हैं, चुनावों में राजनीतिक दल कभी-कभी अल्पकालिक लोकप्रिय वादों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जैसे मुफ्त बिजली या पानी, जबकि सतत विकास के लिए दीर्घकालिक निवेश जैसे नवीकरणीय ऊर्जा और स्मार्ट इंफ्रास्ट्रक्चर की उपेक्षा की जाती है। चुनावी राजनीति में जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय स्थिरता जैसे विषय अक्सर प्राथमिकता में नहीं आते। पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान लंबे समय और सहयोग की माँग करता है, जो चुनावी चक्रों में चुनौतीपूर्ण हो सकता है। लोकतांत्रिक चुनाव जनता को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करने का अवसर प्रदान करते हैं। यदि नागरिक पर्यावरणीय और सामाजिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील हों, तो वे सतत विकास समर्थक नीतियों का समर्थन कर सकते हैं।

लोकतंत्र में सत्ता परिवर्तन के कारण नीतियों की स्थिरता में बाधा आती है, जिससे सतत विकास परियोजनाओं में देरी हो सकती है। उदाहरण: एक सरकार द्वारा शुरू की गई पर्यावरणीय योजना को अगली सरकार रद्द कर सकती है। लोकतांत्रिक समाजों में कभी-कभी राजनीतिक दबाव के कारण संसाधन केवल कुछ वर्गों तक सीमित रह जाते हैं। यह सतत विकास के सामाजिक और आर्थिक आयाम को बाधित करता है। लोकतांत्रिक सरकारें अक्सर अल्पसंख्यक या गरीब समुदायों के लिए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की उपेक्षा करती हैं। यदि जनता में सतत विकास के मुद्दों पर जागरूकता नहीं है, तो राजनीतिक एजेंडे में यह विषय प्राथमिकता नहीं पाता। राजनीतिक ध्रुवीकरण सतत विकास पर आम सहमति बनाने में बाधा डालता है।

सतत विकास और लोकतंत्र के बीच सामंजस्य व समन्वय आवश्यक है जो नीतिगत निरंतरता सुनिश्चित करे जिससे दीर्घकालिक योजनाओं और उनके क्रियान्वयन के लिए मजबूत संस्थागत ढांचे का निर्माण हो। जनता की भागीदारी बढ़ाना चाहिए, स्थानीय स्तर पर सहभागिता को बढ़ावा देकर सतत विकास के लक्ष्यों को जमीनी स्तर पर लागू करना। पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता नागरिकों को पर्यावरणीय समस्याओं और उनके समाधान के प्रति संवेदनशील बनाना चाहिए। जलवायु और पर्यावरणीय मुद्दों को चुनावी एजेंडे में शामिल करना, राजनीतिक दलों को जलवायु न्याय और सतत विकास पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित करना। आज यह आवश्यक है कि दोनों के मध्य सामंजस्य हो।

भारतीय लोकतंत्र और सतत विकास

भारत में पर्यावरण की रक्षा यहाँ की संस्कृति में है, प्राचीन काल से ही प्रकृति पूजा की परम्परा है। शासन पद्धति के रूप में भारतीय लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहाँ शासन प्रणाली जनता की भागीदारी और समावेशिता पर आधारित है। भारत का संविधान न केवल नागरिक अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि पर्यावरणीय संरक्षण के लिए भी प्रतिबद्ध है। हालाँकि, बढ़ती लोकलुभावन राजनीति (Populism), चुनावी घोषणापत्रों में पर्यावरणीय मुद्दों की उपेक्षा, और नीतिगत स्तर पर चुनौतियाँ, पर्यावरण और सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधा बनती हैं। भारत के संविधान में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई प्रावधानों का उपबंध किया गया है, जैसे- अनुच्छेद 48ए-राज्य का दायित्व है कि वह पर्यावरण, वन, और वन्यजीवों की रक्षा और संवर्धन करे। अनुच्छेद 51ए (g) प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे और उसमें सुधार लाए। न्यायपालिका के द्वारा समय-समय पर अपने निर्णयों में पर्यावरण के संरक्षण और सतत विकास के लिए की महत्पूर्ण कदम उठाये है- विशाखा पेटिशन (1986) और नदी प्रदूषण नियंत्रण मामले। हालाँकि, भारतीय लोकतंत्र में तेजी से बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, और राजनीतिक प्राथमिकताओं के कारण पर्यावरणीय समस्याएँ गंभीर हो रही हैं।

भारत में लोकलुभावन राजनीति और पर्यावरण (Populism and Environment)

आज भारत में लोकलुभावन राजनीति भारतीय लोकतंत्र का अभिन्न हिस्सा बन चुकी है, लेकिन इसका पर्यावरणीय मुद्दों पर प्रभाव नकारात्मक हो सकता है जैसे लोकलुभावन

Peer Reviewed Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

नेताओं द्वारा अल्पकालिक लाभ देने वाली नीतियाँ बनाई जाती हैं, जैसे सब्सिडी या मुफ्त सुविधाएँ, जो दीर्घकालिक पर्यावरणीय लक्ष्यों को अनदेखा करती हैं। उदाहरण: बढ़ते औद्योगिक दबाव के तहत वन भूमि का अंधाधुंध उपयोग। लोकलुभावन राजनीति में पर्यावरणीय संकट को राजनीतिक प्राथमिकता नहीं दी जाती क्योंकि ये मुद्दे त्वरित राजनीतिक लाभ नहीं देते। पर्यावरणीय नीतियाँ कभी-कभी राजनीतिक ध्रुवीकरण का कारण बनती हैं। उदाहरण के तौर पर, औद्योगिक परियोजनाओं के लिए आदिवासी समुदायों का विस्थापन।

चुनावी घोषणापत्र और पर्यावरण (Election Manifesto and Environment)

भारतीय राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणापत्र पर्यावरणीय मुद्दों को अक्सर सतही तौर पर शामिल करते हैं, अधिकतर घोषणापत्र बुनियादी ढाँचे, रोजगार, और सामाजिक कल्याण पर केंद्रित होते हैं, जबकि पर्यावरणीय सुरक्षा को कम प्राथमिकता दी जाती है। यदि पर्यावरण का उल्लेख किया भी जाता है, तो वह केवल दिखावे के लिए होता है, जैसे ''हरित विकास'' (Green Growth) का नारा। चुनाव जीतने के लिए औद्योगिक परियोजनाओं को पर्यावरणीय मानदंडों की उपेक्षा करते हुए मंजूरी दी जाती है। यह अक्सर वन भूमि का दोहन और प्रदूषण में वृद्धि का कारण बनता है। अधिकतर मतदाता पर्यावरणीय मुद्दों को प्राथमिकता नहीं देते, जिससे राजनीतिक दल इन विषयों को अपनी नीति में शामिल करने से बचते हैं।

नीति और पर्यावरणीय चुनौतियाँ (Policy and Environmental Challenges)

भारतीय लोकतंत्र में पर्यावरण संरक्षण के लिए कई नीतियाँ बनाई गई हैं, लेकिन इनका क्रियान्वयन विभिन्न चुनौतियों से घिरा है:

1. **नीतिगत विसंगतियाँ**- पर्यावरण संरक्षण के लिए बनाए गए कानूनों और औद्योगिक विकास के लिए दी जाने वाली छूट के बीच टकराव। उदाहरण: वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और औद्योगिक परियोजनाओं के लिए वनों की कटाई।

2. **केंद्र-राज्य समन्वय का अभाव**- पर्यावरणीय नीतियों के कार्यान्वयन में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच तालमेल की कमी।

3. **कानूनी ढाँचे की कमजोरियाँ**- पर्यावरणीय अपराधों के लिए सख्त दंड का अभाव और लंबी न्यायिक प्रक्रियाएँ।

4. **जलवायु परिवर्तन और आपदाएँ**-भारत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील है, जैसे बाढ़, सूखा, और चक्रवात। हालाँकि, इन आपदाओं से निपटने के लिए ठोस नीतिगत दृष्टिकोण का अभाव है।

5. **सार्वजनिक भागीदारी की कमी**- पर्यावरणीय नीतियों में जनता की सीमित भागीदारी। ग्रामीण और हाशिए पर रहने वाले समुदायों की आवाज को अक्सर अनसुना कर दिया जाता है।

उपरोक्त चुनौतियों के लिए आवश्यक है कि पर्यावरणीय शिक्षा और जागरूकता को बढ़ाया जाये और पर्यावरणीय मुद्दों को राष्ट्रीय और स्थानीय एजेंडे में प्राथमिकता दिया जाये। स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरणीय शिक्षा को अनिवार्य करना। नीतिगत स्थिरता पर्यावरणीय नीतियों को दीर्घकालिक दृष्टिकोण के साथ लागू करना। लोकलुभावन राजनीति का संतुलन अल्पकालिक वादों की बजाय दीर्घकालिक सतत विकास पर ध्यान केंद्रित करना। पर्यावरण को चुनावी एजेंडे में शामिल करना, राजनीतिक दलों को अपने घोषणापत्र में जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, और वन संरक्षण जैसे विषयों को प्राथमिकता देनी चाहिए। जनता की भागीदारी, स्थानीय समुदायों को पर्यावरणीय निर्णयों में शामिल करना। ग्राम पंचायतों और नगरीय निकायों को पर्यावरणीय नीतियों में सशक्त बनाना।

निष्कर्ष-

अंततः यह कहा जा सकता है कि सतत विकास और लोकतंत्र एक-दूसरे के पूरक हैं। लोकतंत्र ने जनभागीदारी और समावेशी नीतियों के माध्यम से सतत विकास को बढ़ावा दिया है। वहीं, सतत विकास ने पर्यावरणीय और सामाजिक स्थिरता लाकर लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ किया है। विश्व व भारत के अनुभव से यह स्पष्ट है कि सतत विकास और लोकतंत्र को एक-दूसरे के साथ संतुलित कर एक समृद्ध और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण किया जा सकता है। कुछ चुनौतियों के बावजूद लोकतंत्र और उसकी सतत विकास की यात्रा में विभिन्न देशों के मध्य समन्वय और सहयोग की आवश्यकता है जिसका आधार लोकतंत्र ही हो सकता है।

अतिथि प्राध्यापक
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची

1. चौबे, एस.के. (2010) भारतीय संविधान रचना एवं कार्य, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
2. ब्रुंडलैंड रिपोर्ट, (1987) हमारा साझा भविष्य Our Common Future, 1987।
3. संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य (2015) (United Nations Sustainable Development Goals), 2015।
4. इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (IPCC) की रिपोर्ट, 2023।
5. ''लोकतंत्र और जलवायु परिवर्तन पर राजनीतिकरण,'' World Resources Institute (WRI) की रिपोर्ट।
6. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा लोकतंत्र की परिभाषा और उद्देश्य।
7. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986।
8. संयुक्त राष्ट्र सतत विकास लक्ष्य (Sustainable Development Goals & SDGs)।
9. राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) की रिपोर्ट।
10. चुनाव आयोग के विभिन्न राजनीतिक दलों के घोषणापत्र (2014, 2019, 2024)।
11. IPCC रिपोर्ट, 2023।
12. . भारत सरकार। (2008)। जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना (NAPCC)।
13. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP)। (2020)। SDG की दिशा में भारत की प्रगति।
14. ड्रेज, जे., औरसेन, ए. (2013), एक अनिश्चित गौरव: भारत और इसके विरोधाभास।
15. ऑस्ट्रोम, ई. (1990), कॉमन्स पर शासन करना: सामूहिक कार्रवाई के लिए संस्थानों का विकास।
16. मीडोज, डी.एच., एटअल. (2004)। विकास की सीमाएँ: 30-वर्षीय अद्यतन।
17. राव, एम.एन., और रेड्डी, बी.एस. (2021), ''भारत में नवीकरणीय ऊर्जा: प्रगति और चुनौतियाँ।'' नवीकरणीय ऊर्जा नीति जर्नल।
18. भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक। (2018), पर्यावरण परियोजनाओं पर प्रदर्शन लेखा परीक्षा रिपोर्ट।
19. ड्राइसेक, जे.एस. (2005), पृथ्वी की राजनीति: पर्यावरण संबंधी चर्चाएँ।
20. कॉफमैन, डी., क्रे, ए., और मस्त्रुजी, एम. (2010), ''विश्वव्यापी शासन संकेतक : कार्य प्रणाली और विश्लेषणात्मक मुद्दे।'' विश्व बैंक नीति अनुसंधान कार्यपत्र।
21. हिकेल, जे. (2017), विभाजन: वैश्विक असमानता और इसके समाधानों के लिए एक संक्षिप्त मार्गदर्शिका।
22. ओस्ट्रोम, ई. (1990), कॉमन्स को नियंत्रित करना: सामूहिक कार्रवाई के लिए संस्थानों का विकास।
23. होमर-डिक्सन, टी. (1999), पर्यावरण, कमी और हिंसा।
24. मीडोक्रॉफ्ट, जे. (2007), ''लोकतंत्र और सतत विकास की चुनौती।'' पर्यावरण राजनीति।
25. वैम्पलर, बी. (2010), ब्राजील में भागीदारी बजट: प्रतियोगिता, सहयोग और जवाबदेही।
26. मिलर, सी. ए., एटअल. (2013), ''ऊर्जा संक्रमण के सामाजिक आयाम।'' ऊर्जा नीति।
27. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी)। (2020)। मानव विकास रिपोर्ट।

डॉ. अमरजीत कौर

एक लुभावनी मगर काल्पनिक दुनिया दिखाते विज्ञापन

''फासले मिट जाते हैं,
दीवारें टूट जाती हैं,
जहाँ दो बातें हो जाती हैं...''

एक ओर जहाँ टेलीविजन पर मोबाइल नेटवर्क के एक विज्ञापन की ये पंक्तियाँ अनगिनत दोहराव के साथ गूँज रही थीं, वहीं दूसरी ओर अख़बारों में छपी दो ख़बरें हमारे समाज में रिश्तों की सच्चाई बयान कर रही थीं। पहली ख़बर थी कि 'दो स्कूली छात्रों ने अपने ही एक सहपाठी की हत्या कर दी', तो दूसरी ख़बर के मुताबिक, एक सुशिक्षित और उच्च पद पर आसीन पति अपनी उच्च अधिकारी पत्नी की हत्या करके उसके शव को सूटकेस में बंदकर घंटों गाड़ी में शव डालकर इधर-उधर घूमता रहा। ऐसी केवल ये एक या दो घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि हमारे समाज में रिश्तों को तार-तार करने वाली ऐसी अनेक घटनाओं की ख़बरें आए दिन सामने आती रहती हैं। ये घटनाएँ हमारे पारिवारिक, सामाजिक और वैवाहिक सम्बन्धों की नींव के खोखलेपन को उजागर करती हैं। सामाजिक रिश्तों में आत्मीयता, स्नेह और सहानुभूति के स्थान पर स्वार्थ, विद्वेष और प्रतिरोध जैसे तत्व हावी हो रहे हैं। सादगी, संयम और त्याग का स्थान दिखावे, विलासिता और उपभोग ने ले लिया है। आज जब भारत विश्व मानचित्र पर एक अमीर होते हुए बाजार के रूप में उभर रहा है; जहाँ विश्व स्तर की हर बड़ी कम्पनी अपना सामान बेचना चाहती है, वहाँ सामाजिक सम्बन्ध भी क्या बाजार की तरह अपना रूप बदलते जा रहे हैं? आज भारत में एक ऐसा वर्ग विकसित हो रहा है, जो अपनी उच्च आकांक्षाओं, अपने सपनों, अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार है। जिसकी जिद, जिसका अहं, जिसका 'मैं' इतना ऊँचा है कि दुनिया की हर चीज उसके आगे छोटी पड़ जाती है, फिर चाहे वह निकटतम सम्बन्ध ही क्यों न हो, जिन पर हमारी पारिवारिक और सामाजिक संस्था खड़ी है। डॉ. अनिल मेहता अपने आलेख 'विज्ञापन के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव' में विज्ञापन के विषय में लिखते हैं-''इनके कारण भौतिकवाद को बढ़ावा मिला है, मिथ्या वर्णन एवं कपटपूर्ण वचनों से लोगों को ठगा गया है व अनैतिक विज्ञापनों से आपराधिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला है।''[1]

वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ पूरा विश्व सिमटकर नजदीक आ रहा है, वहीं हम अपनों से दूर होते जा रहे हैं। आज व्यक्ति की हैसियत उसकी गाड़ी, मोबाइल, महँगी घड़ियों, ब्राण्डेड कपड़ों और ब्राण्डेड सामान से भरे घर से होती है। जो इन सबको हासिल कर सकने में असमर्थ होता है, उसे पिछड़ा हुआ समझा जाता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपने सामान को बेचने के लिए विज्ञापनों और लुभावने ऑफरों का एक ऐसा मायाजाल बिछाया हुआ है कि कोई भी उसमें आसानी से फँस जाता है। 'नेरोलैक पेंट' के एक विज्ञापन में पोस्टमैन एक डॉक्टर से इसलिए बदतमीजी से पेश आता है, क्योंकि उसने अपने घर पर महँगा नेरोलैक पेंट नहीं करवाया। विज्ञापन के अंत में सूत्रधार डॉक्टर से कहता सुनाई देता है- ''डॉक्टर घनश्याम, इज्जत कमाने के लिए इतना कुछ किया और इत्तूसे के लिए गँवा दी न। घर पर लगाओ नेरोलैक सुरक्षा।'' अर्थात् आप सिर्फ तभी सम्मान के पात्र हैं, जब अपने घर की दीवारों पर नेरोलैक पेंट करवाते हैं,

वरना समाज में आपका तिरस्कार होगा। 'रेमंड फैब्रिक' के विज्ञापन की टैगलाइन है– ''रेमंड, जो बनाए कम्प्लीटमैन''। यानी आपको कम्प्लीटमैन बनने के लिए रेमंड की ड्रेस या सूट पहनना पड़ेगा, वरना आप अधूरे हैं।

विज्ञापन की यह काल्पनिक दुनिया गलत को भी सही बनाकर प्रस्तुत करती है। पारिवारिक और सामाजिक रिश्तों ही नहीं, व्यक्ति के स्वास्थ्य को नुक़सान पहुँचाने वाली वस्तुओं को भी सेहत और आभिजात्य का प्रतीक बनाकर पेश किया जाता है। सुपारी, पान मसाला और सोडा जैसे उत्पादों के बहाने तंबाकू, जर्दा और व्हिस्की आदि का विज्ञापन किया जाता है। इनमें सिनेमा और खेल जगत की जानी–मानी हस्तियों को ब्रांड एंबेसडर के रूप में लिया जाता है, जो युवाओं सहित समाज के बड़े वर्ग के रोल मॉडल होते हैं। अपने आदर्श व्यक्ति को इन वस्तुओं का सेवन करते देख युवा वर्ग इसे ही उचित मानकर इनके उपभोग के लिए प्रेरित होता है। मधु अग्रवाल अपनी पुस्तक 'भारतीय विज्ञापन में नैतिकता' में लिखती हैं– ''मेड फॉर ईच अदर–यह विल्स सिगरेट का विज्ञापन है। इस विज्ञापन में पुरुष एवं महिला को अत्यंत स्वस्थ बताया गया है। कितना विरोधाभास है इस विज्ञापन में, एक जगह लिखा है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है एवं दूसरी तरफ उस पुरुष एवं महिला को अत्यंत प्रसन्न मुद्रा में बताया गया है। यह विज्ञापन हमारे अभिजात्य–कुलीन वर्ग, झूठे प्रदर्शन एवं कृत्रिम शान–बान का द्योतक है।''[2] उस पर हम भारतीय तो वैसे ही आजादी के 60 वर्षों बाद भी अंग्रेजियत की सर्वोच्चता को अपने दिलो–दिमाग से निकाल नहीं पाए हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के रंग–बिरंगे लुभावने विज्ञापनों की यह दुनिया हमें मजबूर कर देती है, उन सबको ख़रीदने के लिए जो हमारी जेब के सामर्थ्य से बाहर हैं। डॉ. रेखा सेठी अपनी पुस्तक 'विज्ञापन डॉट कॉम' में लिखती है–''विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि विज्ञापनों की ताक़त संगठित पूँजी की ताक़त है, जो लालच और भूख की अंधी दौड़ को जन्म देती है। यह पूँजी का ऐसा खेल है, जिसने हमारे पारंपरिक समाज की जड़ें हिला दी हैं।''[3]

विज्ञापनों ने भारतीय मध्यम वर्ग के अंदर कृत्रिम आवश्यकताओं को जन्म दिया है। अनुनयात्मक विज्ञापनों के द्वारा उसे ऐसी वस्तुएँ और उत्पाद क्रय करने हेतु विवश किया जाता है, जिनकी उसे वास्तव में कोई आवश्यकता ही नहीं होती। उपभोक्ताओं की भावनाओं से खेलकर इन वस्तुओं की कृत्रिम माँग पैदा की जाती है। कोल्ड ड्रिंक्स का सारा कारोबार इसी का उदाहरण है। 'ठंडा मतलब कोका कोला', 'ये प्यास है बड़ी' या 'थम्सअप, तूफानी ठंडा' जैसी पंच लाइनों से युवाओं में भ्रम उत्पन्न किया जाता है कि प्यास लगी है, तो कोल्ड ड्रिंक से ही बुझेगी। 'ये दिल माँगे मोर' जैसे स्लोगन इस प्यास को अंतहीन बनाने का प्रयास करते हैं। डॉ. वंदना पाण्डेय 'विज्ञापन एवं नैतिकता' नामक आलेख में लिखती हैं– ''अनुनयात्मक विज्ञापन उपभोक्ता की भावनाओं, चिंताओं, भय तथा मानसिक अवस्थाओं का दोहन करते हैं, जोकि पूर्णतया अनैतिक एवं अनुचित माना जाता है।''[4]

इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भारतीय मध्यम वर्ग के भीतर अनावश्यक वस्तुओं की माँग ही पैदा नहीं की है, बल्कि उसकी क्रय–शक्ति को भी कृत्रिम और अप्राकृतिक रूप से बढ़ा दिया है। सीमित आय वाला मध्यम वर्ग अब प्लास्टिक मनी (क्रेडिट कार्ड) के माध्यम से हर वह चीज ख़रीद सकता है, जो उसकी क्रय सीमा से परे है। ऊँची ब्याज दरों पर इन क्रेडिट कार्ड कम्पनियों के बलबूते हम मीडिया द्वारा परोसी गई संस्कृति को जीने की कोशिश करते हैं। अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए हम उधारी और सूदखोरी के एक ऐसे जाल में फँसते चले जाते हैं जहाँ से निकलना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि आए दिन आर्थिक तंगी के चलते होने वाली आत्महत्याओं की ख़बरें सामने आ रही हैं। साथ ही विज्ञापन में प्रदर्शित उत्पादों और ऐशो आराम की वस्तुओं की चाहत लोगों को अपराध की तरु भी धकेलती है। लेखिका क्षमा शर्मा अपनी पुस्तक 'स्त्रीत्ववादी विमर्श–समाज और साहित्य' में विज्ञापन के ऐसे ही सामाजिक प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखती हैं–''टेलीविजन के फैलाव ने विज्ञापनों के जरिए हमारे सामने जो आदर्श दुनिया रखनी शुरू की है, वह चमक–दमक से भरी ऐसी आकर्षक दुनिया है, जिसे हर कोई पाना चाहता है। लेकिन यह प्राप्त कैसे की जा सकती है, यह कहीं नहीं बताया जाता है। चमक–दमक, रहन–सहन और अमीरी के लिए संसाधन कैसे जुटाए जाते हैं, यह पता नहीं चलता। न ही श्रम की भूमिका को कहीं रेखांकित किया जाता है। जिस तरह कम्प्यूटर खेलों में हर हाल में आपको दूसरे प्रतियोगी को पछाड़ना होता है। चाहे इसमें हिंसा का ही सहारा क्यों न लेना पड़े। उसी तरह

यदि संसाधनों की प्राप्ति के लिए लूट-खसोट करनी पड़े, किसी का कत्ल करना पड़े, तो क्या बुरा!''[5] हमारी भारतीय संस्कृति में प्रचलित 'जितनी चादर, उतने पैर' वाली कहावत यहाँ बेमानी है। यहाँ तो चादर ही गायब है; केवल पैर ही पैर हैं, जो निरन्तर पसरते जा रहे हैं।

विज्ञापनों की लुभावनी, किंतु काल्पनिक दुनिया का एक उदाहरण उनमें महिलाओं की अनावश्यक और कामुक प्रस्तुति भी है। विज्ञापनों में महिलाओं को जिस रूप में दिखाया जाता है, वह वास्तविकता से परे और काफी हद तक अस्वीकार्य है। महिलाओं को अधिकांश विज्ञापनों में या तो उपभोग की वस्तु के तौर पर परोसा जाता है या इतना कामुक और लालची दिखाया जाता है कि किसी परफ्यूम, शेविंग क्रीम, अंडर गारमेंट के इस्तेमाल करने या बाइक और कार का मालिक होने मात्र से वह किसी पुरुष के पीछे चल देती है। 'विज्ञापन की दुनिया' नामक किताब में प्रो. कुमुद शर्मा लिखती हैं-''विज्ञापन जगत के ऊँचे खिलाड़ी स्त्री आजादी के नाम पर जो देहवादी आंदोलन चला रहे हैं, सौन्दर्य का जिस तरह बाजारीकरण कर रहे हैं, उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता के नाम पर बाजार को हित साधक बनाकर स्त्री के लिए जो नए क़िस्म की गुलामी का इतिहास बना रहे हैं, उसके ख़िलाफ स्वयं उसे ही खड़ा होना होगा। अपनी दीन-हीन, कमजोर छवि के साथ-साथ देह-प्रदर्शन के विरोध की आवाज उसी को बुलंद करनी होगी।''[6]

इन सबके बीच मानवीय रिश्ते केवल लेन-देन, खोखले दिखावे और अहं को संतुष्ट करने के पर्याय बन गये हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करती हमारी युवा पीढ़ी केवल शरीर ही नहीं मन से भी उनकी गुलाम होती जा रही है। अपने परिवार को हम भौतिक समृद्धि तो दे रहे हैं, किन्तु समय नहीं दे पाते। यहीं से रिश्तों की टूटन शुरू होती है; परिवार में बिखराव आने लगता है। सम्बन्ध हमारी तरक्की में आड़े आने लगते हैं। अहंकार टकराने लगते हैं और अलगाव उभरने लगते हैं। इन्हीं सबका नतीजा होता है, लड़ाई-झगड़ा, हत्याएँ और आत्महत्याएँ। इन सब घटनाओं से जुड़ी ख़बरें जब आए दिन अखबारों की सुर्खियां बनती हैं, तो संस्कारी मन काँप उठता है। लेकिन क्या इन खबरों को भी अन्य ख़बरों की तरह पढ़कर हमें अखबार के पन्ने पलट लेने चाहिए? अगर ऐसा है तो हम उस कबूतर की तरह हैं, जो बिल्ली के डर से आँख मूँदकर बैठ जाता है। आज भारतीय समाज जिस स्थान पर खड़ा है, वहाँ पैसा बहुत मायने रखता है। 10वीं-12वीं पास बच्चा जब किसी कॉल सेन्टर में नौकरी करके 10 से 20 हजार रुपये महीने कमाने लगता है, तो हमारी बाँछें खिल उठती हैं। लेकिन इस खुशी में हम उस वास्तविकता को नजर-अंदाज कर देते हैं जो हमारे सामने खड़ी है। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हमें नौकरियाँ तो दी हैं, किन्तु हमसे हमारी पारिवारिकता, हमारी सामाजिकता छीन ली है। हम खुशी और छुट्टी के तरीके भी उन्हीं की तरह 'वीक एंड' पर ढूँढ़ने के लिए 'पब' और 'डिस्को बार' का रास्ता अपना लेते हैं। हमने अपने बच्चों को महँगे और नामी स्कूलों में शिक्षा तो दिलवा दी लेकिन ये शिक्षा की दुकानें हमारे बच्चों को क्या एक बेहतर मनुष्य बना रही हैं, इस ओर हम ने कभी सोचा ही नहीं। आज जो युवा पीढ़ी हमारे सामने आ रही है उसे अपने धर्म, अपने दर्शन, अपनी संस्कृति, अपने मूल्यों और देश के बारे में सोचने का वक़्त ही नहीं है। वह केवल और केवल अपने बारे में ही सोच रही है। लेकिन इसके जिम्मेदार भी हम ही हैं। माता-पिता के पास इतना समय ही नहीं है कि वे सही और गलत के बीच के अंतर को सिखा सकें। जो बचपन बड़ों की स्नेहिल मार्गदर्शक छत्रछाया से दूर, केबल, टी.वी., और 'इंटरनेट' के सान्निध्य में बड़ा होगा, उसका सही और गलत भी उसके अनुसार ही बनेगा। क्यों हम ऐसी मानसिकता को जन्म देने वाली परिस्थितियों को पनपने दे रहे हैं? अगर जल्द ही हम सचेत नहीं हुए तो वह दिन दूर नहीं जब कभी-कभार आने वाली ये ख़बरें हमारे गली-मुहल्ले के लिए आम बात हो जाएँगी। सोचना हमें ही है और राह भी हमें ही खोजनी है। अगर मीडिया भारतीय संस्कृति की नब्ज को समझकर अपनी विज्ञापन शैली में बदलाव ला सकता है और समाज तथा पीढ़ियों के बीच अटूट बंधन की बात करता है, तो हम तो इसी मिटी की उपज हैं; जो मिट्टी अपनों के लिए सब कुछ लुटा देने की प्रेरणा देती है। हमारी इस मिट्टी में उपजे हमारे नायक, हमारे महान पुरुष, हमारे गुरु; चाहे वह राम हो या कृष्ण, बुद्ध हो या महावीर, कबीर हो या नानक सब अपने स्वार्थ नहीं वरन् समाज और मानव-मात्र के कल्याण की बात करते हैं। हमारे पर्व और त्यौहार हमारी सामाजिकता और सम्बन्धों की मधुरता के प्रतीक हैं। हमें मीडिया को अपने फायदे के लिए इन सबको भुनाने को मौक़ा नहीं

देना चाहिए, बल्कि हमें अपने भीतर की उस शक्ति और विवेक को जगाना होगा जो हमें सही राह दिखा सके।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्री गुरुनानक देव खालसा कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची

1. डॉ. संजीव भानावत (संपा), जनसंपर्क एवं विज्ञापन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 157
2. मधु अग्रवाल, भारतीय विज्ञापन में नैतिकता, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1995, पृ.–94
3. डॉ. रेखा सेठी, विज्ञापन डॉट कॉम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012 पृ.–210
4. डॉ. संजीव भानावत (संपा.), जनसंपर्क एवं विज्ञापन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ.–199
5. क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श – समाज और साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.–95
6. कुमुद शर्मा, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2004, पृ.–103

अट्ठारहवीं से उन्नीसवीं सदी के संयुक्त प्रान्त में अकाल और जुलाहा तंत्र

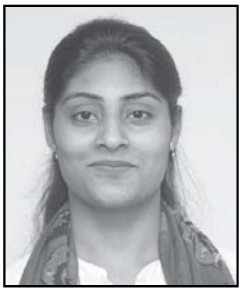

हिना

मेरा शोध कार्य पूर्वी उत्तर प्रदेश के मुस्लिम जुलाहा समुदाय पर आधारित है। इस सन्दर्भ में प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों के आधार पर उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा जो 18वीं और 19वीं सदी में उनके अनुभवों से प्रासंगिक हैं। शोध कार्य में अग्रसर होते हुए यह विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा कि अकाल के दौरान बुनकर जुलाहों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति किस हद तक प्रभावित हुई और इन परिस्थितियों से निपटने के लिए सरकार ने क्या-क्या महत्वपूर्ण कदम उठाये? इस शोध पत्र में यह भी विश्लेषण करने का प्रयास किया जाएगा कि जुलाहा नेटवर्क या तंत्र कैसे काम करता था, विशेषकर औपनिवेशिक उत्तर प्रदेश में।

19वीं शताब्दी में पूर्वी उत्तर प्रदेश के विशेष सन्दर्भ में गाँवों के उत्पादन और वितरण के लिए चार श्रेणियों को जिम्मेदार थीं जिनमे जमींदार, गाँव के अधिकारी, किसान और भूमिहीन मजदूर तथा गाँव के कारीगर और नौकर शामिल थे।[1] ये उत्तर भारतीय गाँवों के सामाजिक-आर्थिक ढांचे के मौलिक तत्व थे। इस समय कृषि का विस्तार और गहनता भी बढ़ती गयी, लेकिन 1782-83 के भयानक अकाल ने निश्चित रूप से ऊपरी दोआब में अस्थिर कृषि के उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों में जनसँख्या और उत्पादन को कम कर दिया।[2] इलाहाबाद से वाराणसी में औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया काफी तेजी से हुई। 1782-83 में पड़े अकाल के कारण मऊ के बुनकरों ने प्रवास किया।[3] अकाल और प्रवास ऐसी घटनाएँ थीं जिनसे मानव विकास के सामाजिक-आर्थिक पहलू अछूते नहीं रहे तथा ये घटनाएँ उपनिवेशवादी जटिल समाज में और अधिक दुखद व दुर्दशापूर्ण हो जाती हैं, क्योंकि तब उनका स्वभाव ''मजबूर परिस्थितियों'' के रूप में होता है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में बार-बार आनेवाले अकालों का प्रमुख और अप्रत्यक्ष कारण था ब्रिटिश शासकों की निर्यात नीति और पूर्वी उत्तर प्रदेश के घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अकाल और प्रवास जैसी प्रक्रियाएं सामान्यत: 'निम्न वर्ग' और विशेष रूप से 'बुनकरों' के लिए प्राकृतिक की बजाय ''थोपी हुई प्रक्रियाएं'' थीं।[4] संतोष कुमार राय के अनुसार, ''19वीं सदी के उत्तर प्रदेश में बुनकरों पर अकाल का प्रभाव इस परिकल्पना को स्पष्ट करता है कि अकाल और भुखमरी की जड़ें और अधिक विशेष रूप से भोजन की उपलब्धता की कमी के बजाय अधिकारों की अदला-बदली थी।''[5] दादाभाई नौरोजी, दी. ई. वाचा, जी. वी. जोशी, के. टी. तेलंग, एम.जी. रानाडे, जी. के. गोखले, जी.एस. अय्यर जैसे राष्ट्रवादी कई चिंतकों की राय थी कि 19वीं सदी के उत्तरार्ध के दौरान अक्सर अकाल अप्राकृतिक आपदाओं के कारण नहीं, बल्कि ब्रिटिश शासकों की दोषपूर्ण और अदूरदर्शी नीति के कारण पड़ते थे। 1860 से 1908 की अवधि में पड़ने वाले कई अकालों का कारण बारिश की विफलता नही थी। आधिकारिक सूत्रों के अनुसार इसके लिए हमेशा प्राकृतिक आपदायें, जनसँख्या, भारतीय लोगों की असाधारण सामाजिक आदतें और रीति-रिवाज जिम्मेदार थे। लार्ड कर्जन ने लिखा कि ''कोई भी सरकार प्रकृति के इतने विशाल और विनाशकारी पैमाने पर आने वाले परिणामों का अनुमान लगाने के लिए कोई कदम नहीं उठा सकती.''

विलियम डिग्बी, दादाभाई नौरोजी के अलावा कई भारतीय राष्ट्रवादियों का मानना था कि अकाल हमेशा बारिश की कमी या सूखे के कारण नहीं होते थे। नौरोजी के अनुसार ''भारत किसी भी मात्रा में भोजन उगाने में सक्षम था। उस सम्बन्ध में उसके संसाधन अटूट थे और जनसँख्या उनका सामना करने के लिए सक्षम थी, क्योंकि उनके पास अनाज के भंडार थे जिन पर वे निर्भर रह सकते थे। लेकिन अब वे ऐसे भंडार जमा करने में असमर्थ थे। वास्तव में, अंग्रेज उन वास्तविक परिस्थितियों के बारे में बहुत कम जागरूक थे, जिनमें भारतीय मूल निवासी रहते थे, क्योंकि सामान्य रूप से आबादी का एक बड़ा हिस्सा भुखमरी की स्थिति में था. अच्छे वर्षों में भी लोग हमेशा अल्पपोषित रहे और जब बुरे वर्ष आये, तो वे और भी अधिक भुखमरी का शिकार हुए।''[6]

रमेशदत्त के अनुसार ''भारतीय अकाल प्रकृति की सनक का नहीं, बल्कि मानवीय विफलता का परिणाम थे, जिन्हें रोकने के प्रयास किये जा सकते थे।'' बंगाल के लेफ्टिनेट गवर्नर सी. बीडन ने 28 नवम्बर 1866 को एक *मिनट* में कहा कि ''यह एक वास्तविक और निर्विवाद तथ्य है। पिछले कुछ महीनों के दौरान बंगाल और उड़ीसा में हजारों गरीब लोग भूख से मर गये थे। सैकड़ों हजारों मन का निर्यात विदेशों में लाभ कमाने के लिए किया गया। उन्होंने आगे कहा : यह याद रखना चाहिए कि भारत एक गरीब देश है, जबकि जिन देशों को इसका अनाज निर्यात किया जाता है, वे अमीर देश हैं। वे भारत के चावल का उपयोग न केवल भोजन के रूप में बल्कि कला और विनिर्माण में भी करते हैं और इसके लिए विलासिता की वस्तु के रूप में भुगतान कर सकते हैं, एक ऐसी कीमत जो भारत के गरीब वर्गों के लिए है, जिनके लिए यह प्रमुख और महत्वपूर्ण आवश्यकता है, निषेधात्मक है।''[7] फिर भी, सरकार ने निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने के बजाय खाद्यानों का आयात करके अकाल की आपात स्थिति का सामना करना पसंद किया।

सर एंड्रयू क्लर्क ने भारत के काउन्सिल में दिए गये एक भाषण में कहा था कि ''लोग भोजन की कमी के कारण नहीं, बल्कि इसे खरीदने के साधनों की कमी के कारण मर रहे हैं।'' अनाज के एक बड़े निर्यात व्यापार की वृद्धि ने भारत से अनाज उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा छीन लिया, अकाल के दौरान कीमतें इतनी अधिक बढ़ गयी थीं कि वे आम आदमी की क्रय शक्ति से परे हो गये।

जे. गेदेस (J. Geddes) ने कहा कि ''खेती का क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि लोग बेहतर स्थिति में हैं और निश्चित रूप से पहले की तुलना में अधिशेष प्राप्तियों का एक बड़ा हिस्सा लन्दन भेजना पड़ा.'' मकई की खेती करने वाले किसानों के बजाय अफीम और निर्यातयोग्य फसलें उगाने वाले किसानों को ऋण या अग्रिम देने के लिए पर्याप्त अग्रिम राशि मुहैय्या करायी. गेदेस ने साहसपूर्वक कहा कि ''देशी शासन की तुलना में ब्रिटिश शासन में अकाल अधिक पड़ते थे और इसका मुख्य कारण देशी शासन की तुलना में विदेशों में बिक्री के लिए भूमि की अधिक उपज का निपटान करना था.''

कुछ राष्ट्रवादी पत्रिकाएं और समाचारपत्र खाद्यान्न निर्यात करने और अकाल और कमी की स्थिति पैदा करने में सरकार की नीति की निंदा करने में मुखर थे। उदाहरण के लिए, बंगवासी ने टिप्पणी की कि ''भारतीयों को अपने खाद्य पदार्थों के व्यापार को संभव बनाने के लिए आधा-भूखे रहना पड़ता था.'' हितवादी ने 25 जुलाई 1891 को लिखा कि ''विदेशी व्यापारी लोगों के मुंह से रोटी छीन रहे हैं.'' खाद्यान का आरक्षित या अधिशेष भंडार, जिसका उपयोग अकाल के वर्षों में कठिनाई को कम करने के लिए किया जा सकता था, निर्यात के कारण समाप्त हो गया।[8]

अकाल के समय बुनकरों को विकल्पों का चुनाव करना पड़ता था क्योंकि इस समय गुमाश्ता और गृहस्थ जैसे मध्यस्थ बुनकरों को अग्रिम भुगतान करना बंद कर देते थे, क्योंकि उन्हें यह डर रहता था कि बुनकर पैसे का इस्तेमाल अपनी खपत की जरूरतों को पूरा करने के लिए करेगा।[9] 1868-70 के अकाल के दौरान उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में यह टिप्पणी की गयी थी कि ''यह भोजन की तुलना में श्रम का अकाल था।''[10]

अकाल के दौरान सरकार राहत शिविर भी प्रारंभ करती थी जहाँ तटबंधों और सड़क निर्माण, कताई और बुनाई जैसे रोजगार प्रदान किये जाते थे और उनमें महिलायें (पर्दा करने वाली), पुरुष, और बच्चे भी शामिल होते थे। लेकिन विभिन्न कारणों से बुनकर इन राहत शिविरों में जाने से बचते थे, जिसका एक बड़ा कारण था 'सरकार

की छवि', क्योंकि वे इन सभी ''विपत्तियों'' के लिए सरकार को जिम्मेदार मानते थे और दूसरा, उन्हें अपनी पंचायत द्वारा समाज से बहिष्कृत कर दिये जाने का भी भय होता था।[11]

1870 के दशक के बाद सरकार ने राहत शिविरों के बजाय इन वर्गों को अग्रिमों के रूप में कपड़ा बनाने के लिए कच्चा माल देना शुरू कर दिया और उनके जीवनयापन के लिए पर्याप्त कीमत पर कपड़ा खरीदना शुरू कर दिया जिससे अब बुनकरों की कच्चा माल और उपभोक्ताओं की खोज जैसी बुनियादी समस्याओं का निदान हुआ। लेकिन बुनकरों की समस्याओं में क्षेत्रीय भिन्नताएँ भी थीं क्योंकि उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के पश्चिमी भागों में कपास के उत्पादन में बुनकरों की स्थिति पूर्वी भागो के बुनकरों की तुलना में बेहतर थी, जिनका व्यवसाय मुख्य रूप से आयातित कच्चे कपास पर निर्भर था इसलिए अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा के दौरान न केवल मौत के भय ने बुनकरों के कार्यों को निर्धारित किया, बल्कि उनके दृष्टिकोण, विश्वासों और सामुदायिक कार्यों ने भी उनके व्यवहार को आकार प्रदान किया।[12] गतिशीलता हमेशा निर्वाह सुनिश्चित करने, अकाल से बचने, आर्थिक आजीविका में सुधार करने और कुछ मामलों में, बुनकरों के श्रम को नियंत्रित करने के प्रयासों का विरोध करने की एक रणनीति रही है। बुनकरों का प्रवास कोई नया या दुर्लभ विकास नहीं था और यह तर्क दिया गया था कि 19वीं सदी में सांप्रदायिक घटनाओं का बनारस प्रवास से कुछ सम्बन्ध हो सकता है।[13] हालाँकि, 18वीं सदी में बनारस से प्रवास के लिए आर्थिक कारण अधिक जिम्मेदार थे, कारण जो भी रहा हो बनारसिया और मऊवालों के रूप में बुनकरों की अलग पहचान आज भी जीवित है।

भारत के अकालग्रस्त क्षेत्रों से, जहाँ बुनाई कार्य में उल्लेखनीय गिरावट आई. मुस्लिम बुनकरों ने, जिन्हें मोमिन कहा जाता था, जो संयुक्त प्रान्त से आगरा-बोम्बे राजमार्ग के किनारे या उसके आस-पास के केन्द्रों जैसे धुलिया, मालेगांव, येओला और भिवंडी की ओर प्रवास किया। 1898 में अकाल आयोग ने यह नहीं माना कि अकाल के कारण बुनकरों को बहुत तकलीफ होती थी, बल्कि यह कहा गया कि उनका बॉम्बे, कलकत्ता, कानपुर से सम्बन्ध था और वे मिलों में ऊँची मजदूरी अर्जित करते थे।[14] अतः इस प्रवास की सीमा और प्रभाव तथा इन व्यक्तिगत प्रवासों की उलझनों का आकलन नहीं किया गया है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के समाज पर उनका दीर्घकालिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक और मनोवैज्ञानिक दबाव था। मुद्रा अर्थव्यवस्था के युग में न केवल उनके कर्मचारी, बल्कि भूमिहीन मजदूर भी संरक्षक-ग्राहक सम्बन्धों को तोड़ना चाहते थे, क्योंकि खेतिहर मजदूरों को प्रवास का विकल्प मिलता है।[15]

इस विश्लेषण के क्रम में अग्रसर होते हुए यह जानने का प्रयास किया जाएगा कि जुलाहा तंत्र किस प्रकार संचालित होता था, विशेषकर उत्तर भारत में। बक्सर के युद्ध के बाद उत्तर भारत के कई इलाकों में विशेषकर पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, आजमगढ़ और बनारस में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्रवेश किया। कम्पनी ने अपनी बहुआयामी आवश्यकताओं के साथ बंगाल के वाणिज्यिक दायरे को विस्तृत करने के लिए बनारस को अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा। बनारस के व्यावसायिक जीवन में ब्रिटिश की भूमिका निजी व्यापार के रूप में प्रारंभ हुई, लेकिन 1780 के दशक से कम्पनी ने इस क्षेत्र के वाणिज्य में संगठित रूचि लेना प्रारभ कर दिया। बनारस से मुख्य रूप से सूती कपड़ा, चीनी, शोरा, अफीम का निर्यात किया जाता था।

प्राचीन काल से बनारस सूत या कपास से निर्मित वस्तुओं के लिए जाना जाता है।[16] जॉर्ज बार्लो बनारस जिले के उत्पादों के बारे में जिक्र करते हैं कि खस या बाफिया, गरहा, इमारती या लखौरी, कपास के अच्छे माल की चार मुख्य किस्में थीं, जो बनारस से बंगाल को निर्यात की जाती थीं।[17] बार्लो ने सुझाव दिया कि बनारस जिले में कम्पनी के निवेश से इन कपड़ों की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। लेकिन इस शर्त की वैधता संदिग्ध प्रतीत होती है, क्योंकि किसी अन्य स्रोत में यह प्रमाण नहीं मिलता कि कम्पनी ने कभी भारत में हथकरघा उत्पादन की गुणवत्ता और स्थितियों में सुधार करने की कोशिश की थी। ''1784 के बाद हिन्दुस्तानी और मध्य भारतीय सूत का नाम 'मिर्जापुरी सूत' (Mirzapuri Cotton) था।''[18] मिर्जापुर, अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण, बंगाल को कपास की आपूर्ति करनेवाले एक भव्य बाजार के रूप में विकसित हुआ। यहाँ हम कह सकते हैं कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के उद्देश्य को पूरा करने के लिए व्यापारिक युग के 'आर्थिक मोर्चे' ने एक एजेंडा तैयार किया था और इस

एजेंडे ने एक व्यापक आकार ग्रहण किया जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश को भी आत्मसात कर लिया था।

डॉ. संतोष कुमार राय अपने लेख 'वीवर्स ऑरंग्स एंड कॉलोनियल कंट्रोल इन द गोरखपुर रीजन, 1801–1807' में कम्पनी की खरीद प्रणाली (Procurement System) में जटिलताओं, स्थानीय उत्पादन के लिए उलझन और उससे उत्पन्न तनावों का आकलन करते हैं। निर्माताओं या कंपनी द्वारा अपने कर्मचारियों को अग्रिम राशि देने या कम्पनी के एजेंटों द्वारा उत्पादित माल का गबन रोकने के लिए कपड़े की खरीद की एक फुल प्रूफ प्रणाली विकसित की गयी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वस्तुओं को अनुबंधों (contract) के अनुरूप वितरित किया गया था और कम्पनी ने बुनकरों के लिए जुलाई 1787 के अधिनियम को मई 1793 के अधिनियम XXXI के रूप में फिर से लागू किया, जोकि बनारस प्रान्त पर भी लागू थे।[19] इन अधिनियमों ने बुनकरों के भाग्य को 19वीं सदी के तीन दशकों के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी या उसके एजेंटों के साथ अनुबंधों के अधीन नियंत्रित किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिक कलात्मक और बहुमूल्य वस्तुओं की मांग भी थी, जो केवल कुछ धनी लोग ही खरीद सकते थे।[20] 'चिकनकारी' कढ़ाई जैसी नई शिल्प का उदय हुआ और यह 1860 से अधिक लोकप्रिय हुई और बड़े-बड़े शहरों में इसकी मांग बढ़ी, लेकिन इसकी मांग से केवल ऊँचे बुनकर ही सन्तुष्ट थे। इस मांग से बुनकर समृद्ध होने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि उनके पास कच्चा माल खरीदने या अपने परिवार के जीवन निर्वाह के स्रोत नहीं थे। परिवार की जीविका के लिए बुनकरों को फर्मों, महाजनों, कंपनी के साथ अनुबंध करके अपने श्रम के अधिकारों को खोना पड़ता जो उन्हें ऋण व अग्रिम राशि देकर उनके लाभ में बाधा डालते थे।[21] कम्पनी से लिए गये ऋण, अग्रिम राशि (advance) या नियुक्तियों (engagements) के कारण बुनकर किसी भी अन्य यूरोपियन या मूल निवासी को अपना श्रम या उपज नही दे सकते थे और न ही अपनी उपज को बाजारों या हाटों में बेच सकते थे। इसीलिए पारम्परिक सम्बन्धों को बदलकर कम्पनी ने निर्माता या बुनकरों और उसके माध्यम से उत्पादन प्रणाली को नियंत्रित किया और प्रत्येक अधिनियम का मकसद कंपनी के 'निवेश' की रक्षा करना होता था, जो कपनी की वास्तविक चिंता होती थी।[22]

कपड़े के थान (piece goods) की खरीद के लिए कम्पनी ने आजमगढ़, मऊ, महाराजगंज, कोपा और गोरखपुर में फैक्ट्रियां खोली थीं और कम्पनी द्वारा इन क्षेत्रों में कपड़ा केन्द्रों की क्षमता का पता लगाने के लिए नियुक्त किये गये कमर्शियल रेजिडेंट्स ने कपड़ा, चीनी, और शोरा के निर्माताओं के श्रम और उत्पादन पर एकाधिकार करने का प्रयास किया। कम्पनी के रोजगार में प्रवेश करने वाले निर्माताओं या बुनकरों की स्थिति 'अभागी' मक्खी की तरह थी जो एक बार मकड़ी के जाल में फंसने के बाद, शायद ही कभी खुद को निकाल सके।[23] 1813 में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारतीय व्यापार से एकाधिकार समाप्त तो हो गया, लेकिन इसकी राजनीतिक गतिविधियाँ अत्यधिक प्रमुख हो गयी थीं और 1833 तक व्यापार और सरकार का मिलन एक विरोधाभास और समस्या बन गया था। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त भी सरकार की नीतियों में परिवर्तन से प्रभावित हुए और देश के इस हिस्से में कई यूरोपीय आये और प्रान्त के लोगो ने भी कच्चे माल के शोषण और औद्योगिक विकास में दखल देना शुरू किया। प्रान्तों की औद्योगिक और व्यवसायिक आबादी उन शहरों में केन्द्रित थी जो निम्न तीन श्रेणियों से सम्बंधित थे : (1) तीर्थस्थल (2) राजधानी (3) वाणिज्यिक भंडार। मिर्जापुर, मध्य भारत और मध्य प्रान्तों के कपास व्यापार के लिए विक्रय केंद्र था।[24] यह इस कारण भी महत्वपूर्ण था कि यह गंगा नदी का उच्चतम नौगम्य बिंदु था और इसलिए बंगाल के साथ व्यापार का केंद्र था। पूरे देश में उत्तर-पश्चिम प्रान्तों का छींट प्रसिद्ध उत्पाद था।[25] हालाँकि, आजमगढ़ में कपास का उत्पादन नहीं हुआ था, लेकिन कपड़ा निर्माण का विकास हुआ और वहां कई सूती कपड़े के बुनकर रहते थे जो उनके शिल्प के विशेषज्ञ थे। यहाँ विशेषकर मिश्रित प्रकार का सिल्क (गाल्टा) और शुद्ध सिल्क 'संगी' निर्मित किया जाता था। मुरादाबाद दोसुती का और आगरा व बनारस सिल्क (silk) और कमख्वाब (brocade) के विशेष निर्माता थे और छोटे फूलों वाला कमख्वाब (brocade) बनारस की विशेषता था, जो बहुत शानदार और महंगे होते थे।[26]

ब्रिटिश शासन से पहले मिर्जापुर मध्य भारत और दक्कन के साथ व्यापार का केंद्र था जिसे ''पूरब का लिवरपूल'' कहा जाता था।[27] ब्रिटिश शासन की स्थापना के कारण ये बाजार बर्बाद हो गये थे और उनके स्थानीय

विक्रय केन्द्रों (Emporium) का पतन हो गया। उनके स्थान पर कानपुर, बरेली, आगरा और हाथरस जैसे बाजारों का उदय हुआ। दिल्ली के बाजारों में मुख्य बाजार चांदनी चौक था, शहर की सबसे फैशनेबुल बाजार। बनारस अब तक प्रान्त का सबसे अमीर शहर था जो व्यापक व्यापार करता था। Thornton यह टिप्पणी करते हैं कि ''व्यापारियों का वर्ग बहुत विविध है और इसमें भारत के कई सबसे अमीर पूंजीपति शामिल हैं।''[28]

1860-61 में उत्तर भारत के सम्बन्ध में बेयार्ड स्मिथ की रिपोर्ट के अनुसार भूमिहीन खेतिहर मजदूर, तथाकथित छोटी जातियों के लोग जैसे चमार और जुलाहे थे।[29] देशी उद्योग नष्ट हो जाने के कारण जुलाहों की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी, विशेषकर 1860-64 में। विश्व बाजार में रूई का दाम बढ़ जाने के कारण रूई भारत से निर्यात हो रही थी। जिसके फलस्वरूप भारतीय जुलाहों के लिए कच्चे माल के रूप में रूई की आपूर्ति कम हो गयी और उसके दाम बढ़गए।[30]

अंततः अकाल जैसी घटनाओं ने जनसंख्या और उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित किया। भारत में लगातार होने वाले अकालों के लिए ब्रिटिश निर्यात नीति, संचार सुविधाएं प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी थीं। बुनकर इस भीषण आपदा के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराते थे। अकाल प्रभावित क्षेत्रों में बुनाई के काम में उल्लेखनीय गिरावट आने के कारण बुनकरों के पास पलायन करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। अकाल और पलायन जैसी घटनाओं ने बुनकरों के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं को प्रभावित किया और इन घटनाओं ने औपनिवेशिक समाज में और अधिक जटिल रूप धारण किया। वास्तव में, ये घटनाएँ प्राकृतिक के बजाय थोपी गई प्रक्रियायें थीं। 19वीं शताब्दी में सरकार ने राहत शिविरों के बजाय बुनकरों को कच्चा माल अग्रिम के रूप में प्रदान करना शुरू किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि बुनकर अपना श्रम या उपज किसी अन्य यूरोपीय या मूल निवासी को न तो दे सकते थे और न ही वे अपनी उपज को बाजारों या हाटों में बेच सकते थे। इस प्रकार सरकार का उद्देश्य पारंपरिक संबंधों को बदलकर कंपनी निर्माताओं के माध्यम से उत्पादन प्रणाली को नियंत्रित करनाऔर कंपनी के ''निवेश'' की रक्षा करना था।

पीएच.डी. स्कॉलर
इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Email ID: hinaphd3092@gmail.com

संदर्भ सूची

1. K.P. Mishra, Social Formation of the Village in the North India (Late Eighteen-Early Nineteenth Century), Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 52 (1991), pp. 503-521.
2. C.A. Bayly, Rulers, *Townsmen and Bazaars: North Indian Society in the Age of British Expansion 1770-1870,* Cambridge University Press, 1983, pp. 88-90.
3. Gyan Pandey, "Economic Dislocation in Nineteenth Century Eastern U.P." in Peter Robb, ed., *Rural South Asia-Linkage, Change and Development,* London, 1983, pp. 99-100.
4. Santosh Kumar Rai, Famines, Migrations and the Weavers of Colonial Eastern Uttar Pradesh in the Latter Half of the 19th Century, *Indian History Congress*, Vol. 65, 2004, p. 564.
5. Santosh Kumar Rai, *Famines, Migrations and the Weavers*, p.564.
6. Sumit Sarkar, *Adhunik Bharat:1885-1947*, Rajkamal Publication, New Delhi, 2015, pp. 808-809.
7. Sumit Sarkar, *Adhunik Bharat,* p. 810.
8. Sumit Sarkar, *Adhunik Bharat,* p. 812.
9. Thakur Prasad Khatri, *DeshiKarghaYaine Handloom*, Banaras, 1909, p.46.
10. Frederick Henvey, *A narrative of the Drought and Famine which prevailed in the North-Western Provinces during the years 1868, 1869 and beginning of 1870,* Allahabad, 1871, p.2; *Narrative of the Scarcity During 1874, in the Eastern Districts of the North Western provinces of the India with District Reports,* Allahabad, 1875, p.83.
11. Dr. W. Hoey, Officiating Commissioner, Gorakhpur Division and Mr. J.R. Hill, Missionary Banda, Evidence of Witness from the North-Western Provinces and Oudh, Appendices,

Vol.5, *Indian Famine Commission, 1898,* Calcutta, 1898, pp.66,169.
12. Santosh Kumar Rai, *Famines, Migrations and the Weavers,* p.567.
13. Nita Kumar, *The Artisans of Banaras: Popular Culture and Identity, 1880-1986,* Princeton, 1988, p.43, 69: Also see Abdul Bismillah, *Jhini Bini Chadariya*, Delhi, 1987, p. 10.
14. Dr. W. Hoey, *Evidence of Witness from the North-Western Provinces and Oudh*, p.66.
15. Santosh Kumar Rai, Famines, Migrations and the Weavers of Colonial Eastern Uttar Pradesh in the Latter Half of the 19th Century, *Indian History Congress*, Vol. 65, 2004, p.570.
16. H.K. Naqvi, *Urban Centres and Industries in Upper India, 1556-1803,* Bombay, 1968, pp. 121-122.
17. (i) Khasas/Bafta – high quality Calico cloth, (ii) Garha – uncoloured plain woven cloth, (iii) Imertees – a superior grade of white cloth, (iv) Lakhauris – white cotton cloth.] G.H. Barlow, Report on the trade of the province of Banaras, 27 August 1787, Duncan Records, Basta No.2, volume No.7, Regional Archives, Allahabad (henceforth RAA0, p. 16.
18. C. A. Bayly, *Rulers, Townsmen and Bazaars*, p. 235.
19. Santosh Kumar Rai, Weavers' Aurungs and Colonial control in the Gorakhpur Region, 1801-1807, *Indian History Congress,* Vol. 63, pp. 502.
20. H.K. Naqvi, *Urban Centres and Industries in Upper India, 1556-1803,* Bombay, 1968, pp. 111.
21. *Report on the Railway – Borne Traffic of the North – Western Provinces and Oudh, during the year ending 31 March, 1882,* Allahabad, 1883, p. 30.
22. Santosh Kumar Rai, The Conditions of the Work and Survival: The Weavers of Eastern Uttar Pradesh (1880-1900), *Indian History Congress,* Vol.62, 2001, p. 720.
23. Santosh Kumar Rai, *Weavers' Aurungs and Colonial in the Gorakhpur Region,* p. 503.
24. Magistrate Gorakhpur to Secretary of Government, Fort William, 22 June 1807, BTCP, para 2, WBSA Microfilm (MF). Cited in Santosh Kumar Rai, *Weavers'Aurungs and Colonial in the Gorakhpur Region, 1801-1807,* p. 505.
25. Dharam Bhanu, Economic Condition of the People in the Northwestern Provinces 1830-1860, *Indian History Congress,* Vol. 19, 1956, p. 397.
26. Calcutta and Agra Gazetteer, Vol. II. pp. 365-363.
27. Atkinson: North-Western Provinces Gazetteer, Vol. VII, p.555 ff.
28. Raikes: Notes on North-Western Provinces of India, p. 167.
29. Thornton: Gazetteer of the Territories of the East India Company, Vol. I. p. 352.
30. Sabhysachi Bhattachary, *Adhunik Bharat ka Arthik Itihas 1850-1947*, Rajkamal Publication, 1994, pp. 87-88.

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा

डॉ. मंजुला गुप्ता

सारांश :

वेदों में पर्यावरण की अवधारणा प्रकृति और मानव के बीच संतुलित सह-अस्तित्व पर आधारित है। इसमें पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाश को पंचमहाभूत के रूप में मान्यता दी गई है। वेदों में प्रकृति को ईश्वर का स्वरूप मानते हुए उसका सम्मान और संरक्षण करने की शिक्षा दी गई है। ऋग्वेद पृथ्वी, जल, और वायु की स्तुति करता है। यजुर्वेद में यज्ञ के माध्यम से पर्यावरण शुद्धि की बात कही गई है। अथर्ववेद में वृक्षों, औषधियों, और जल स्रोतों के संरक्षण का महत्व बताया गया है।

वेदों में पृथ्वी को 'माता' और मनुष्य को उसका पुत्र कहा गया है। सह-अस्तित्व और संसाधनों के सतत उपयोग का संदेश आज के पर्यावरणीय संकट के समाधान में अत्यधिक प्रासंगिक है। वैदिक सिद्धांत न केवल आध्यात्मिक बल्कि व्यावहारिक रूप से भी पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास का मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार, यदि वैदिक दृष्टिकोण को अपनाया जाए, तो पर्यावरण संकट से निपटने और प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखने में मदद मिल सकती है।

बीज शब्द : वेद, पर्यावरण, प्राकृतिक संसाधन, पंचमहाभूत, यज्ञ, संरक्षण, प्राकृतिक।

परिचय : वेदों में पर्यावरण की अवधारणा पर शोध आलेख के प्रारंभिक खंड के रूप में कार्य करता है, जिसमें वेदों में प्रकृति और पर्यावरण के महत्व, उनकी संरक्षण की दृष्टि, और मानव जीवन में उनके स्थान के बारे में बुनियादी जानकारी दी जाती है। इस परिचय में यह बताया जाएगा कि वेदों में प्राकृतिक संसाधनों की पूजा और उनके प्रति सम्मान की भावना को कैसे व्यक्त किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाएगा कि पर्यावरण संरक्षण के सिद्धांत वेदों में कैसे समाहित हैं और आज के संदर्भ में इनकी प्रासंगिकता क्या है।

वेदों में पर्यावरण को एक पवित्र और अपरिवर्तनीय तत्व के रूप में देखा गया है। वेदों के विभिन्न ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाश के महत्व को समझाया गया है और इनका संतुलन बनाए रखने के लिए जीवन के विभिन्न पहलुओं को धार्मिक दृष्टिकोण से जोड़ा गया है। यह शोध आलेख इस अवधारणा की विस्तार से चर्चा करेगा, साथ ही यह भी विश्लेषण करेगा कि आधुनिक समय में वेदों की इन शिक्षाओं का पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में क्या योगदान हो सकता है।

वेद न केवल भारतीय संस्कृति अपितु विश्व में उपलब्ध साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ माने जाते हैं। वेद के रचियता मनीषियों ने पर्यावरण के प्रति पर्याप्त चिन्तन किया और पर्यावरण एवं प्रकृति को धर्म से सम्बद्ध कर प्रत्येक व्यक्ति को इनका परिक्षण करने का निर्देश दिया है। वेदों की ऋचाएँ इसकी पर्याप्त साक्ष्य है। पाश्चात्य विचारधारा मानव को केन्द्र में रखकर इस तथ्य पर बल देती है, कि प्रकृति व उसके सम्पूर्ण संसाधन मानव के उपभोग-उपयोग के लिए हैं जबकि भारतीय संस्कृति और धर्म मानव को सर्वोपरि नहीं मानता। यह मानव को पर्यावरण का एक घटक मात्र मानती है और प्रकृति के अन्य सजीव-निर्जीव तत्त्वों के साथ अस्तित्त्व पर बल देती है।

भारतीय धर्म मानव व गैर-मानवीय तत्त्वों के आपसी

सम्बन्धों पर जोर देता है और यह उद्घोषित करता है कि मानव में बुद्धि है, इसलिए यह मानव का नैतिक कर्त्तव्य कि प्रकृति व उसके सहजीवियों को उसे बचाना चाहिए। भारतीय संस्कृति में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि प्रकृति विभिन्न प्रकार के सजीव एवं निर्जीव तत्त्वों का एक जटिल संयोजन है। और यदि व्यक्ति व पृथ्वी पर पाए जाने वाले अन्य सजीव-निर्जीव तत्त्वों से सामंजस्य बनाए रखेगा तो प्रकृति सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी।

विशुद्ध पर्यावरण के सानिध्य से ही मानव जाति ने निरन्तर सफलताएं अर्जित की हैं। जीवन की वास्तविक स्थितियों के साहचर्य के बिना व्यक्ति की सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ कभी भी सही दिशा निर्देशित नहीं हो सकती और न ही जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। अपितु मानव की मनोवृति कृत्रिम वातावरण में विकृत होकर विश्व की व्यवस्था को विशृंखलित ही करती है। जबकि प्रकृति का साथ उसकी आन्तरिक क्षमताओं को यथानुरूप प्रस्फुटित कर उन्हें नैसर्गिक परिवेश में विकसित करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। ऐसे ही स्वस्थ परिवेश को पर्यावरण कहा गया है।

पर्यावरण का सामान्य अर्थ है, प्रकृति का आवरण। कहा गया है कि **'परितः आवरणं पर्यावरणम्'** प्राणी जगत को चारों ओर से ढकने वाला प्रकृति तत्व, जिनका हम प्रत्यक्षतः एवं अप्रत्यक्षतः, जाने या अनजाने उपभोग करते हैं तथा जिनसे हमारी भौतिक, आत्मिक एवं मानसिक चेतना प्रवाहित एवं प्रभावित होती है, यह पर्यावरण भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तीन प्रकार का कहा गया है। स्थलीय, जलीय, मृदा, खनिज आदि भौतिक, पौधे, जन्तु, सूक्ष्मजीव एवं मानव आदि जैविक एवं आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सांस्कृतिक तत्वों की परस्पर क्रियाशीलता से समग्र पर्यावरण की रचना और परिवर्तनशीलता निर्धारित होती है। प्रकृति के पंचमहाभूत-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर-भौतिक एवं जैविक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। वेदों में मूलतः इन पंचमहाभूतों को ही दैवीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव-कृत संस्कृति का निर्माण मानव मन, बुद्धि एवं अहं से होता है। इसीलिए गीता में भगवान कृष्ण ने प्रकृति के पाँच तत्वों के स्थान पर आठ तत्वों का उल्लेख किया हैः -**''भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धि रेवच। अहंकार इतीयं में भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।''**[1] वेदों में पर्यावरण से सम्बन्धित अधिकतम ऋचाएँ यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद में भी पर्यावरण से सम्बन्धित सूक्तों की व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में सभी पंचमहाभूतों की प्राकृतिक विशेषताओं और उनकी क्रियाशीलता का विशद् वर्णन है। आधुनिक विज्ञान भी प्रकृति के उन रहस्यों तक बहुत बाद में पहुँच सका है जिसे वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर लिया था। इतना ही नहीं, वेदों में प्राकृतिक तत्वों से अनावश्यक और अमर्यादित छेड़छाड़ करने के दुष्परिणामों की ओर भी संकेत किया गया है तथा मानव को सीख भी दी गई है कि पर्यावरण सन्तुलन को नष्ट करने के दुष्परिणाम समस्त सृष्टि के लिए हानिकारक होंगे।

यजुर्वेद में पृथ्वी को ऊर्जा (उर्वरता) देने वाली तप्तायनी तथा धन-सम्पदा देने वाली वित्तायनी कहकर प्रार्थना की गई है कि वह हमें साधनहीनता/दीनता की व्यथा और पीड़ा से बचाए **'तप्तायनी मेसि वित्तायनी मेस्यनतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्।'**[2] अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में क्षिति-पृथ्वी तत्व का मानव जीवन में क्या महत्व है तथा वह किस प्रकार अन्य चार प्रकृति तत्वों के संग, समायोजनपूर्वक क्रियाशील रहकर, उन समस्त जड़-चेतन को जीवनी शक्ति प्रदान करती है, जिनको वह धारण किए हुए है, कि विशद व्याख्या उपलब्ध है। अथर्ववेद में पृथ्वी को, अपने में सम्पूर्ण सम्पदा प्रतिष्ठित कर, विश्व के समस्त जीवों का भरण-पोषण करने वाली कहा गया है। **'विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतों निवेशनी'**[3] जब हम पृथ्वी की सम्पदा (अन्न, वनस्पति, औषधि, खनिज आदि) प्राप्त करने हेतु प्रवास करें तो प्रार्थना की गई है कि हमें कई गुना फल प्राप्त हो परन्तु चेतावनी भी दी गई है कि हमारे अनुसंधान और पृथ्वी को क्षत-विक्षत (खोदने) करने के कारण पृथ्वी के मर्मस्थलों को चोट न पहुँचे। अथर्ववेद में पृथ्वी से प्रार्थना की गई है-**'वतते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदति रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम।।'**[4] इसके गम्भीर घातक परिणाम हो सकते हैं। आधुनिक उत्पादन और उपभोग एवं अधिकतम धनार्जन की तकनीक ने पृथ्वी के वनों-पर्वतों को नष्ट कर दिया है। खनिज पदार्थों को प्राप्त करने हेतु अमर्यादित विच्छेदन कर पृथ्वी के मर्मस्थलों पर चोट पहुँचाने के कारण पृथ्वी से जलप्लावन और अग्नि प्रज्ज्वलन, धरती के जगह-जगह फटने और दरारें पड़ने के

समाचार हमें प्राप्त होते रहते हैं। खानों में खनन करते समय इसी प्रकार की दुर्घटनाओं ने न जाने कितने लोगों की जानें ही नहीं ली अपितु उन क्षेत्रों के सम्पूर्ण पर्यावरण का विनाश कर उसे बंजर ही बना दिया है। हाल ही में मेघालय की संकरी लगभग 1200 फुट गहरी खदान में अचानक पानी आ जाने की घटना विश्व में घटित इसी प्रकार की तमाम त्रासदियों में से एक है।

अथर्ववेद के अनुसार पृथ्वी का हृदय केन्द्र-बिन्दु आकाश में माना गया है जहाँ से उसको शक्ति मिलती है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं। व्योमरूपी आकाश द्यौ (द्युलोक- अतंरिक्ष से परे अपरिमित) को पिता तथा पृथ्वी को माता माना गया है। पृथ्वी को गगन चारों ओर से अपने आलिंगन में आवोष्टित किए हुए है। **''पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्ध्चक्षुः परि विश्रवं बभूव।''**[5] इसी कारण से जब हम अन्तरिक्ष में व्याप्त इस आवरण (ओजोन परत) को हानिकारक उत्सर्जित गैसों से छिन्न करते हैं तो पृथ्वी का हृदय उच्छेदित होता है।

वेदों में अग्नि (पावक) तत्व को सर्वाधिक शक्तिशाली एवं सर्वव्यापक माना गया है। उसे समस्त जड़-चेतन में ऊर्जा, चेतना तथा गति प्रदान करने वाला एवं नव सृजन का उत्प्रेरक माना गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि **''यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषुप य औषधीषु पशुप्वप्स्वन्तः। अग्रे सर्वास्तन्वः संरभस्व ताभिर्न एहिद्रविणोदा अजस्त्र।''**[6] हे अग्निदेव आपकी महत्ता जल में (बडवाग्रि रूप में) औषधियों व वनस्पतियों में (फलपाक रूप में), पशु व प्राणियों में (वैश्वानर रूप में) एवं अन्तरिक्षीय मेघों में (विद्युत रूप में) विद्यमान हैं। आप सभी रूप में पधारें एवं अक्षय द्रव्य (ऐश्वर्य) प्रदान करने वाले हों। यजुर्वेद के अनुसार यही अग्नि द्युलोक (अन्तरिक्ष में भी ऊपर परम प्रकाश लोक) में आदित्य (सूर्य) रूप में सर्वोच्च भाग पर विद्यमान होकर, जीवन का संचार करके धरती का पालन करते हुए, जल में जीवनी-शक्ति का संचार करती है। **''अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपोरतां सि जिन्वति''**[7] पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति एवं समस्त ग्रह नक्षत्र मंडल सहित पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के जिस तथ्य को आधुनिक विज्ञान आज केवल लगभग 200 वर्ष पूर्व ही समझ पाया है, उस भौगोलिक और सौर मंडल के रहस्यपूर्ण तथ्य को हमारे वैदिक ऋषि हजारों वर्ष पूर्व अनुभूत कर चुके थे। अथर्ववेद में ऋषियों ने कहा है- **'मल्वं विभ्रती गुरुभद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः। वरोहण पृथिवी संविदाना सूकराय कि जिहीते मृगाय।'**[8] अर्थात् गुरुत्वाकर्षण शक्ति के धारण की क्षमता से युक्त, सभी प्रकार के जड़-चेतन को धारित करने वाली, जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता (अंधकार) का निधन (निवारण) करने वाली पृथ्वी सूर्य के चारो ओर भ्रमण करते हैं।

वेदों में सभी ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्माड में सूर्य की केन्द्रीय सत्ता को वैज्ञानिकता प्रदान की है जिसे आधुनिक विज्ञान अब क्रमशः समझ सकने में सक्षम हो पा रहा है। ऋग्वेद में कहा गया है-**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च दृ'**[9] अर्थात् सूर्य समस्त सृष्टि की आत्मा/जन्मदाता है। सूर्य से पदार्थों को पूर्णता तथा ज्योतिष विज्ञान के अनुसार मानव के जन्म के समय सूर्य तथा उसके आश्रित ग्रह की स्थिति से मानव को समस्त गुण-सूत्र प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में सूर्यदेव को समस्त सृष्टि का प्रादुर्भावकर्ता, अवलंबनकर्ता एवं स्वामी माना गया है। **'सवा अंतरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्ष जायत'**[10] अर्थात् सूर्य अंतरिक्ष से उत्पन्न हुए एवं अंतरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ है। आगे कहा गया है-**'तस्यामू सर्वानक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह'**[11] अर्थात् चन्द्रमा सहित समस्त दिन, रात्रि, अंतरिक्ष, वायुदेव, द्युलोक, दिशाओं, पृथ्वी, अग्नि, जल, ऋचाओं एवं यज्ञ से प्रकट हुए हैं। उपरोक्त सभी के अंश, गुण व अणु सूर्य में विद्यमान रहे हैं एवं रहेंगे। इसीलिए सूर्य से ये समस्त पदार्थ एवं पंचभूत उत्पन्न हुए हैं। सूर्य ही एक ऐसे देव हैं जिनसे आकाश (नक्षत्रलोक), जल एवं ऊर्जा एवं प्रकाश तथा कीर्ति एवं (यश-अपयश विधि हाथ-सूर्य राशि के अधीन) समस्त अन्न एवं उपभोग सामग्री, वनस्पति एवं औषधि इत्यादि सृष्टि को प्राप्त हुआ है। **'कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्न चान्नाद्यं च। य एतं देवमेकवृतं वेद।''**[12]

निष्कर्ष रूप में, यह सम्पूर्ण पर्यावरण प्रकृति आवरण ही है जो विलक्षण दैवीय शक्तियों से व्याप्त है, जिससे सृष्टि के समस्त जंगम एवं स्थावर, प्राणी व वनस्पति को चेतना, ऊर्जा एवं पुष्टि प्राप्त होती है। **''द्योश्च म इदं पृथिवीं चान्तरिक्षं चमेव्यचः। अग्निः सूर्य आपो मेघां विश्वेदेवाश्च सं ददुः।''**[13] अर्थात् द्युलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जल एवं विश्व के समस्त देवों (ईश्वरीय प्रकृति शक्तियों) ने सृष्टि को व्याप्त किया है। इसीलिए

यजुर्वेद में कहा गया है कि पृथ्वी इन समस्त शक्तियों को ग्रहण करे एवं इन सभी शक्तियों के लिए भी सदैव कल्याणकारक रहे। पृथ्वी-पृथ्वीवासी-इन दैवीय शक्तियों को प्रदषित न करें। **''सन्तेवायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्। यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मैदेव वषडस्तु तुभ्यम॥''**[14] अर्थात् उर्ध्वमुख यज्ञकुण्ड की भाँति पृथ्वी अपने विशाल हृदय को मातृवत प्राणशक्ति संचारक वायु, जल एवं वनस्पतियों से पूर्ण करें। वायुदेव दिव्य प्राण ऊर्जा से संचारित होते हैं। अतः पृथ्वी (अपने दूषित उच्छवास-कार्बन उत्सर्जन) से उन्हें दूषित न करें। वर्तमान में अन्यथा की स्थिति के कारण ही वायु की प्राण पोषक शक्ति-ऑक्सीजन दूषित होकर सृष्टि के जीवन को दुष्प्रभावित कर रही है।

इस पर्यावरण के जनक इन पंचमहाभूतों से ही प्राणिमात्र की 5 ज्ञानेन्द्रियाँ प्रभावित एवं चेतन होती हैं। इन पंचमहाभूतों के गुण ही हमारी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्राण, मन, बुद्धि, कौशल, अहं अर्थात् भौतिक, जैविक, आत्मिक एवं संस्कारिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। आकाश का गुण शब्दः वायु का गुण शब्द एवं स्पर्श तेज (पावक-अग्नि) का गुण शब्द, स्पर्श एवं रूप, जल का गुण शब्द, स्पर्श, एवं रस (स्वाद) तथा पृथ्वी समस्त उपरोक्त चारों गुण सहित सुगंध गुण भी अर्थात समस्त गुणों को धारण करती है। इसी कारण पृथ्वी के प्राणी पंचमहाभूतों के 5 गुणों को धारित करते हैं एवं उनसे प्रभावित भी होते हैं। अतः आवश्यक है कि हम पृथ्वीवासी पर्यावरण को दूषित न करें, छिन्न न करें अन्यथा हमें उनसे दूषित अवगुण ही प्राप्त होंगे। यह वैदिक ऋषियों द्वारा प्रस्तुत एक ऐसा सत्य है जिसकी वर्तमान में अवहेलना कर हम पर्यावरण सन्तुलन को समाप्त करते जा रहे हैं।

ऋषियों ने न केवल पर्यावरण को प्रदूषित करने के मानव जीवन एवं सृष्टि पर पड़ने वाले हानिकारक विनाशक परिणामों की ओर संकेत किया, अपितु पर्यावरण की रक्षा एवं हम जो कुछ प्रकृति देवों से प्राप्त कर रहे हैं, उसे उन्हें लौटाकर, पर्यावरण को प्रदूषित करने की अपेक्षा, उसे संरक्षित एवं संवर्धित करने का भी आदेश दिया है। ऋषियों ने सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को शान्त करने व लोक कल्याणकारी बनाए रखने की प्रार्थना की है। अथर्ववेद में उल्लिखित शान्ति सूक्त का पर्यावरण रक्षण में अपरिमित महत्व है-**'शान्ता द्यौः शान्ता पृथ्वी शान्तमिदमुर्वन्तुन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः॥''**[15] **शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः। शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा॥** अर्थात् द्युलोक, पृथ्वी, विस्तृत अंतरिक्ष लोक, समुद्र जल, औषधियां ये सभी उत्पन्न होने वाले अनिष्टों का निवारण करके हमारे लिए सुख शान्तिदायक हों। दिन के अधिष्ठाता देव सूर्य (मित्र) रात्रि के अभिमानी देव वरुण, पालनकर्ता विष्णु, प्रजापालक प्रजापति वैभव के स्वामी इन्द्र, बृहस्पति आदि सभी देव शान्त हों एवं हमें शान्ति प्रदान करने वाले हों।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता : आज के समय में जब पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन, और प्राकृतिक संसाधनों की कमी एक गंभीर समस्या बन चुकी है, वैदिक सिद्धांत इन समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वैदिक साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण का संरक्षण जीवन के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो आज भी प्रासंगिक है। सतत विकास की वैदिक अवधारणा में मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता को प्रमुखता दी गई है। यह सिद्धांत आधुनिक समय के सतत विकास के विचार से मेल खाता है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उनका न्यायपूर्ण उपयोग जरूरी है। पुनः चक्रण या पुनर्नवीनीकरण की विचारधारा भी वैदिक साहित्य में निहित है। यज्ञों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के पुनः उपयोग की अवधारणा, जैसे जल और वृक्षों का संरक्षण, वैदिक शिक्षाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह विचार आज के पर्यावरणीय संकट के समाधान में मददगार हो सकता है। हरित आंदोलन के संदर्भ में, वृक्षारोपण और जल संरक्षण की वैदिक शिक्षाएं हमें प्रेरणा देती हैं। इन सिद्धांतों के माध्यम से हम पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझ सकते हैं और पृथ्वी के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की दिशा में कदम उठा सकते हैं। इस प्रकार, वेदों में दी गई पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक है।

निष्कर्षः अतः उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि वैदिक साहित्य पंचभूतों, याज्ञिक पदार्थों की दैवी रूपरेखा उनके मानवीय उपयोग के कारण ऋषियों द्वारा मानी गयी है। वैदिक ऋषि अपने एवं जड़ या अर्द्धचेतन पदार्थों में भेद नहीं मानते थे। सभी प्राकृतिक साधनों के प्रति उनकी मानवीय संवेदना सूक्तों में दिखाई देती है वे

जल से भी बातें कर लेते थे। इसकी सत्यता हो या न हो, लेकिन, इतना तो सत्य है कि वैदिक ऋषि इन तत्वों की स्तुति के माध्यम से हमें यह शिक्षा देते हैं कि ये प्राकृतिक पदार्थ पर्यावरण संतुलन के लिए संरक्षणीय हैं। वेदों में पर्यावरण की अवधारणा न केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, बल्कि यह आधुनिक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में भी सहायक हो सकती है। वैदिक ग्रंथों की शिक्षाएं हमें प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, जिम्मेदारी, और कृतज्ञता का पाठ पढ़ाती हैं। यदि हम वैदिक दृष्टिकोण को अपनाएं, तो पर्यावरण संरक्षण के लिए एक स्थायी और संतुलित मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संदर्भ सूची

1. श्रीमद्भागवद् गीता, 7/4
2. यजुर्वेद, 5/9
3. अथर्ववेद, 12/16
4. अथर्ववेद, 12/1/35
5. अथर्ववेद, 13/3/44
6. अथर्ववेद, 19/3/2
7. यजुर्वेद, 3/12
8. अथर्ववेद, 12/1/48
9. ऋग्वेद, 1.1 15.1
10. अथर्ववेद, 13/7/13
11. अथर्ववेद, 13/7/7
12. अथर्ववेद, 13/5/1 से 8
13. अथर्ववेद, 12/1/53
14. यजुर्वेद, 11/39
15. अथर्ववेद, 19/9/1

शशांक चंद्र शुक्ल*

शुभम सिंह**

मिथकीय चेतना के आलोक में 'दिनकर' के काव्य-संसार पर विहंगम दृष्टि

मिथकीय चेतना के प्रकाश में दिनकर के काव्य-लोक की यात्रा क्रम में प्रथमतः मिथक का सामान्य परिचय एवं मिथकों के साहित्यिक अनुप्रयोग का स्थूल अध्ययन पाथेय के रूप में अपरिहार्य हो जाता है। द्वितीयतः दिनकर की काव्य कृतियों में मिथकीय चेतना के अध्ययन का अनुष्ठान अपनी सिद्धि का संवरण करता है।

गौरतलब है मिथक और साहित्य दोनों का गहन अंतर्सबंध रहा है। वस्तुतः समय-समय पर अपने समकालीन यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए साहित्य में मिथकों का प्रयोग किया जाता रहा है। मिथकीय रचनाधर्मिता सृजनात्मक धरातल पर अतीत के संदर्भ सूत्रों में वर्तमान के लिए सुव्यवस्थित फलक निर्मित करते हुए भविष्य के लिए पथ प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन करती रही है।

ध्यातव्य है कि हिंदी साहित्य में 'मिथक' शब्द की निष्पत्ति आंग्ल भाषा के 'मिथ' (Myth) शब्द के पर्यायवाची के रूप में हुई है। वस्तुतः इस शब्द का मूल यूनानी/ग्रीक भाषा का शब्द 'माइथॉस' या 'मिथास' है; जिसका अर्थ है वाणी का विषय अर्थात् मौखिक या काल्पनिक कथा। उल्लेखनीय है कि 'लैटिन' भाषा में इसके लिए 'मिथास' (शब्द-कथा या कहानी) तथा 'जर्मन' भाषा में 'मिथोस' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। 'फ्रेंच शब्दकोश' के अनुसार मिथक वह है जिसका यथार्थतः अस्तित्व नहीं है।

स्मरणीय है कि भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने 'मिथक' को अपने-अपने देश-काल के संदर्भ में अपने-अपने मंतव्यानुसार निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित करने का स्तुत्य प्रयास किया है –

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार

'अरस्तु' के अनुसार- ''मिथक मनगढ़ंत या काल्पनिक कथा है।''

'लेंगर' के शब्दों में- ''प्राचीन वास्तु या पौराणिक पात्रों की युग सापेक्ष पुनः रचना मिथक है।''

'विको' के अनुसार- ''मिथक की उत्पत्ति अभिव्यक्ति से हुई है। अतः मिथक भाषा के विकास की मंजिल है।''

फ्रांसीसी समाजशास्त्री 'दुर्खीम' के शब्दों में-''मिथक का संबंध प्रकृति से नहीं समाज से है।''

भारतीय साहित्यकारों के अनुसार

आचार्य 'विद्यानिवास मिश्र' के शब्दों में- ''मिथक के बारे में एक भ्रांत धारणा कि यह कुछ मिथ्या से संबंध रखता है अर्थात् इसमें यथार्थ का अंकन न होकर किसी काल्पनिक या वास्तविक सत्ता का या ठीक-ठाक कहें तो सत्ताभास या मायाजाल खड़ा किया जाता है। जबकि इसका मुख्य उद्देश्य देश और काल के चौखट से बाहर ले जाकर वास्तविकता को सनातन और काल-प्रवाही स्वरूप में प्रस्तुत करना होता है।''

डॉ. 'भगीरथ मिश्र' के शब्दों में- ''पौराणिक पात्रों या घटनाओं को नवीन युग के अनुसार बनाकर प्रस्तुत करना मिथक है।''

डॉ. रमेश कुंतल 'मेघ' के मतानुसार- ''मिथक मानव जाति का सामूहिक स्वप्न एवं सामूहिक अनुभव है।''

'गणपतिचंद्र गुप्त' के मंतव्यानुसार- ''अतीत का पुनरुत्थान मिथक है।''

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' के शब्दों में- ''साहित्य

में मिथक समाज के अनंत अनुभवों का विश्लेषण है।''

यदि हम मिथक और साहित्य के घनिष्ठ संबंध पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि मिथक और साहित्य दोनों में शाश्वत सत्य और युगीन सत्य का सम्मिलित रूप व्यक्त होता रहा है और दोनों जीवन की सार्वभौम अनुभूतियों को व्यंजित करते रहे हैं। इस प्रकार साहित्य और मिथक की अवधारणाएँ एक-दूसरे से साम्य रखती हैं और एक-दूसरे के संरचनात्मक उपकरणों का भी उपयोग करती हैं। लेकिन फिर भी दोनों अभेद नहीं हैं। साहित्य के अनेक रूपों में मिथकीय तत्त्व नहीं होता और मिथक की सारी सामग्री साहित्य नहीं कही जा सकती।

हालाँकि तात्त्विक और स्वरूपगत अंतर होने साहित्य निरंतर मिथक को विषय-वस्तु या अभिव्यक्ति के उपकरण के रूप में प्रयोग करता रहा है और मिथक भी साहित्य के माध्यम से अपना स्वरूप विकसित परिवर्तित और परिवर्तित करता रहता है। पर भी यह निर्विवाद है कि साहित्य निरंतर मिथक को विषय-वस्तु या अभिव्यक्ति के उपकरण के रूप में प्रयोग करता रहा है और मिथक भी साहित्य के माध्यम से अपना स्वरूप विकसित परिवर्तित और परिवर्धित करता रहा है।

चर्चा के इसी क्रम में प्रकरणानुसार उल्लेखनीय है कि साहित्य चूड़ामणि कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने काव्य-साहित्य के माध्यम से देश-काल की विसंगतियों पर तीक्ष्ण प्रहार करने के साथ-साथ सामाजिक मूल्यों के क्षरण-पथ को अवरुद्ध करने एवं नवीन नैतिक मूल्यों को जनमानस पटल पर प्रतिष्ठित करने हेतु भारतीय पौराणिक मिथकों का अत्यंत सटीक एवं सार्थक विनियोग किया है।

तुलनात्मक रूप से स्मरणीय है कि आधुनिक हिंदी साहित्य में कविवर 'दिनकर' ही नहीं प्रत्युत अन्य साहित्यकारों ने भी तत्कालीन युग-बोध को अपनी दृष्टि से परिभाषित करने हेतु मिथकीय चरित्र या घटनाओं का प्रयोग किया है। यथा कवि 'निराला' की 'राम की शक्तिपूजा', 'प्रसाद' के भाव प्रधान महाकाव्य 'कामायनी', 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त' के 'भारत भारती', 'साकेत', 'जयद्रथ वध', 'शकुंतला', 'नहुष' व 'धर्मवीर भारती' के 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' एवं 'नरेश मेहता' के 'संशय की एक रात' तथा 'कुँवर नारायण' की 'आत्मजयी', 'वाजश्रवा के बहाने' और 'जनकवि नागार्जुन' के 'भस्मासुर' व कविवर गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' (ब्रह्मराक्षस व अंधेरे में) एवं 'दुष्यंत कुमार' के 'एक कंठ विषपायी' इत्यादि कृतियों में मिथकों के सफल व सार्थक प्रयोग का दृष्टांत मिलता है।

प्रसंगानुसार यदि हम 'दिनकर' के काव्य-संसार के परिप्रेक्ष्य में बात करें तो कविवर 'दिनकर' ने अपनी काव्य-कृतियों में समकालीन युग की समस्याओं पर दृष्टिपात एवं अधोपतन की ओर अग्रसर मानवीय मूल्यों की समृद्धि हेतु मिथकीय घटनाओं एवं पात्रों का अत्यंत कुशलता-पूर्वक रचनात्मक विनियोग किया है।

वैसे तो 'दिनकर' के काव्य-उपवन में मिथकीय पात्र एवं घटनाएँ प्रसून-सुगंध की भाँति फैली हुई हैं, परंतु 'दिनकर' की कतिपय काव्य-कृतियाँ ऐसी भी हैं जो पूरी तरह से मिथकीय विनियोग के सृजनात्मक स्वर में ही युग-चेतना को परिभाषित करती हैं। यथा- 'रश्मिरथी' 'कुरुक्षेत्र', 'उर्वशी' और (प्रतीकात्मक रूप से) 'परशुराम की प्रतीक्षा'।

यदि हम विद्या वाचस्पति 'दिनकर' की अप्रतिम कालजयी कृति 'रश्मिरथी' के धरातल पर उनके मिथकीय विनियोग की सामाजिक उपादेयता के प्रसंग में बात करें, तो जहाँ एक ओर रश्मिरथी में उद्धृत माँ कुंती का चरित्र वर्तमान दौर में भी सामाजिक मर्यादाओं से पराभूत उस प्रत्येक अपरिणीता माँ के मन की अंतर्व्यथा को प्रकट करता है जो अपने सद्यः प्रसवित अबोध शिशु को किसी अनाथालय की चौखट पर रोता हुआ बेहाल छोड़ देने के लिए आज भी बेहद मजबूर है। तभी 'कुंती' कहती है-

''बेटा धरती पर बहुत दिन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बंद करना समाज के मुख को,
सर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।।''[1]

तो वहीं दूसरी ओर यह काव्य-कृति आज भी हमारे समाज द्वारा किसी भी अवैध संतान की अस्वीकृति (जिसमें उस शिशु का लेश मात्र भी कोई दोष नहीं) पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने के प्रसंग में उपादेय हो जाता है। इसके समानांतर ही यह खंडकाव्य सच्ची मित्रता के मूल्यों को परिभाषित करने जाति और वर्ण-भेद पर तीक्ष्ण कुठाराघात करने, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अडिग पुरुषार्थ की प्रेरणा प्रदान करने एवं दानशीलता सदृश मानवीय मूल्यों को संबल प्रदान करने के साथ-साथ निरंतर क्षरित हो रहे नैतिक मूल्यों की संवृद्धि के परिप्रेक्ष्य में शोध-विषय के

रूप में प्रासंगिक हो जाता है।

अगर 'कुरुक्षेत्र' के संदर्भ में बात करें तो द्वितीय विश्व युद्धोपरांत दिनकर की अनल-प्रवाही अमृतमयी लेखनी से उद्भूत यह अमर काव्य-कृति युद्ध की विभीषिका के दुष्परिणामों व अंतिम विकल्प के रूप में युद्ध की अनिवार्यता की बात तो करती ही है परंतु इसके समानांतर ही यह आभ्यंतर जगत की उसे गहराई को स्पर्श करने का भी प्रयास करती है कि हम समझ जाते हैं कि ''कुरुक्षेत्र वस्तुत: बाह्य युद्ध का कुरुक्षेत्र उतना नहीं है जितना मनुष्य के आंतरिक हृदय का। गौर से देखने पर यह पता चले बिना नहीं रहता कि यहाँ युधिष्ठिर और भीष्म एक ही व्यक्ति हैं।''[2]

तो वहीं उर्वशीकार 'दिनकर' ने अपनी अमूल्य-कृति 'उर्वशी' के नायक-नायिका पुरुरवा और उर्वशी के माध्यम से प्रेम के पराकाष्ठा-पथ की स्थूल पर्यत सूक्ष्म जगत की यात्रा करते हुए चिरंतन प्रेम के युगीन मूल्यों को नवीन दृष्टि से आलोक में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

प्रकरणानुसार स्मरणीय है कि साहित्य चूड़ामणि 'दिनकर' ने ''परशुराम की प्रतीक्षा'' के माध्यम से भगवान परशुराम के पौराणिक चरित्र का प्रतीकात्मक रूप से रचनात्मक विनियोग करते हुए राष्ट्र की अस्मिता पर प्रहार करने वाली छद्म शक्तियों के विरुद्ध आक्रोश के स्वर में सिंह-गर्जना के माध्यम से देश की सीमा-संकट के ज्वलंत प्रश्न को हमारे समक्ष उपस्थित किया है।

सारगर्भित रूप में यही कहा जा सकता है पद्मभूषण 'दिनकर' के काव्य में उपस्थित मिथकीय चेतना 21वीं शताब्दी के परिदृश्य में उपस्थिति अनेक समस्याओं पर सूक्ष्म मूल्यबोध के स्तर पर प्रचुर समाधान देने के समानांतर हमें चिंतन की नवीन दृष्टि भी प्रदान करती है। इसके साथ ही साथ दिनकर की मिथकीय चेतना हमें सुप्त से जागृत कर कृत्रिमता के इस युग में अपनी मनुष्यता को सहेज कर रखने की चेतावनी भी प्रदान करती है; क्योंकि अगर मनुष्य में मनुष्यता शेष नहीं रही तो वह दिन दूर नहीं जब कृत्रिमता के चक्रव्यूह में फँसा मनुष्य अपने अंत के अधोगर्त में स्वत: गिर जाएगा।

*** शोध-छात्र**
दिल्ली विश्वविद्यालय
**** शोध-छात्र**
दिल्ली विश्वविद्यालय

संदर्भ सूची

1. 'रश्मिरथी' (पंचम अध्याय) - दिनकर
2. 'दिनकर : पाठ-पुनर्पाठ' - सुधीर प्रताप सिंह, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2011